राजस्थान के इतिहासकार

सम्पादक

डॉ. हुकमसिंह भाटी

प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर

राजस्थान का इतिहास जो वस्तुतः भारतवर्ष का प्रतिनिधि इतिहास है और जिसमें भारतीय संस्कृति एवं भारतीय गौरव सुरक्षित है, यहां के इतिहासकारों की अपूर्व देन है। परन्तु आश्चर्य इस बात का है कि राजस्थान एक महिमा-मंडित धरती होते हुये भी बाह्य लेखक यहां के मूर्धन्य इतिहासकारों तथा उनकी कृतियों से अनभिज्ञ रहे हैं। प्रस्तुत प्रकाशन का ध्येय राजस्थान के प्रमुख इतिहास-कारों तथा उनकी कृतियों को इतिहास जगत में उजागर करना है।

राजस्थान के इतिहासकार

सम्पादक
डॉ. हुकमसिंह भाटी
निदेशक
प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर

सह-सम्पादक
डॉ. नारायणसिंह चूण्डावत
असिस्टेंट प्रोफेसर
सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

प्रकाशक
प्रताप शोध प्रतिष्ठान
विद्या प्रचारिणी सभा, भूपाल नोबल्स संस्थान, उदयपुर (राज.)

प्रकाशक :
प्रताप शोध प्रतिष्ठान,
उदयपुर

प्रथम संस्करण 1988

मूल्य : 150 रु.

सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन

मुद्रक :
मंगल मुद्रण
उदयपुर

विषय-सूची

			पृष्ठ संख्या
	आमुख		V–VI
	सम्पादकीय		VII–VIII
1.	इतिहासकार मुंहणोत नैणसी	– डॉ. मनोहरसिंह राणावत	1–31
2.	ऐतिहासिक इबारत के संग्रहकार बांकीदास	– डॉ, नारायणसिंह भाटी	32–36
3.	टॉड का व्यक्तित्व व कृतित्व	– डॉ. नारायणसिंह चूण्डावत	37–63
4.	दयालदास सिंढायच	– डॉ. राजेन्द्रप्रकाश भटनागर	64–72
5.	सूर्यमल्ल मीसण	– स्व. डॉ. हरिसिंह राठौड़	73–83
6.	श्यामलदास दधवाड़िया	– डॉ. लक्ष्मणप्रसाद माथुर	84–92
7.	मुंशी देवीप्रसाद	– डॉ. जमनेशकुमार ओझा	93–103
8.	डॉ. गौरीशंकर हीराचंद ओझा	– डॉ. हुकमसिंह भाटी	104–132
9.	पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ	– डॉ. गोपाल व्यास	133–143
10.	पं. रामकर्ण आसोपा	– विक्रमसिंह गून्दोज	144–155
11.	जगदीशसिंह गेहलोत	– डॉ. गिरीशनाथ माथुर	156–160
12.	डॉ. दशरथ शर्मा	– डॉ. गिरिजाशंकर शर्मा	161–170

परिशिष्ट

राजस्थान इतिहास सामग्री के सर्वेक्षणकर्त्ता – डॉ. लुइजिपियो तैस्सितोरी	– प्रद्युम्नकुमारसिंह चूण्डावत	171–176

परिच्छेद

संस्कृत व राजस्थानी साहित्य की ऐतिहासिक कृतियों का विवेचन	– डॉ. हुकमसिंह भाटी	1–56

आमुख

राजस्थान एक विशाल और गौरवशाली प्रदेश है। सदियों तक यह भूखण्ड भारतीय संस्कृति, शौर्य, साहित्य और कला का केन्द्र रहा है। इसे हम इतिहास का खजाना कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। यहां सैकड़ों ग्रन्थ संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश, डिंगल और पिंगल आदि भाषाओं में लिखे गये। राजस्थान की गद्य विधा का अत्यन्त प्रौढ़ और उत्कृष्ट स्वरूप ख्यात साहित्य में विद्यमान है। इतिहास में इनकी स्रोत-भूमिका को देखते हुए कहा जा सकता है कि ख्यात साहित्य इतिहास शोध की अमूल्य निधि है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में तीन ख्यात लेखकों का समावेश किया है। ख्यातकारों का मूल उद्देश्य इतिहास के विभिन्न आयामों का खोजपरक तथा विश्लेषणात्मक विवरण प्रस्तुत करना है। इतिहास के प्रति ख्यात रचनाकारों का दृष्टिकोण कितना व्यापक रहा है यह तथ्य विशेष रूप से उजागर हुआ है। ख्यातों में राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का विस्तृत दिग्दर्शन ही नहीं होता अपितु तत्कालीन और पूर्वकालिक मानव जीवन के आदर्श और सम्पूर्ण व्यवहार का इतिहास-बोध भी प्राप्त होता है। अधिकांश ख्यातें राजकीय आश्रय में लिखी गई अतः कतिपय घटनाओं के अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण की सम्भावनाओं से इन्कार नहीं किया जा सकता। फिर भी फारसी स्रोतों के एक पक्षीय वर्णनों का तुलनात्मक विवेचन किये जाने से इनकी महत्ता सिद्ध है।

गद्य के साथ-साथ पद्य में इतिहास लिखने की यहां परम्परा रही है। इसमें चारण विद्वानों का योगदान सर्वाधिक है। चारणी परम्परा की सत्यनिष्ठा और स्वाभिमान प्रमुख अंग है। सूर्यमल्ल मीसण इसका उत्तम उदाहरण है। वह चारणी आदर्शों का मूर्त रूप कहा जा सकता है। वंश भास्कर का अपूर्ण रहना इस बात का स्पष्ट संकेत है। चारणी रचनाकारों में एक विशेषता और यह है कि उनमें प्रतिबद्ध राष्ट्रीयता विद्यमान थी। अंग्रेजों के विरुद्ध देश भक्ति की उग्र विचारधारा का दिग्दर्शन उनकी लेखनी से होता है। अतः इतिहास लेखन में भारत में राष्ट्रीय परम्परा की विचारधारा को पोषित करने में राजस्थान का भी कम योगदान नहीं है परन्तु भाषागत कठिनाइयों के कारण राजस्थान तथा बाहर के इतिहासवेत्ताओं का ध्यान इनकी कृतियों की ओर अभी तक आकृष्ट नहीं हुआ है।

राजस्थान इतिहास लेखन की दृष्टि से सन् 1829 ई. को एक महत्वपूर्ण मोड़ के रूप में लिया जा सकता है। उस वर्ष कर्नल टॉड के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ एनाल्स के प्रथम

भाग का प्रकाशन हुआ था। राजस्थान के गौरवमय इतिहास की ओर ध्यान देश एवं विदेश में आकर्षित करने का सर्वाधिक श्रेय उसे ही जाता है। उसके ग्रन्थ अनेक विशेषताओं से परिपूर्ण हैं, साथ ही वर्तमान के मापदण्ड के आधार पर इन ग्रन्थों में अनेक अभाव भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं।

राजस्थान के इतिहास की रचना के लिए विशेषत: बीसवीं सदी में दो क्षेत्रों में कार्य होने लगा। एक वर्ग आधारभूत सामग्री का संकलन, सर्वेक्षण एवं सम्पादन में जुट गया तो दूसरा मौलिक सामग्री के आधार पर टॉड के अनुरूप राजस्थान के विभिन्न राज्यों का क्रमबद्ध इतिहास लिखने में व्यस्त हो गया। प्रसन्नता की बात है कि प्रस्तुत ग्रन्थ में दोनों तरह के प्रतिनिधि इतिहासकारों को सम्मिलित किया है।

इस शताब्दी में इतिहास के अनेक ग्रन्थ राजकीय और गैर राजकीय आश्रय में लिखे गये। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि ख्यात साहित्य के अनुरूप विषयों की व्यापकता इनमें दिखाई नहीं देती। अधिकांश ग्रन्थ विवरणात्मक अधिक विश्लेषणात्मक कम हैं, परन्तु उनका योगदान ऐतिहासिक लेखन के विकास में किसी भी प्रकार से कम नहीं है। उन्होंने स्थानीय रूप में उपलब्ध आधारभूत सामग्री के विपुल भण्डार की ओर इतिहासकारों का ध्यान आकर्षित किया है। श्यामलदास, ओझा, रेउ, आसोपा आदि के लेखन से बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजस्थान के इतिहास को एक नई दिशा मिल सकी। तब राजस्थान का समग्र रूप से इतिहास लिखने का प्रयास प्रारम्भ हुआ। डॉ. दशरथ शर्मा द्वारा सम्पादित "राजस्थान थ्रू द एजेज" (भाग प्रथम) इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। इसी प्रकार इतिहास लेखन में दूसरा महत्वपूर्ण कदम विषयवार रूप में लिखने का है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में इतिहासकारों का चयन बहुत उत्तम रूप से हुआ है। सभी वर्ग के प्रतिनिधि लेखकों को इसमें सम्मिलित कर उनके व्यक्तित्व, लेखन व दर्शन आदि का विशद आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। इसी तरह परिच्छेद में संस्कृत व राजस्थानी साहित्य की ऐतिहासिक कृतियों के बारे में जानकारी प्रस्तुत करते हुए इतिहास लेखन में उनकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है फलत: पुस्तक का महत्व और भी बढ़ गया है। इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ के सम्पादन एवं प्रकाशन के लिए प्रतिष्ठान के निदेशक डॉ हुकमसिंह भाटी साधुवाद के पात्र हैं। यों इस ग्रन्थ द्वारा एक महत्ती आवश्यकता की पूर्ति हो सकी है। आशा है कि भविष्य में भी इसी प्रकार का महत्वपूर्ण प्रकाशन प्रतिष्ठान हाथ में लेगा ताकि प्रदेश के और इतिहासकारों तथा उनकी कृतियों से इतिहास जगत परिचित हो सके।

डॉ. के. एस. गुप्त
अध्यक्ष, इतिहास विभाग
सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

सम्पादकीय

राजस्थान की तपोभूमि इतिहासकारों के लिए एक वरदान सिद्ध हुई है। यहां इतिहास सामग्री का विपुल भण्डार है। भारत में मानव सभ्यता का प्रादुर्भाव का क्षेत्र भी इसे माना जाता है। हाल ही में उत्खनन से प्राप्त हुए अवशेषों ने इस धारणा को और पुष्ट कर दिया है। मध्यकाल में तो राजस्थान का भारतीय इतिहास में सर्वोपरि स्थान है। वास्तव में यह कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं होगी कि अगर मध्यकालीन भारतीय इतिहास से राजस्थान का इतिहास निकाल दिया जाय तो भारतीय इतिहास शून्य प्रायः हो जायगा। इस काल में राजस्थान ने इतिहास निर्माण किया तथा भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को सुरक्षित करने के लिए बड़ा से बड़ा बलिदान भी किया।

तत्कालीन गौरवमयी घटनाओं ने कवि, लेखक आदि विद्वानों को अपनी-अपनी लेखनी उठाने के लिए प्रेरित किया। इसी कारण अनेक ऐतिहासिक कृतियों का भी निर्माण इस काल में हुआ। इस काल में रचे गये ग्रन्थों से प्रेरणा पाकर राजस्थान में इतिहास लेखन की सुदृढ़ परम्परा ने जन्म लिया जो आज तक अविकल रूप से प्रवाहित हो रही है। परन्तु आश्चर्य इस बात का है कि राजस्थान की ओर आकर्षित होते हुए भी बाह्य लेखक इन कृतियों से सामान्यत: अनभिज्ञ रहे। यहां तक कि कर्नल टॉड जिसने अथक परिश्रम कर अनेक मौलिक साधनों को तो खोज निकाला, परन्तु नैणसी जैसी महत्वपूर्ण ख्यात का पता उसे न हो सका। आज भी राजस्थान देश-विदेश में शोधार्थियों का मुख्य केन्द्र बना हुआ है और राजस्थान इतिहास के विभिन्न पक्षों का गहन अध्ययन हो रहा है, किन्तु यहां समय-समय पर लिपिबद्ध की गई कृतियों के बारे में उचित ज्ञान का अभाव ही रहा है। हस्तलिखित ग्रन्थों की लिपि व भाषा सम्बन्धी कठिनाइयों से शोधार्थी अपने विषय के सन्दर्भ खोज निकालने में पूर्ण सफल नहीं हो रहे हैं। निजी संग्रहालयों में बहुमूल्य सामग्री भरी पड़ी है, परन्तु सभी संशोधकों के लिये उनके द्वार खुले नहीं हैं। शिलालेख, ताम्रपत्र, ख्यातें, बातें, पट्टे-परवाने, काव्य ग्रन्थ आदि इतनी विपुल मात्रा में उपलब्ध हैं कि इन सबका सम्पादन व प्रकाशन भी सहज सम्भव नहीं है, फिर भी आधारभूत महत्वपूर्ण ग्रन्थों का सम्पादन और प्रकाशन का कार्य यथाशीघ्र हो जाय तो इस समस्या का कुछ समाधान हो सकता है।

इस प्रकाशन के पीछे हमारा मुख्य उद्देश्य राजस्थान के प्रमुख इतिहासकारों तथा उनकी कृतियों के बारे में इतिहास जगत को उजागर करना है ताकि अब तक का

बनके प्रति उपेक्षा भाव समाप्त हो सके तथा नये लेखक उनके ग्रन्थों को आधार बनाकर उपयुक्त दिशा ज्ञान प्राप्त कर सकें। लेकिन इसमें सबसे प्रथम तथा जटिल समस्या इतिहासकारों का चयन करने में आयी। इतिहासकारों की संख्या इतनी अधिक है कि इसके लिए किसी भी पुस्तक का एक भाग काफी नहीं है और यह कार्य बहुत समय साध्य भी है अतः यह निर्णय लिया गया कि केवल दिवंगत इतिहासकारों को ही इसमें सम्मिलित किया जाय। हर युग के प्रतिनिधि इतिहासकारों को लेकर विभिन्न विद्वानों से लेख आमन्त्रित किये गये। लेखन में सामान्यतः एकरूपता रहे इस बात का भी प्रयास किया है। पहले इतिहासकार के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है फिर इतिहास लेखन का आदर्श, आधार स्रोत, लेखन पद्धति के बारे में जानकारी देते हुए उसके इतिहास ग्रन्थों के बारे में समालोचनात्मक विवेचन देने का प्रयास किया है। राज्य आश्रित इतिहासकारों को समकालीन व पूर्वकालीन सामग्री प्राप्त करने में कितनी सुविधा मिल पाई थी, निजी तौर से इतिहास लिखने वाले इतिहासकारों में साधनों को उपलब्ध करने की क्षमता कितनी थी, इतिहास विषयक सामग्री बटोरने में उन्होंने किन परिस्थितियों का सामना किया, उन्हें इतिहास ग्रन्थों के छपवाने में किस प्रकार की कठिनाइयों से जूझना पड़ा, उनके ग्रन्थ कब छपे अथवा अप्रकाशित रहे तो उसका कारण आदि ऐसे कई आवश्यक सूत्रों को संजोकर उनके कृतित्व का सही मूल्यांकन करने का यत्न किया है।

इतिहासकारों के अतिरिक्त अनेक कवि, लेखक हो गये हैं, जिन्होंने छोटी-मोटी अनेक ऐतिहासिक रचनाएँ लिखकर इतिहास के क्षेत्र में महती भूमिका का निर्वाह किया। मूल स्रोत के रूप में परिचर्चित ऐसी कृतियों के आधार पर ही इतिहास ग्रन्थ लिखे गये, अतः विशेष परिच्छेद में ऐसी संस्कृत व राजस्थानी साहित्य की कृतियों का संक्षिप्त विवेचन दिया है। हम अपने प्रयास में कहां तक सफल हुए हैं इसका निर्णय तो प्रबुद्ध पाठकवृन्द ही कर सकेंगे, फिर भी यह आशा की जाती है कि यह पुस्तक इतिहास-प्रेमियों, शोधकर्त्ताओं तथा विश्वविद्यालय छात्र समुदाय के लिये उपयोगी सिद्ध होगी।

प्रतिष्ठान के अनुरोध पर विद्वानों ने कोई एक वर्ष पूर्व लेख तैयार कर भेज दिये थे, परन्तु सगतरासो के आलोड़न व प्रकाशन के कार्य में व्यस्त होने के कारण इसका प्रकाशन समय पर नही हो सका। विद्वान लेखकों के इस हार्दिक सहयोग के लिये मैं विशेष आभार व्यक्त करता हूं। आदरणीय डॉ. के. एस. गुप्त ने आमुख लिखने की महती कृपा की इसके लिये उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। परामर्श समिति के सदस्यों का बराबर सुझाव व परामर्श मिलता रहा एतदर्थ उनका भी आभार व्यक्त करना मैं अपना पुनीत दायित्व समझता हूं।

– डॉ. हुकमसिंह भाटी

इतिहासकार मुहणोत नैणसी

डॉ. मनोहरसिंह राणावत
उपनिदेशक,
श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ-मालवा

नैणसी का प्रारम्भिक जीवन

नैणसी के पिता जयमल ने दो विवाह किये थे। प्रथम पत्नी वैद मेहता लालचन्द की पुत्री सरूपदे थी। उससे नैणसी, सुन्दरदास, ग्रासकरण ग्रौर नरसिंहदास नामक चार पुत्र हुए। द्वितीय पत्नी सुहागदे सिंघवी बिड़दसिंह की लड़की थी, जिसने जगमाल नामक एकमात्र पुत्र को जन्म दिया था।[1]

जयमल के ज्येष्ठ पुत्र नैणसी का जन्म शुक्रवार, 9 नवम्बर, 1610 ई. (सं. 1667 वि. मार्गशीर्ष सुदि 4) को हुग्रा था।[2] नैणसी का प्रथम विवाह भण्डारी नारायणदास की पुत्री से हुग्रा था ग्रौर द्वितीय मेहता भीमराज की लड़की से।[3] नैणसी का एक ग्रौर विवाह-सम्बन्ध बाहड़मेर के कामदार कमा की बेटी से होना तय हुग्रा। उस समय तक नैणसी परगना-हाकिम पद तक पहुंच गया था। ग्रतः विवाह करने के लिए स्वयं बाहड़मेर न जाकर उसने ग्रपने प्रतिनिधि के रूप में कुछ व्यक्तियों के साथ ग्रपना खड्ग ही भेज दिया। परन्तु उक्त कामदार कमा ने इसे ग्रपना ग्रपमान समझा ग्रौर ग्रपनी पुत्री का विवाह ग्रन्यत्र कर दिया। इस बात पर नैणसी बिगड़ गया ग्रौर उसने बाहड़मेर के कई क्षेत्रों में लूटमार की ग्रौर वहां के मुख्य दरवाजे के किवाड़ों को उठवा लाया ग्रौर उन्हें जालोर के मुख्य दरवाजे पर लगवा दिया।[4]

नैणसी की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। परन्तु वह जोधपुर राज्य के सर्वोच्च पदाधिकारी का पुत्र था ग्रौर जैन धर्मावलम्बी था। ग्रतः तब दी जा सकने वाली सारी ग्रावश्यक शिक्षा-दीक्षा उसे ग्रवश्य ही दी गयी होगी।

1– ग्रोसवाल, पृ. 48; (प्रथम चैत्र बदि 5, वि. 1681) गुरूवार, 17 फरवरी, 1625 ई. का जालोर का लेख।

2– बदरीप्रसाद साकरिया के सौजन्य से प्राप्त जन्मकुण्डली।

3– ग्रोसवाल, पृ. 49।

4– बाँकी., पृ. 176, बात सं. 2125।

वह युवावस्था में राज्य-सेवा में प्रवृत्त हो गया था। अपने जीवनकाल में कई परगनों का हाकिम रहकर अन्त में वह देश-दीवान के पद पर पहुंच गया था। इन सबसे स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है कि उसे सैनिक, प्रशासनिक आदि हर प्रकार की उच्च शिक्षा और समुचित प्रशिक्षण अवश्य ही दिये गये थे। आगे सेवा में रहते हुए अध्ययन और अनुभव से ही उसने बहुत कुछ सीखा था।

नैणसी की योग्यता की परख कर ही राजा गजसिंह ने 27 वर्ष की वय में ही उसे अपनी राज्य-सेवा में ले लिया था।

मुहणोत नैणसी महाराजा जसवन्तसिंह के समय फलोधी, पोहकरण, मलारणा, बदनोर आदि विभिन्न परगनों का हाकिम रहा था, उसने परगनों के प्रशासन में और भू-राजस्व में सुधार किया था और अपनी योग्यता से देश-दीवान के पद पर पहुंच गया था। वहां तब महाराजा जसवन्तसिंह का अति विश्वसनीय अधिकारी था। परन्तु विधि की विड़म्बना है कि ऐसे सुयोग्य और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति की, जिसकी स्वयं जसवन्तसिंह को ही नहीं, तत्कालीन समाज और देश को भी आवश्यकता थी, जसवन्तसिंह का कोपभाजन बनकर आत्महत्या करनी पड़ी।

उसके जीवन का दुखान्त : बन्दी-गृह में उसका आत्मघात

महाराजा जसवन्तसिंह गुरूवार, 1 नवम्बर, 1666 ई. में लाहोर पहुंचा था।[1] यहीं पर उसने जोधपुर राज्य के केन्द्रीय प्रशासन में एकाएक फेरबदल किये। सर्वप्रथम उसने रविवार, 9 दिसम्बर, 1666 ई. (पौष बदि 8, 1723 वि.) को प्रधान के पद पर राठोड़ आसकरण की नियुक्ति की[2] और उसे तत्काल जोधपुर जाने का आदेश दिया। वह जनवरी 1667 ई. में जोधपुर पहुंचा था।[3] इसी बीच सोमवार, 24 दिसम्बर, 1666 ई. को देश-दीवान मुहणोत नैणसी और तन-दीवान मुहणोत सुन्दरसी को पदच्युत कर दिया गया।[4] मुहणोत नैणसी तब जोधपुर था एवं उसके सम्बन्ध में आदेश जोधपुर भेजे गये और उसके स्थान पर वहीं लाहोर में केशरीसिंह रामचन्दौत को नैणसी के स्थान पर देश-दीवान नियुक्त कर[5] जोधपुर भेजा, जो उससे पहले बख्शी

1– जोधपुर ख्यात., पृ. 239।

2– बांकी., बात सं. 339, पृ. 32; दुर्गादास., पृ. 31।

3– जोधपुर ख्यात., 1, पृ. 324।

4– जोधपुर ख्यात., 1, पृ. 254, 255; राठोड़ां री ख्यात (ग्रन्थ सं. 72) प. 89 ख।

5– पंचोली केशरीसिंह को लाहोर में पोष वदि 8, 1723 वि. (9 दिसम्बर, 1666 ई. को देश-दीवान बनाकर जोधपुर भेजा। राठोड़ां री ख्यात (ग्रन्थ सं. 72) पृ. 59 ई.।

के पद पर कार्य कर रहा था।[1] तलाशी लेने पर मुहणोत सुन्दरदास का धन राठोड़ श्यामसिंह गोविन्ददासोत के पास निकला था अतः श्यामसिंह का पट्टा जब्त कर उसे सेवा-मुक्त कर दिया गया।[2]

अब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि मुहणोत नैणसी जैसे विश्वस्त उच्च पदाधिकारी को महाराजा जसवन्तसिंह ने यों एकाएक क्यों पदच्युत किया और बाद में क्यों बन्दी बनाया? सुनिश्चित कारण का तो अब तक कहीं कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता है। अतः उसके सम्भावित कारण स्वरूप जो कुछ बातें हो सकती थी; उन्हीं का उल्लेख किया जा रहा है।

परगना मेड़ता के राजस्व के आंकड़े देखने से पता चलता है कि परगना मेड़ता में 1661 ई. (सम्वत् 1718 वि.) में नैणसी ने राजस्व की वसूली में सख्ती बरती थी।[3] अतः वहां के पांच-दस गांवों के जाटों का एक शिष्ट-मंडल बादशाह के पास फरियाद लेकर पहुंचा। उस समय वकील मनोहरदास ने करों में कुछ कमी करवा दी।[4] 1662 ई. (सम्वत 1719 वि.) में परगना मेड़ता के आकेली, बावलले, चांदारूण और लवेरा के जाट पुनः बादशाह के पास फरियाद लेकर पहुंच गये थे।[5] उस समय महाराजा जसवन्तसिंह ने शाही दीवान राजा रघुनाथ को लिखा कि करों में कोई वृद्धि नहीं की गयी है। पूर्व के अनुसार ही लिया जा रहा है। जाट तो उच्छृंखलतावश फरियाद लेकर आ रहे हैं।[6]

गुजरात सूबा तागीर (जब्त) कर दक्षिण जाने का औरंगजेब का आदेश जसवन्तसिंह को 1661 ई. में प्राप्त हुआ था और शाही मनसब में गुजरात के परगनों के स्थान पर हाँसी-हिसार के परगने प्रदान कर दिये थे।[7] तब उन परगनों का परगना-हाकिम बनाकर नैणसी के पुत्र मुहणोत कर्मसी और पंचोली बछराज को वहां भेजा गया था।[8] परन्तु वहां के उनके अत्यल्प समय के प्रशासन में ही हाँसी-हिसार की प्रजा नैणसी से नाराज हो गयी।[9] अतः 1666 ई. (1723 वि.) को वहां की प्रजा के कुछ प्रमुख

1– जोधपुर ख्यात., 1, पृ. 324।
2– वही., पृ. 191।
3– विगत., 2, पृ. 78-80, 117-213।
4– विगत., 2, पृ. 93, 94।
5– विगत., 2, पृ. 94; भंडारियां री पोथी (ग्रन्थ सं. 78), पृ. 38 ख।
6– विगत., 2, पृ. 94-95।
7– विगत, 1, पृ. 1५9-52; जोधपुर ख्यात., 1, पृ. 231।
8– जोधपुर ख्यात; 1, पृ. 231; पोथी (ग्रन्थ संख्या III), प. 414 क।
9– पोथी (ग्रन्थ सं. III), पृ. 414 ख. 415 क।

व्यक्ति बादशाह औरंगजेब के पास फरियाद (शिकायत) लेकर पहुंचे, तब औरंगजेब ने एक लाख की राशि छुड़वायी थी[1] तो जसवन्तसिंह ने इस पर अविलम्ब कार्यवाही करना आवश्यक समझा। सर्वप्रथम उसने हाँसी-हिसार पर व्यास पद्मनाभ[2] को हाकिम बनाकर भेजा। बाद में इसी वर्ष 24 दिसम्बर, 1666 ई. को मुहणोत नैणसी को पदच्युत कर बाद में कैद किया गया था।

मुहणोत नैणसी को पदच्युत कर बन्दी बनाये जाने के बाद मुहणोत नैणसी के सेवकों की तलाशी ली गयी और जिन सेवकों ने डर के कारण अपना सामान अन्य व्यक्तियों के पास रख दिया था, जसवन्तसिंह को पता चलने पर उन लोगों के पट्टे भी जसवन्तसिंह ने खालसे कर लिये।[3] इससे यह बात तो स्पष्ट लगती है कि नैणसी पर मुख्यतया कड़ाई कर पैसे वसूल करने और प्रजा पर अत्याचार करने का ही दोषारोपण था। 'मारवाड़ परगना री विगत' में सं. 1715 मे 1719 वि. तक परगनों व गाँवों की आय के वास्तविक आँकड़े दिये गये हैं। उनको देखने से ज्ञात होता है कि नैणसी के पूर्व प्रत्येक परगना या गांवों से जो राजस्व वसूल होता था, उससे कहीं अधिक बल्कि कहीं-कहीं तो दुगुना राजस्व वसूल किया गया था।[4] अतः देश-दीवान मुहणोत नैणसी ने अपने स्वामी राजा जसवन्तसिंह की आय में वृद्धि करना चाहा और इस दृष्टि से उसने राजस्व वसूली में सख्ती बरती। इस सख्ती के कारण ही मेड़ता के जाट और बाद में हाँसी-हिसार के प्रमुख व्यक्तियों ने नैणसी की शिकायत तब मुगल बादशाह से की। सम्भव है इस स्थिति का लाभ उठाकर मुहणोत नैणसी के विरोधियों ने महाराजा के मन में नैणसी के प्रति शंका उत्पन्न कर दी। महाराजा जसवन्तसिंह को यह शंका हो गयी थी कि नैणसी ने प्रजा पर अत्याचार किये हैं और अनैतिक रूप से धन एकत्रित कर लिया है। अतः नैणसी को बन्दी बना लिया गया और उस पर एक लाख रुपये कबूलात के देने का दबाव डाला गया था। ओझा[5] और हजारीमल बांठियां[6] के अनुसार श्रुति से यह पाया जाता है कि नैणसी ने अपने रिश्तेदारों को बड़े-बड़े पदों पर नियुक्त कर दिया और वे लोग अपने स्वार्थ के लिए प्रजा पर अत्याचार किया करते थे। इसी बात को जानने पर महाराजा उससे अप्रसन्न हो गये थे, परन्तु यह आरोप सही नहीं हैं। 'जोधपुर हुकूमत री बही.' में सं. 1714 से 1729 वि. तक दिये गये सारे पट्टों की सूचियां और कार्य-विवरण है। उससे स्पष्ट पता चलता है कि नैणसी ने अपने किसी रिश्तेदार को कोई पट्टा नहीं दिया।[7] साथ ही नैणसी ने अपने किसी

1– जोधपुर ख्यात., 1, पृ. 255; पोथी (ग्रन्थ सं. III), प-414 ख 415 क।
2– जोधपुर ख्यात., 1, पृ. 255; पोथी (ग्रन्थ सं. III), प-414 ख-415 क।
3– बही., पृ. 191, 199।
4– विगत., 2, पृ. 78-80।
5– दूगड़, 1 वंश-परिचय, पृ. 3-4।
6– हिन्दुस्तानी., पृ. 275।
7– बही., पृ. 211-12 (मुहतां रा पट्टा)।

रिश्तेदार को किसी बड़े पद पर नियुक्त किया हो, उसका भी किसी समकालीन या बाद के प्रामाणिक आधार-ग्रन्थ[1] में उल्लेख तो क्या संकेत भी नहीं है। मुहणोत नैणसी के भाई सुन्दरदास और आसकरण नैणसी के देश-दीवान बनने के पूर्व ही परगना हाकिम थे और बाद में नैणसी का पुत्र कर्मसी भी हाकिम बना। परन्तु परगना-हाकिम की नियुक्ति राजा स्वयं करता था।

यों उपर्युक्त कारणवश ही महाराजा जसवन्तसिंह ने सोमवार, 24 दिसम्बर, 1666 ई. को[2] मुहणोत नैणसी और सुन्दरदास को लाहोर के मुकाम पर पदच्युत किया। इस समय तन-दीवान मुहणोत सुन्दरदास महाराजा जसवन्तसिंह के साथ लाहोर में ही था।[3] 10 मार्च, 1667 ई. को जसवन्तसिंह वापस दिल्ली लौट आया था और 11 मार्च, 1667 ई. को उसने बादशाह औरंगजेब से भेंट की।[4] इसी समय महाराजा जसवन्तसिंह को दक्षिण जाने का आदेश हुआ था। इसी समय जसवन्तसिंह ने पदच्युत देश-दीवान नैणसी को भी अपने पास बुला लिया था। तब दक्षिण जाते समय मुहणोत नैणसी और सुन्दरदास भी जसवन्तसिंह के साथ ही थे। 57 वर्षीय पदच्युत देश-दीवान मुहणोत नैणसी और उसके भाई मुहणोत सुन्दरदास को औरंगाबाद के मुकाम पर शुक्रवार, 29 नवम्बर, 1667 ई. (पोष बदि 9, 17 24 वि.) को बन्दी बना लिया गया।[5] एक वर्ष तक बन्दी रखाकर महाराजा जसवन्तसिंह ने उससे एक लाख रुपये की मांग की तथा यह आदेश देकर कि उक्त राशि कबूलात के रूप में राजकीय खजाने में जमा करा दें, 1668 ई. (1725 वि.) में उसको छोड़ दिया गया।[6] परन्तु नैणसी जैसा स्वामी-भक्त, ईमानदार और स्वाभिमानी व्यक्ति लाख रुपये तो क्या एक पैसा भी देने को तैयार नहीं था।[7] अतः मंगलवार, 28 दिसम्बर, 1669 ई. (माह बदि 1, 1726 वि.) को जसवन्तसिंह ने मुहणोत नैणसी को पुनः बन्दी बना लिया। तब नैणसी को अनेक प्रकार की यातनाएं दी जाने लगी, जिससे नैणसी को बहुत आत्मग्लानी हुई। जो लोग उसके अधीन थे, अब वे ही उस पर अत्याचार कर रहे थे। अतः ऐसे जीवन से तो मर जाना ही उसने अच्छा समझा। यही सोचकर फूलमरी गांव[8] में (भाद्रपद बदि 13-1717 वि.) बुधवार, 3 अगस्त, 1670 ई. को[9] नैणसी और उसके भाई सुन्दरदास दोनों ने आत्म हत्या कर ली।[10]

1– विगत., जोधपुर ख्यात., 1।
2– जोधपुर ख्यात., 1, पृ. 238-39, 254-55, वही. पृ. 191।
3– वही., पृ. 191।
4– जोधपुर ख्यात., 1, पृ. 239।
5– जोधपुर ख्यात., 1, पृ. 251।
6– जोधपुर ख्यात., 1 पृ. 251; पोथी. (ग्रन्थ सं. III), प. 415 क।
7– बांकी. (क्र. सं. 2106, पृ. 174)।
8– फूलमरी (20.5° उ., 75.25° पू.) औरंगाबाद से 14 मील उ.पू.उ. में स्थित।
9– पोथी. (ग्रन्थ सं. III), प. 415 क।
10– बाल. (1, प. सं. 93)।

नैणसी की बौद्धिक क्षमता, शैक्षणिक प्रशिक्षण और इतिहास विषयक विद्वता

यह तो स्पष्ट ही है कि मारवाड़ में जन्मा और वहीं पाला-पोसा गया तथा प्रशिक्षित हुआ नैणसी राजस्थानी-हिन्दी के साथ ही डिंगल भाषा में पूरी तरह से पारंगत था। नैणसी के जीवनकाल में मारवाड़ के राजदरबार में कवियों का विशेष समादर होता रहता था। अनेक चारणों को लाख-पसाव दिये गये थे। महाराजा जसवन्तसिंह स्वयं भी सुकवि तथा साहित्यशास्त्र का पूर्ण विद्वान था। नैणसी ने अपनी ख्यात. में यत्र-तत्र संदर्भों के उपयुक्त छंद उद्धृत किये हैं। उसके स्वरचित कुछ दोहे तो आज भी सुज्ञात हैं।[1] उसकी काव्य-रचना पर्याप्त संख्या में सुलभ नहीं होने के कारण यदि तत्काल कवियों में उसकी गणना नहीं भी की जावे, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि वह राजस्थानी या ब्रजसाहित्य और काव्य से अनभिज्ञ था।

नैणसी के इतिहास-ग्रन्थ ख्यात. और विगत. का गहन अध्ययन करने पर यह निश्चित अनुमान लगाया जा सकता है तब वहां सुलभ और उपयुक्त सारे शैक्षणिक प्रशिक्षण के साथ ही उसे सैनिक प्रशिक्षण भी दिया गया था। नैणसी की सैनिक और प्रशासनिक कार्यों में प्राप्त सफलता से सैनिक-संचालन और युद्ध व्यूह-रचना विषयक उसकी क्षमता का भी पूरा पता चलता है। उसने प्रत्येक सैनिक अभियान में सफलता प्राप्त की थी। जैसलमेर पर चढ़ाई के समय विभिन्न परगनों से सेनाओं और युद्ध का अन्य आवश्यक सामान एकत्रित करने तथा चढ़ाई करने में कदापि यत्किंचित् विलम्ब भी नहीं होने देने से व्यवस्था कर सकने की उसकी कार्य-क्षमता का परिचय मिलता है। इसी प्रकार उसने विभिन्न सैनिक अभियानों में उपद्रवकारियों अथवा आक्रमणकारियों के क्षेत्रों के गांवों पर आक्रमण कर वहां लूटमार कर या जलाकर ऐसा आतंक फैला दिया था कि वे आक्रमणकारी पुनः विद्रोह करने का साहस नहीं कर पाये। विभिन्न प्रशासनिक पदों पर नियुक्ति होने पर उसने परगनों में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखी और देश दीवान नियुक्त होने पर प्रशासन में अनेक समयोचित अत्यावश्यक सुधार कार्य किये थे। ये सब उसकी बुद्धिमत्ता और उसकी बौद्धिक क्षमता के ही परिचायक थे।

नैणसी ने सम्पूर्ण राजस्थान के राजवंशों का ही नहीं, परन्तु भारत के कई अन्य दूरस्थ राजपूत राजघरानों के भी ऐतिहासिक विवरण एकत्र करने की विस्तृत योजना बनायी थी। पुनः जोधपुर राजघराने के आधीन मारवाड़ के सब ही परगनों की विस्तृत ब्यौरेवार विगत. लिखने का जो सफल आयोजन किया था, उस सबसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि नैणसी राजस्थान के ही नहीं अन्यत्र क्षैत्रीय राजपूत राजघराने के इतिहासों का भी गहन विद्वान था। तब वहां जो भी सुलभ हो सके उन सारे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थों की उसे पूरी-पूरी जानकारी थी और उन सभी को ध्यान में रखकर उसने अपनी ये दोनों योजनाएं बनायी थी।

1– ख्यात. (प्रतिष्ठान) 4, पृ. ७४।

अपने इतिहास ग्रन्थों की रचना में नैणसी का मुख्य उद्देश्य, उसके आयोजनों का तौर-तरीका तथा उसकी सम्भावित रूप-रेखा

मुहणोत ने सर्वप्रथम अपनी ख्यात के लिए जानकारी का संकलन किया और बाद में उसको लिखने का कार्य प्रारम्भ किया। वह 33 वर्ष की अवस्था में सन् 1643 ई.[1] से ही ख्यात. की सामग्री के संकलन के कार्य में जुट गया था। ख्यात. का सांगोपांग अध्ययन करने पर स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि मुहणोत नैणसी भारत-भर के तत्कालीन सब ही सुविख्यात राजपूत राजवंशों का क्रमबद्ध इतिहास लिखना चाहता था। इसी उद्देश्य से उसने गुहिलोत, सीसोदिया, चन्द्रावत, चौहान, राठोड़, कछवाहा, भाटी, परमार और सोलंकी आदि सब ही प्रमुख विभिन्न राजपूत राजवंशों से सम्बन्धित सारी प्राप्य ऐतिहासिक आधार सामग्री का वृहत संकलन किया।

सभी राजपूत राजवंशों का ऐसा इतिहास लिखने के लिए सूझ-बूझ पूर्ण एक निश्चित योजनाबद्ध तरीके से कार्य करना आवश्यक था। अतः नैणसी ने सभी राज्यों अथवा राजवंशों के इतिहास से सम्बन्धित सामग्री संकलन की योजना बनायी और यह निश्चय किया कि सामग्री संग्रह के बाद ही उन सभी राज्यों अथवा राजघरानों का व्यवस्थित और क्रमबद्ध इतिहास लिखा जावे। अतः उसने लगभग 1643 ई. से ही सामग्री संकलन कार्य प्रारम्भ किया। जिन-जिन स्थानों पर भी वह गया, वहां की जानकारी प्राप्त करने के लिए उसने सारे सम्भावित सूत्रों की टोह लेकर उनसे सम्पर्क साधा और अपेक्षित सारी ऐतिहासिक बातें लेखबद्ध की। प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन कर उपयोग की सामग्री को संकलित किया। प्रचलित प्रवादों और पद्यों का भी संकलन किया गया।

नैणसी का दूसरा ऐतिहासिक ग्रन्थ 'मारवाड़ रा परगनां री विगत' है। मुहणोत नैणसी जसवन्तसिंह कालीन मारवाड़ के सभी परगनों का ऐसा क्रमबद्ध विस्तृत ब्यौरा लिखना चाहता था। अतः 1662 ई. (1719 वि.) में उसने सभी परगना-हाकिम अथवा कानूनगो को निर्देश दिये कि वे अपने-अपने परगने का पंचवर्षीय (1658-1662 ई.) सर्वेक्षण तैयार करवाकर उसके पास भेजें। यों कुछ ही समय में सात परगनों का विवरण तो उसको प्राप्त हो गया। जिनका वह अपनी उक्त विगत. में उपयोग कर सका। जोधपुर परगने के ऐसे इतिवृत्त में उसने परगने के साथ ही मारवाड़ राज्य और वहां के शासक राठोड़ घराने का इतिहास तैयार करवाया। इस ऐतिहासिक विवरण को लिखने के लिए अपनी ख्यात. के हेतु संकलित मारवाड़ के प्रारम्भिक शासकों सम्बन्धी अधिकांश बातों का भी उसने समुचित उपयोग किया है। इसके अतिरिक्त नैणसी ने प्राचीन स्तम्भ लेख, देवली लेख, पुरानी वंशावलियों, प्राचीन पुराणादि ग्रन्थ,

---

1– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 2, पृ. 6। 'माह बदि 9, सं. 1700 वि. में मु. लखा जैसलमेर राज्य का विवरण लिखवाया।'

राज्य के कारोबार सबम्न्धी विभिन्न बहियों और राज्य ज्योतिषि घराने द्वारा तैयार किये गये पंचागों अथवा तिथिवार महत्त्वपूर्ण घटनाओं के ब्यौरों आदि का भरपूर उपयोग किया। ब्राह्मणों, चारणों आदि को दी गयी सांसण भूमि का विवरण लिखने के लिए उसने उनको दिये गये ताम्रपत्रों और पट्टों का भी उपयोग किया।

इस प्रकार अपने इन दोनों ग्रन्थों को तैयार करने के लिए नैणसी ने विभिन्न प्रकार की यथासाध्य सारी प्रामाणिक आधार-सामग्री तथा अन्य विश्वसनीय सूत्रों से जानकारी प्राप्त की। उनमें सुलभ विवरण की सत्यता या प्रामाणिकता आदि की जांच के लिये उसने अलग-अलग सूत्रों द्वारा प्राप्त प्रमाणों का समुचित उपयोग किया था ····· सारी छान-बीन के बाद जब उसे यह विश्वास हो गया कि कोई बात सही है, तब ही उसने उसे मान्य किया है।

नैणसी का इतिहास-दर्शन और इतिहास विषयक उसकी अवधारणा

मुहणोत नैणसी एक सुविज्ञ चिन्तनशील इतिहासकार था। इतिहास को उसने अत्यावश्यक वैज्ञानिक दृष्टि से देखा-भाला और परखा था। जहां तक सम्भव हो सका सही प्रामाणिक विवरण ही प्रस्तुत करना, उसका एकमात्र इतिहास-दर्शन था। ऐतिहासिक घटनाक्रम सम्बन्धी बारम्बार उठने वाले क्यों और कैसे विषयक प्रश्नों की ओर भी नैणसी ने अपने इन इतिहास-ग्रन्थों में कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। उस प्रकार के विवेचन के लिये अत्यावश्यक पृष्ठ-भूमि की सही जानकारी अथवा अधिक व्यापक क्षेत्र के लिए समुचित अध्ययन आदि का तब अभाव ही था।

ऐतिहासिक सत्य के सम्बन्ध में उसका दृष्टिकोण स्पष्ट और बहुत ही सुलझा हुआ था। अतः 'मारवाड़ रा परगनां री विगत' की रचना में उसने पूर्ण सत्यता का निर्वाह किया है। इसी कारण कहीं-कहीं पर किसी घटना या विवरण की आधार-सामग्री[1] का उल्लेख भी कर दिया है। उसने प्रत्येक घटना को तार्किक दृष्टि से देखा। इतिहासलेखन में उसका दृष्टिकोण समीक्षात्मक ही था। प्रत्येक घटना का विवरण लिखने से पूर्व उससे सम्बन्धित उपलब्ध सभी सामग्री का गहन अध्ययन कर लेता था और जहां प्राप्य विभिन्न विवरणों में अन्तर्विरोध पाता या उसे किसी भी प्रकार की कोई शंका होती जिससे उस पर अपना निर्णय नहीं कर पाता था, तब वहां स्पष्ट उल्लेख कर देता है कि 'एक बात ऐसी सुनी है'[2] अथवा ऐसा कहते हैं[3] (लोक मान्यता है), 'कोई कहता है',[4] सभी ऐसा कहते हैं[5] आदि। इसी प्रकार कोई विवरण लिखते

1– विगत., 1, पृ. 2, 1, 98, 153, 157, 391; 2, पृ. 41, 61।

2– विगत., 1, पृ. 38; 2, पृ. 69।

3– विगत., 1, पृ. 56, 484; 2, पृ. 5, 68।

4– विगत., 1, पृ. 83।

5– विगत., 2, पृ. 37।

समय जब उसके बारे में जानकारी नहीं मिल पायी, तब वहां उसने स्पष्ट उल्लेख कर दिया है कि सत्यता का पता लगाना है।[1] अथवा 'पता नहीं है।'[2] इसी प्रकार यदि नैणसी को किसी घटना के बारे में निश्चित प्रमाण नहीं मिला तो यदा-कदा उसने निजी अनुमान के आधार पर ही उस ऐतिहासिक कड़ी को जोड़ने का भी प्रयास किया है।[3] अगर किसी गांव आदि के प्रचलित नाम और दफ्तर के कागज-पत्रों के उल्लेखों में अन्तर पाया तो उसे भी उसने स्पष्ट लिख दिया है। यों उसने प्रत्येक गांव के संग्रहीत विवरण तक की प्रामाणिकता की जांच कर, उस सम्बन्धी पूरी-पूरी जानकारी अपनी विगत. में लिखी है।

उसकी मुख्य अभिरूचि

इतिहासलेखन में नैणसी की मुख्य अभिरूचि राजनैतिक इतिहास लिखने की ही रही है। उसके द्वारा रचित विगत. और ख्यात. के अध्ययन से उसकी यह अभिरूचि हो जाती है। विगत. में प्रत्येक परगने की अलग-अलग विगत लिखते समय सर्वप्रथम उस परगने का पूर्वकाल से जसवन्तसिंह तक का ब्यौरेवार यथासाध्य प्रामाणिक इतिहास दिया गया है।

नैणसी द्वारा लिखे गये राजनैतिक इतिहास में अन्य बातों का अनायास ही समावेश हो गया है, जिनसे तत्कालीन प्रशासन और समाज की बहुत कुछ जानकारी प्राप्त हो जाती है। उसके राजनैतिक एवं सामरिक विवरणों में राजपूत विवाह और सती-प्रथा आदि के बारे में प्रासंगिक उल्लेख मिलते हैं, जिनसे तत्कालीन राजपूतों में विवाह सम्बन्धी परम्पराओं और सती-प्रथा पर प्रकाश पड़ता है। इसी प्रकार उत्तराधिकार सम्बन्धी राजपूत संहिता, हिन्दुओं की धार्मिक मान्यताओं और हिन्दुओं के विभिन्न जातीय उत्सवों और आमोद-प्रमोद के तत्कालीन साधनों आदि के कई प्रासंगिक उल्लेख मिलते हैं। नैणसी ने सब ही सम्बन्धित राज्यों की राजधानियों की भौगोलिक स्थिति स्पष्ट करने हेतु उन नगरों से अन्य प्रमुख नगरों की दूरी का भी यथास्थान उल्लेख कर दिया है जिससे नैणसी की ही नहीं तत्कालीन प्रबुद्ध शासक वर्ग में सुलभ भौगोलिक जानकारी के स्पष्ट संकेत मिल जाते हैं।

मानव और उसकी समस्याओं आदि के प्रति नैणसी का दृष्टिकोण

प्रत्येक युग के हरेक क्षेत्र और समाज के साथ उनके वर्गों आदि की अपनी-अपनी मानवीय समस्याएं रही हैं, जिनका तत्कालीन राजनीति पर ही नहीं समाज तथा शासन पर सीधे या परोक्ष रूपेण पर्याप्त प्रभाव पड़ता रहा है और जिनकी ओर सब ही प्रबुद्ध

1– विगत., 1, पृ. 181।

2– विगत., 1, पृ. 268, 284, 318, 325, 420, 474, 554; 2, पृ. 24।

3– विगत., 1, पृ. 383।

शासकों तथा अधिकारियों का ध्यान जाता रहा है। नैणसी भी ऐसी मानव समस्याओं के प्रति बहुत ही सजग था।

सब ही कालों में जनसाधारण की विशिष्ट समस्या मूलतः आर्थिक ही रही है, क्योंकि उसकी सारी गतिविधियों तथा जीवन यापन पर भी उसका अनिवार्य प्रभाव पड़ता है। पुनः व्यक्ति-विशेष, कुटुम्ब और वर्ग या क्षेत्रीय इकाई पर सीधे या परोक्ष रूपेण लगने वाले शासकीय करों की समस्या सदैव शासितों के साथ ही शासकों के सामने रही है। इन दोनों में व्यवहारिक मध्यवर्ती उचित हल निकालना राज्य के उच्चाधिकारियों का कर्तव्य होता था और उसमें ही उसकी मानवीयता तथा चतुराई स्पष्ट होती थी।

नैणसी ने अनेकों परगनों के हाकिम पद पर कार्य करते हुए मारवाड़ राज्य की आर्थिक व्यवस्था को अच्छी तरह जाना-बूझा था और उसने जनसाधारण को लगने वाले करों के भार को कम करने के लिये कदम उठाये थे।

नैणसी ने अपने ग्रन्थों में प्रासंगिक रूप में स्त्रियों की तत्कालीन दशा पर भी यत्र-तत्र प्रकाश डाला है। मध्यकाल में सामान्यतः सब ही वर्गों की स्त्रियों की दशा अच्छी नहीं थी। उनको घर या समाज में कोई उपयुक्त सम्मान नहीं दिया जाता था। अपने पति की आज्ञाकारिणी होकर स्त्रियों को घर की दासी के रूप में रहना पड़ता था, अन्यथा पति द्वारा उनकी दुर्दशा की जाती थी।[1] पति द्वारा उसका बहुत अधिक अपमान और दुर्दशा किये जाने पर स्त्री अपने पति को छोड़कर चली जाती थी।[2]

उसका कालक्रम-विज्ञान : कालावधि तथा इतिहास के प्रति उसकी अभिव्यक्ति

विगत. के अध्ययन से हमें पता चलता है कि नैणसी ने इतिहासलेखन के सन्दर्भ में कालक्रम-विज्ञान के महत्त्व को पूरी तरह से समझा ही नहीं था बल्कि पूरी तरह से उसकी विधि को अपनाया भी था। विगत. में प्रत्येक परगने के विवरण को प्रस्तुत करने में उसने उसमें वर्णित घटनाओं के सही कालक्रम का पूरा ध्यान रखा था। प्रत्येक शासक सम्बन्धी विवरण तथा तत्कालीन घटनाओं का तिथि-क्रमानुसार ही क्रमबद्ध विवरण लिखा है।[3] अपवाद स्वरूप कहीं-कहीं तिथि-क्रम का निर्वाह नहीं हो पाया है, इसमें नैणसी का ही दोष था यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि सम्भव है कि प्रतिलिपिकर्ताओं की असावधानी से ही ऐसा हुआ हो। जोधपुर परगने के इतिहास में राव मालदेव का विवरण पूरी तरह व्यवस्थित नहीं है।

1– विगत., 2, पृ. 493-94; ख्यात. (प्रतिष्ठान), 3, पृ. 141-48, 281।

2– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 3, पृ. 148।

3– विगत., 1, पृ. 150, 170-86, 383-90, 493-96।

विगत. में गांवों के विवरण प्रस्तुत करने में भी नैणसी ने एक सुव्यवस्थित क्रमबद्ध पद्धति का अनुसरण किया है। सर्वप्रथम परगने के विभिन्न तफों और उनके गांवों की संख्याएं दी हैं। तदनन्तर आबाद बस्तियों तथा निर्जन गांवों की संख्याएं, उनमें विशेष रूपेण बसने वाली जातियों के आधार पर प्रत्येक जाति के गांवों की अलग-अलग सूचियां दी हैं। गांवों की ऐसी अनेक प्रकार की अलग-अलग सूचियां देने के बाद नैणसी ने परगने के प्रत्येक गांव का अलग-अलग क्रमबद्ध विवरण लिखा है, जिसमें गांव की रेख, गांव की भौगोलिक स्थिति, गांव में बसने वाली जातियों सम्बन्धी स्पष्ट जानकारी, उस गांव में सिंचाई अथवा पीने के पानी के साधनों आदि का विवरण दिया गया है। उस गांव सम्बन्धी विशेष जानकारी तथा उसके बारे में कई ऐतिहासिक बातों को भी दे दिया गया है। अन्त में उस गांव की वार्षिक आय के सं. 1715 से 1719 तक के आंकड़े दिये गये हैं।

नैणसी ने प्रत्येक परगने का इतिहास तो लिखा है, परन्तु विभिन्न गांवों के जो विवरण दिये हैं, उनमें भी मारवाड़ के विगत. इतिहास सम्बन्धी इतनी जानकारी खण्डशः मिलती है कि उसको संकलित कर राठौड़ राजघराने, वहां के शासकों अथवा मारवाड़ क्षेत्र के इतिहास की अनेकों लुप्त कड़ियां जोड़ी जा सकती हैं। किसी गांव में तब विद्यमान पुरातत्त्व का भी उल्लेख कर दिया गया है।[1] सिवाणा क्षेत्र में अनेकों गांव ऐसे हैं जिनमें उस क्षेत्र के मूल निवासी नहीं रहते हैं। बाद में राजपूत अपनी बसी लेकर वहां जा पहुंचे और ये गांव बसते गये।[2] पूर्वकाल में किस प्रकार राजपूत घरानों ने अपने कुटुम्बों और अपनी बसी के अन्य जातीय अनुचरों को साथ लाकर इन क्षेत्रों में गांव बसाये थे। इसकी कुछ झलक सिवाणा आदि परगनों के गांवों में इन विवरणों से मिलती है। कई एक गांवों की बसावट में समय-समय पर हुए हेर-फेरों की भी जानकारी[3] यत्र-तत्र गांवों सम्बन्धी इन विवरणों में मिलती है। किन्हीं गांवों सम्बन्धी पुराणकालीन घटनाओं विषयक जो भी किंवदन्तियां तब वहां प्रचलित थी उन्हें भी इन विवरणों में सम्मिलित कर लिया गया था।[4] सांसण में दिये गये कई विवरणों से उस क्षेत्र के पुरातन इतिहास पर नया प्रकाश पड़ता है।[5] इस प्रकार नैणसी द्वारा संकलित और प्रस्तुत बहुविध ऐतिहासिक अथवा तदर्थ उपयोगी आधार-सामग्री से नैणसी के विस्तृत गहन इतिहास-बोध की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है।

1– विगत., 2, पृ. 241।

2– विगत., 2, पृ. 249, 250, 251-55।

3– विगत., 2, पृ. 255।

4– विगत., 2, पृ. 250।

5– विगत., 2, पृ. 266-67, 268।

भौगोलिक, स्थानीय और जातिवृत्त-सम्बन्धी विवेचन में उसकी विशेष सजगता

राजनैतिक इतिहास के साथ सदैव से तत्कालीन राजनैतिक भूगोल का सर्वथा अकाट्य सम्बन्ध रहा है। विभिन्न पड़ोसी राज्यों के बीच उनके बीच के सीमांकन को लेकर चिरकाल से पारस्परिक विवाद, झगड़े और युद्ध होते रहे हैं एवं यह अत्यावश्यक ही नहीं अनिवार्य भी होता है कि प्रत्येक राज्य की बाह्य सीमाओं का सही निर्धारण और स्पष्ट सीमांकन हो। नैणसी ने अपनी ख्यात में सतत प्रयत्न किया है कि विभिन्न राज्यों की राजनैतिक सीमाओं का भौगोलिक विवरण भी दे देवें। पुनः राज्य के निवासियों का चरित्र, जन-जीवन की गतिविधियों, कृषि और उद्योगों आदि पर उस क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियां, आबोहवा, नदी-नालों और सिंचाई के साधन, आवागमन के मार्गों आदि का पूर्ण प्रभाव पड़ता है। अतः नैणसी ने तत्सम्बन्धी सारी जानकारी एकत्र कर उसे भी उस राज्य का विवरण लिखते समय यथास्थान लिख दिया है।

किसी प्रदेश, क्षेत्र या नगर-गाँव के सामाजिक, आर्थिक या सांस्कृतिक इतिहास को कोई भी स्वरूप या दिशा देने में प्राकृतिक परिस्थितियों, राजनैतिक समस्याओं के साथ ही मानवीय जनसाधारण का बहुत बड़ा हाथ रहता है। अतएव मारवाड़ के विभिन्न नगरों, कस्बों के साथ ही गांवों में बसने वाली सभी जातियों के महत्त्व को समझकर ही अपने इतिहासलेखन में मुहणोत नैणसी ने जातियों के उल्लेख की ओर विशेष ध्यान दिया है। विगत. में जोधपुर के अतिरिक्त अन्य परगना केन्द्र नगर में निवास करने वाली जातियों का विवरण दिया है। यह जानकारी यथासम्भव प्रामाणिक हो इस बात की ओर नैणसी का विशेष ध्यान था। अतः सोजत में निवास करने वाली विभिन्न जातियों की जानकारी उसने पंचोली रामदास से मंगवायी थी। जैतारण, फलोधी, मेड़ता, सिवाणा और पोहकरण नगर की जनसंख्या के बारे में स्वयं ने लिखा है।[1]

नैणसी ने विगत में प्रत्येक गांव में निवास करने वाली प्रमुख जातियों का उल्लेख किया है जिससे उस गांव के जनसाधारण के बारे में शासन को समुचित जानकारी सुलभ हो, क्योंकि बस्ती सम्बन्धी शासकीय अथवा आर्थिक या सामाजिक समस्याओं का स्वरूप मूलतः वहां के निवासियों पर ही निर्भर रहता है। गांवों में बसने वाली जातियों सम्बन्धी इन उल्लेखों से जहां परगनों के अनेकों पूर्ववर्ती निर्जन-क्षेत्रों में तब समय-समय पर हुए नये बसावों की जानकारी मिलती है। मारवाड़ राज्य के विभिन्न परगनों में निवास करने वाली अनेकानेक जातियों की जानकारी तथा बड़े नगरों या कस्बों में बसने

1– विगत., 1, पृ. 391, 496-97; 2, पृ. 9, 83-86, 223-24, 310।

वालों की अलग-अलग जातिगत व्यक्तियों या उनकी दुकानों की संख्याएं आदि भी संगृहीत कर विगत में यथास्थान यत्र-तत्र दे दी है।[1]

अन्ततः विभिन्न युद्धों में काम आये हुओं की जो सूचियां नैणसी ने अपने ग्रन्थों में दी हैं, उनमें सरदारों अथवा राजपूत योद्धाओं के साथ ही कई एक अन्य जातियों के व्यक्तियों के नाम भी मिलते हैं, जैसे चारण,[2] ब्राह्मण-पुरोहित,[3] कायस्थ और ओसवाल जातीय अधिकारी,[4] गुजर-धायभाई,[5] नाई ढोली।[6] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इन युद्धों में राजपूतों के साथ ही अन्य जातीय योद्धा भी भाग लेते थे और मारे जाते थे। राजपूत सरदारों और योद्धाओं की नामावली देते हुए उनकी खांपों का भी अनिवार्य रूपेण उल्लेख कर दिया है। इस प्रकार नैणसी ने अपने इस जाति-बोध की अभिव्यक्ति के द्वारा उस काल में राजपूतों की अलग-अलग खांपों या उपखांपों और विभिन्न जातियों के साथ शासन के सम्बन्धों और उनके सहयोग आदि पर विशेष प्रकाश डाला है और साथ ही तत्कालीन सामाजिक इतिहास सम्बन्धी जानकारी के कुछ सूत्र मिल जाते हैं।

इतिहासलेखन सम्बन्धी उसके उपक्रम का वस्तुस्वरूप और विविध आधार-स्रोत तथा उनके उपयोग की रीति

नैणसी ने अपने इतिहास ग्रन्थों की रचना करने के लिए तदर्थ आवश्यक तर्कसंगत उपयुक्त उपक्रम को अपनाया। सर्वप्रथम उसने सम्बन्धित विषय की सभी प्रकार की विश्वसनीय या प्रामाणिक आधार सामग्री का संकलन किया। तब उसकी पूरी जांच पड़ताल करने के बाद समुचित रूपेण ब्यौरेवार क्रमबद्ध किया। तदनन्तर ही उसके आधार पर उसने अपने ग्रन्थों को क्रमशः लिखने का कार्य प्रारम्भ किया। ख्यात में तो उसने अधिकांश आधार-स्रोतों का उल्लेख कर दिया जिससे उसके द्वारा दिये गये विवरण की प्रामाणिकता के बारे में बाद के संशोधकों को सन्देह नहीं रहे तथा यदि कोई चाहे तो उस जानकारी के आधार पर अपनी राय बना सके और अधिक खोज कर पाये। विगत. विशुद्ध रूप से ब्यौरेवार घटनापूर्ण इतिहास-ग्रन्थ है। उसमें उसने जोधपुर परगने के विवरण में राठोड़ों के प्रारम्भिक इतिहास में ख्यात में संगृहीत विभिन्न बातों का भी उपयोग किया। एक ही शासक के बारे में जहां अनेक बातें ज्ञात हुई, वहां उसने

1– विगत., 1, पृ. 186-88, 496-97; 2, पृ. 9, 10, 223-24।
2– विगत., 1, 62-63, 105, 184।
3– विगत., 1, पृ. 184।
4– विगत., 1, पृ. 73, 81, 98, 114, 185।
5– विगत., 1, पृ. 76, 87, 145।
6– विगत., 1, पृ. 72, 185।

उन सबका अध्ययन कर अपने निश्चय के अनुसार प्रामाणिक विवरण देने का प्रयत्न किया। ऐसा विवरण देते समय यदि किसी घटना सम्बन्धी विवरणों में भिन्नताएँ होती थी और वह कोई निर्णय नहीं ले पाया, तब वहाँ उसने स्पष्ट रूप से लिख दिया कि ऐसी बात भी प्रचलित है अथवा ऐसा भी सुना जाता है। साथ ही जहाँ किसी के बारे में उसे शंका थी तो उसके लिए उसने लिख दिया कि तत्सम्बन्धी जाँच करनी है अथवा इसके बारे में कोई पता नहीं चलता है। इसके अतिरिक्त नैणसी ने अनेक शासकों सम्बन्धी प्रस्तुत इतिवृत्तों की प्रामाणिकता का समर्थन करने के लिए सर्व साधारण में प्रचलित तत्कालीन पद्यों को भी उद्धृत किया है।

नैणसी कृत मारवाड़ रा परगना री विगत

प्रमुख राजपूत राजघरानों की वंशावलियां और उनका क्रमबद्ध इतिहास लिखने की अपनी योजना में नैणसी ने सर्वप्रथम अपने वतन क्षेत्र मारवाड़ पर लिखने का निश्चय किया। परन्तु मारवाड़ राज्य और वहाँ के राठोड़ राजघराने का इतिहास लिखने की सोचना उसे पर्याप्त और समीचीन नहीं ज्ञात हुआ, एवं उसने मारवाड़ की राजधानी जोधपुर के अतिरिक्त जसवन्त सिंह कालीन मारवाड़ के बाकी रहे अन्य छः ही परगनों का भी अलग-अलग क्रमबद्ध प्रामाणिक इतिहास लिखने की योजना बनायी। उसके अन्तर्गत जोधपुर समेत कुल छः परगनों का पूरा विवरण लगभग 1664 ई. तक लिखा जा चुका था।[1] सातवें परगने, पोहकरण, का विवरण तब भी बाकी रह गया था और सन् 1666 ई. में तैयार करवाया जा रहा था। तब ही उसको एकाएक पदच्युत कर कैद किये जाने के कारण उसका विवरण अपूर्ण ही रह गया।[2] पोहकरण परगने के 25 गांवों के विवरण तब तक लिखे नहीं गये थे, एवं सब ही 86 गांवों के विवरणों को तदन्तर समुचित क्रम में व्यवस्थित करने का आवश्यक काम भी रह गया था। यों इस सातवें परगने का विवरण पूरा नहीं किया जा सका।

अबुल फजल की भांति नैणसी को उसके शासक ने इतिहास लिखने का कोई आदेश नहीं दिया था और न महाराजा जसवन्तसिंह की प्रेरणा से ही उसने अपना कोई भी ग्रन्थ लिखा था। नैणसी के ग्रन्थों में और समकालीन तथा बाद के किसी भी उपलब्ध प्रामाणिक ग्रन्थ में यह उल्लेख नहीं मिलता है कि ग्रन्थ लिखने के लिए नैणसी को किसी ने आदेश दिया हो। यदि ऐसा होता तो नैणसी उसका उल्लेख अवश्य ही अपने ग्रन्थों में कर देता।

1– विगत., 1, पृ. 189, 402, 500; 2, पृ. 10, 80, 223। परन्तु जोधपुर परगने का ऐतिहासिक विवरण उसके बाद भी अप्रेल 16, 1666 ई. तक जोड़ा जाता रहा था। विगत. 1, पृ. 150।

2– विगत 2, पृ. 355-356।

विगत की प्रमुख विशेषताएँ

विगत अपनी विशिष्ट विशेषताएँ लिए हुए हैं। नैणसी ने कुल सात परगनों का वर्णन किया है। सर्वप्रथम प्रत्येक परगने का राजनैतिक इतिहास प्रारम्भ से लेकर जसवन्तसिंह के शासनकाल के पूर्वार्द्ध (लगभग 1622 वी.) तक का लिखा है। तदन्तर प्रत्येक परगने के कुल गांवों की संख्या की जानकारी दी है। इसके बाद तत्कालीन मारवाड़ में पायी जाने वाली प्रमुख जातियों के निवास के अनुसार गांवों की सूची, कई जातियाँ साथ निवास करने वाली जातियों के गांवों की सूचियां दी गयी हैं और तदन्तर प्रत्येक गांव का सं. 1715 से 1719 तक का पाँच-वर्षीय सर्वेक्षण विवरण दिया है।

सन् 1655 ई. में महाराजा जसवन्तसिंह के आधीन मारवाड़ प्रदेश के सातों ही परगनों का एक-एक कर क्रमशः विस्तृत विवरण इस विगत. में इस प्रकार दिया है कि उसे पढ़कर पाठक को उक्त परगनों के सम्बन्ध में हर प्रकार की ऐसी जानकारी हो सके, जिससे वहाँ के शासकीय प्रबन्ध को किसी प्रकार की कठिनाई और उलझन का सामना नहीं करना पड़े। प्रत्येक परगने का वर्णन करते समय उसने परगना केन्द्र कस्बे से सम्बन्धित आवश्यक जानकारी दी है, जैसे उस कस्बे की स्थापना कब कैसे हुई थी, उसका नामकरण कैसे हुआ और उसका पूर्ववर्ती कोई नाम रहा है तो वह भी दे दिया गया है।[1] उन परगना-केन्द्र कसबों की स्थापना से पहिले उस परगना या क्षेत्र का व्यवस्था-केन्द्र कहीं अन्य रहा होगा तो उसका उल्लेख भी कर दिया गया है, जिससे उस परगना-केन्द्र के साथ उस क्षेत्र के प्रारम्भिक प्राचीन इतिहास से लेकर महाराजा जसवन्तसिंह के शासनकाल में लगभग सन् 1664-65 ई. (सं. 1721 वि.) तक के इतिहास का विवरण दे दिया है।[2]

विभिन्न परगनों के ऐतिहासिक विवरणों में परगना जोधपुर का विवरण बहुत ही विस्तृत होने के साथ विशेष महत्त्वपूर्ण भी है। मारवाड़ राज्य की स्थापना के समय से ही मंडोवर नगर उसकी राजधानी रहा। अतः मंडोवर शहर का प्राचीन इतिहास देखते हुए नैणसी ने मारवाड़ क्षेत्र राठोड़ों से पूर्ववर्ती (प्रतिहार) शासकों का विवरण दे दिया है। मंडोवर पर राठोड़ों का कब कैसे आधिपत्य हुआ और जोधपुर शहर की स्थापना कब हुई आदि जानकारी दी है। उस नगर की स्थापना के बाद जोधपुर परगना-केन्द्र के साथ ही राठोड़ों के मारवाड़ राज्य का भी प्रमुख शासन-केन्द्र बन गया था। जोधपुर परगने के ऐतिहासिक विवरण के अन्तर्गत वस्तुतः मारवाड़ राज्य और

1– विगत. 1, पृ. 1, 383, 493; 2, पृ. 37, 215, 216, 289-90।

2– विगत., 1, पृ. 1-189; 383-90, 463-96, 2, पृ. 1-8, 37-77, 215-20, 289-309।

वहां के राठोड़ राजघराने का यथासम्भव प्रामाणिक इतिहास सविस्तार दिया गया है।[1] यों विगत. में जोधपुर परगने के इतिहास के अन्यर्गत दिया गया मारवाड़ के राठोड़ राजघराने का इतिवृत्त उसी की ख्यात में दिये गये ऐतिहासिक विवरण का हर तरह से पूरक हो गया है। ख्यात. की ही तरह विगत में दिया गया प्रारम्भिक कालीन इतिवृत्त मूलतः प्राचीन प्रवादों, प्रचलित कथानकों या दन्तकथाओं पूर्ण ख्यातों पर ही आधारित है, परन्तु जोधपुर की स्थापना और विशेषकर मालदेव के बाद के विवरणों की घटनाओं में अधिकतर तिथि, माह, संवत् भी दिये गये हैं, जो अन्य प्रमाणों के आधार पर जांचे जाने पर सही प्रमाणित होते हैं।[2]

जोधपुर परगना के विवरण में ही राठोड़-मुगल सम्बन्धों विषयक पूरी प्रामाणिक जानकारी दी गयी है। अकबर के समय में कोई 18 वर्ष (1565-1583 ई.) तक जोधपुर नगर पर मुगल आधिपत्य रहा। राव मालदेव के द्वितीय पुत्र उदयसिंह ने पहिले से ही अकबर की आधीनता स्वीकार कर ली थी। अतः उसको मारवाड़ का राज्य मिलने के बाद जोधपुर के शासक मुगल आधीनता में ही रहे। तब से समय-समय पर मुगल शासकों की ओर से जोधपुर के शासकों को मिलने वाले मनसब तथा उसमें वृद्धि का ब्यौरेवार वर्णन सन्-संवतों सहित पूरा मिलता है। साथ ही मनसब के वेतन के बदले जागीर में दिये जाने वाले सारे परगनों के नाम, उनकी सम्भावित आय आदि के आंकड़ों सहित उनका भी पूरा वर्णन है।[3] उक्त विवरणों में मनसबदारी प्रथा के नियमों में 17वीं सदी में जो परिवर्तन हुए थे, उन पर भी विशेष प्रकाश पड़ता है। नैणसी द्वारा दी गयी जानकारी से यह स्पष्ट हो जाता है कि अकबर के शासनकाल में निश्चित नियमों में उल्लेखनीय हेर-फेर शाहजहां के ही शासनकाल में हुए थे। पुनः शाही आदेशानुसार स्वीकृत सवारों की संख्या में वरावर्दी और दो अस्पा से अस्पा सवारों में अपेक्षित अनुपात के बारे में भी कोई सही निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त जानकारी विगत में सुलभ है।[4] अन्य परगनों के ऐतिहासिक विवरणों में वहां का क्षेत्रीय इतिहास देते समय मारवाड़ राठोड़ राजघराने के साथ उस परगने के सम्बन्धों आदि का विशेषरूपेण उल्लेख किया गया है। पूर्व में ये क्षेत्र अन्य किस-किस शासक के आधीन रहे थे और उन पर राठौड़ राजघराने का अधिकार हो जाने के बाद मारवाड़ के महाराजाओं ने वहां किन उल्लेखनीय अधिकारियों को भेजा था, इसकी भी जानकारी दे दी गयी है। उन परगनों के विभिन्न शासकों या वहां के राजकीय अधिकारियों के

1– विगत. 1, पृ. 1-185।

2– विगत., 1, पृ. 42।

3– विगत. 1, पृ. 83,93, 94, 97, 105, 106, 108, 124-125, 126, 127, 129, 130,131-133,134, 145-146-149, 151,156।

4– राजस्थान., 1970, पृ. 44-47।

विशेष कार्यों का उल्लेख कर उन परगनों के इन वृतान्तों में वहां का तत्कालीन महत्त्वपूर्ण क्षेत्रीय इतिहास प्रस्तुत किया गया है।[1]

कुछ परगनों में विवरणों के प्रारम्भ में ही जोधपुर परगने के सन्दर्भ में उनकी भौगोलिक स्थिति भी स्पष्टतया दे दी गयी है।[2] परन्तु आगे चलकर तो हरेक परगने की भौगोलिक सीमाओं को स्पष्टतया निर्धारित करने का पूरा प्रयत्न किया है। तदर्थ उससे लगे हुए प्रत्येक परगने अथवा साथ लगे पड़ोसी राज्य के सीमान्त गांवों की पूरी-पूरी सूचियां दी गयी हैं,[3] जिससे उस क्षेत्र के किसी भी बड़े मानचित्र पर उस परगने का सीमांकन करना सर्वथा सरल हो गया है। यही नहीं विगत से मारवाड़ के परगनों और गांवों का बहुत ही स्पष्ट निश्चित भूगोल ज्ञात हो जाता है। राजधानी नगर जोधपुर के सन्दर्भ में प्रत्येक परगना-केन्द्र की भौगोलिक स्थिति और दूरियों का उल्लेख उसमें किया गया है। जोधपुर परगने के अतिरिक्त अन्य सब ही परगनों के परगना-केन्द्र कसबे के सन्दर्भ में उस परगने के हर गांव की भौगोलिक स्थिति का भी स्पष्ट उल्लेख करते हुए उनके बीच की दूरी और दिशा भी दे दी गयी है।[4]

विगत. में सब ही परगना-केन्द्रों के कसबों की बस्तियों के बहुत-कुछ सविस्तार विवरण दिये हैं, जिनसे उन सब ही कसबों की आबादी, वहां के जन-जीवन तथा सामाजिक अथवा आर्थिक व्यवस्था पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। जोधपुर कस्बा समूचे मारवाड़ राज्य की राजधानी था एवं उसकी आबादी और विस्तार अन्य परगना-केन्द्रों की अपेक्षा बहुत अधिक थे। अतः जोधपुर नगर के विभिन्न पहलुओं की पारस्परिक दूरियों के नाम दिये हैं और तब वहां की आबादी की गणना नहीं देकर केवल उसके अलग-अलग भागों के हाटों की गणना देते हुए उनमें किन धन्धों के लोग बैठते थे, इसका भी यत्र-तत्र उल्लेख किया है।[5] अन्य सभी परगनों के केन्द्र-कसबों, सोजत, जैतारण, फलोधी, मेड़ता, सीवाणा, पोहकरण में बसने वाली विभिन्न जातियों और पायी जाने वाली प्रत्येक जाति के व्यक्तियों की तब की गणना दी है।[6] उनसे यह बात स्पष्ट हो

1– द्रष्टव्य-विगत. (1 और 2 भाग) के परगना सोजत, जैतारण, फलोधी, मेड़ता, सीवाणा, पोहकरण का ऐतिहासिक विवरण।

2– विगत., 1, जैतारण, पृ. 493; 2, सीवाणा, पृ. 215।

3– विगत., 1, पृ. 372-82, 555-57; 2, पृ. 9, 32-34, 98-106, 278-80, 320, 22।

4– विगत., 1, पृ. 424-89, 509-54; 2, पृ. 12-31, 117-212, 232-77, 327-55।

5– विगत., 1, पृ. 188-89, 186-88।

6– विगत., 1, पृ. 391, 496-97; 2, पृ. 9, 83-86, 223-24, 310-11।

जाती है कि उस समय उन कसबों की आबादी बहुत अधिक नहीं थी, परन्तु प्रत्येक कस्बे में प्रायः सब ही विभिन्न जाति के लोग वहां पाये जाने से आवश्यक सेवाओं के लिए प्रत्येक कसबा-केन्द्र बहुत-कुछ आत्मनिर्भर था। विगत. लिखे जाते समय जोधपुर शहर तथा अन्य परगनों के केन्द्र-कसबों, सोजत, फलोधी, सीवाणा और पोहकरण की जो भी स्थिति थी इसका वृतान्त नैणसी ने उसमें दिया है।[1]

जोधपुर परगने के विवरण में ही परगना जोधपुर, परगना सोजत, जैतारण, सीवाणा और फलोधी परगनों में संवत् 1715 से 1719 या 1720 तक विभिन्न साधनों से प्राप्त वार्षिक आय की सारणी दे दी गयी है।[2] इससे मारवाड़ राज्य की आय के तत्कालीन अधिकांश साधनों पर प्रकाश पड़ता है। परगना जोधपुर के संवत् 1711 से 1720 तक के दस वर्षों में हुई वार्षिक आय के साधनों की भी पर्याप्त जानकारी दी गयी है।[3] साथ ही परगना सोजत के वर्णन में भू-राजस्व और राज्य की आय के अन्य साधनों का विवरण है।[4] इसी प्रकार मेड़ता परगना में 'परगने मेड़ता रौ अमल दस्तूर' में राजा गजसिंह के समय में परनगा मेड़ता में जो विभिन्न कर लिये जाते थे, उनका विस्तृत वर्णन दिया गया है; साथ ही जसवन्तसिंह के समय तक उसमें क्या कुछ घटा-बढ़ी हुई, उसका भी सुस्पष्ट उल्लेख किया गया है।[5] पोहकरण में भी 'परगने पोहकरण रौ अमल दस्तूर' में राज्य की आय के विभिन्न साधनों का विवरण है।[6] उक्त दिये गये विवरणों से तत्कालीन राजस्व व्यवस्था और साधनों पर पूरा प्रकाश पड़ता है। मुगलकाल में जोधपुर राज्य के इन सब ही परगनों की सीमाओं में यत्किंचित् भी छोटे-मोटे जो परिवर्तन हुए थे, विशेषतया जब कोई गांव उनमें से निकालकर अजमेर जैसे शाही खालसा के परगने में सम्मिलित कर लिये गये थे, तो उनकी भी स्पष्ट जानकारी दी गयी है।[7] इसी प्रकार किसी परगने के कोई गांव किसी पड़ौसी राज्य के अधिकार में चले गये या किसी अन्य क्षेत्र में सम्मिलित हो गये थे तो उसका भी विगत. में उल्लेख है।[8]

परगनों के ऐतिहासिक वर्णन के अन्तर्गत दिये गये विवरणों से वहाँ के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक इतिहास पर भी प्रकाश पड़ता है। उदाहरण स्वरूप जाति-प्रथा, विवाह, दहेज-प्रथा, सती-प्रथा, खान-पान और पहिनावा, विभिन्न

1– विगत., 1, पृ. 390-91; 2, पृ. 8, 215,309।
2– विगत., 1, पृ. 158-60।
3– विगत., 1, पृ. 166-68।
4– विगत., 1, पृ. 395-400।
5– विगत,. 2, पृ. 88-98।
6– विगत., 2, पृ. 232-327।
7– विगत., 1, पृ. 505, 508-9।
8– विगत., 2, पृ. 319।

देवी-देवताओं की पूजा, लोक-देवताओं में आस्था और अंधविश्वास, होली, दीपावली, रक्षा-बन्धन और दशहरा आदि प्रमुख त्यौहारों के बारे न पर्याप्त जानकारी मिलती है।[1]

राठोड़ राजवंश का राजनैतिक इतिहास लिखते समय विगत. में प्रसंगानुसार अन्य राजपूत शाखाओं पडिहार[2], चौहान[3], सोलंकी[4], सोनगरा[5], ईदा[6], सींधल[7], सांखला[8], कोटेचा[9], आसायच[10], सीसोदिया[11], भाटी[12], झाला[13], हाड़ा[14], सोढ़ा[15], बाघेला[16], कछवाहा[17], आहड़ा[18], पँवार[19], देवड़ा[20], खींची[21], गौड़[22], बुन्देला[23] आदि शाखाओं के सम्बन्ध में प्रसंगसंगत वर्णन भी यथास्थान दिया गया है।

1– विगत., 1, पृ. 1, 4-8, 12-13, 33, 64, 82, 101, 120, 150, 157, 175, 385, 388, 390, 393; 2, पृ. 1, 4, 5, 12, 41, 47, 55, 71, 219, 241, 289, 290, 293, 305, 309, 311।

2– विगत., 1, पृ. 1-2, 3,4, 38, 142।

3– विगत., 1, पृ. 2, 3, 41, 17၁।

4– विगत., 1, पृ. 5-9 15।

5– विगत., 1, पृ. 15, 104।

6– विगत., 1, पृ. 23-24, 141।

7– विगत., 1, पृ. 23, 104, 141।

8– विगत., 1, पृ. 23, 117।

9– विगत., 1, पृ. 23।

10– विगत., 1, पृ. 23।

11– विगत., 1, पृ. 27, 31, 104, 173।

12– विगत., 1, पृ. 30, 47, 69, 85-87, 93, 99, 103।

13– विगत., 1, पृ. 47-48,55।

14– विगत., 1, पृ. 51, 53, 55, 69, 115, 173।

15– विगत., 1, पृ. 52।

16– विगत., 1, पृ. 53।

17– विगत. 1, पृ. 55।

18– विगत. 1, पृ. 55।

19– विगत. 1, पृ. 96, 115।

20– विगत. 1, पृ. 104, 117।

21– विगत. 1, पृ. 116।

22– विगत. 1, पृ. 173।

23– विगत. 1, पृ. 173।

अप्रेल 16, 1658 ई. को लड़े गये धरमाट के इतिहास प्रसिद्ध युद्ध में जसवन्तसिंह के साथ भेजी गयी शाही सेना और उसमें नियुक्त मनसबदारों, उनके सहायक सेनानायकों के नामों और प्रत्येक के आधीन सैनिकों की ब्यौरेवार परन्तु अधूरी सूची विगत. में मिलती है। उस युद्ध का समकालीन विस्तृत विवरण और उस युद्ध में काम आये सेनानायकों और महत्वपूर्ण सैनिकों की विस्तृत सूचियाँ दी गयी हैं।[1]

विगत में गाँवों का विवरण भी विस्तृत और समुचित दिया गया है। प्रायः सभी गाँवों की रेख, परगना-केन्द्र से प्रत्येक गाँव की दूरी, गाँव में निवास करने वाली प्रमुख जातियों के नाम, खेती योग्य भूमि का माप, सिंचाई के साधन और उनकी संख्या, पानी का बाहुल्य या कमी, मुख्य फसलें, खेतों की किस्म, गांव की तत्कालीन दशा, और गांव में निवास करने वाले लोगों के पीने के पानी के साधन और अन्त में प्रत्येक गांव की पंचवर्षीय (1715 वि. से 1719 वि. तक) वास्तविक आय आदि के आंकड़े दिये गये हैं।[2] गांव का वर्णन करते समय गांव में कोई विशेष पेड़ थे।[3] अथवा नदी-नाले होकर निकलते थे तो उनका विवरण लिख दिया है। गांव के मन्दिर[4] आदि का भी उल्लेख कर दिया गया है। यदि किसी गांव में नमक बनाया जाता था तो यह बात भी दर्ज कर दी गयी है।[5] विपत्ति आदि के समय यदि कभी कोई शासक आकर गांव में रहा था तो उसका भी उल्लेख है जिससे इतिहास की अनेकों विलुप्त साधारण परन्तु उपयोगी कड़ियां मिल जाती हैं।[6] उदाहरणार्थ · · · विषा माँहै राव चन्द्रसैण अठै रहौ छै · · · · विषे रहाण सारीषी।[7]

इसी प्रकार यदि किसी गांव की जमीन मुकाते[8] पर दी हुई है तो उसका उल्लेख कर दिया गया है। कहीं-कहीं पर पट्टादार का नाम और नैणसी के समय में तब उसका उपभोग कर रहे जागीरदार का नाम भी दे दिया गया है।[9]

1– विगत., 1, पृ. 176, 186।

2– विगत., 1, गांवों का विवरण, पृ. 204-353, 425-89, 509-52, 2, पृ. 12-31, 116-213, 232-77, 327-55।

3– विगत., 1, पृ. 538।

4– विगत., 1, पृ. 538, 539; 2, पृ. 191, 234, 235, 315, 346।

5– विगत., 1, पृ. 444, 447-448, 457,474, 478; 2, पृ. 21, 36।

6– विगत., 2, पृ. 251, 255।

7– विगत., 1, पृ. 536।

8– विगत., 1, पृ. 330, 334-35-336, 396।

9– विगत., 2, पृ. 331-32, 333, 337,338।

ब्राह्मणों, चारणों, भाटों, भोपों, जोगियों आदि के सासण (दान) में दिये गये गांवों की जानकारी विस्तार से दी गयी है। प्रत्येक परगना में कुल कितने और कौन-कौन से गांव सासण के थे और किस किस शासक ने किसको वह गांव सासण में दिया था और उस समय (नैणसी के समय) कौन व्यक्ति उसका उपभोग कर रहा था, आदि का पूरा विवरण दिया गया है।[1] साथ ही अनेक गांवों में सासण भूमि किसको कब और क्यों दी गयी थी इसका भी उल्लेख किया गया है।[2] किसी सासण गांव के स्वामित्व में जो भी परिवर्तन हुए उनका भी उल्लेख कर दिया गया है।[3] यदि किसी गांव का कोई प्राचीन नाम था और बाद में उसका नाम बदला गया तो उसका भी उल्लेख कर दिया गया है।[4] यदि किसी व्यक्ति विशेष ने किसी गांव को बसाया तो उसकी भी जानकारी दे दी गयी है।[5]

तत्कालीन जैतारण परगने की दक्षिणी सीमा पर मेरों की बस्ती को, जिसे कालान्तर में 'मेरवाड़ा' में सम्मिलित कर लिया गया, इस क्षेत्र में मेरों ने कई नये गांव बसाये थे, उनकी जानकारी विगत में दी गयी है। यही नहीं, जिन-जिन गांवों के मेर तब राज्याधिकार नहीं मानते थे उनका भी स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया है।[6]

नैणसी के इस विगत. को तैयार करने से कोई 75-80 वर्ष पहिले अबुल फजल ने अपने सुविख्यात ग्रन्थ 'अकबरनामा' के अन्तिम भाग में मुगल साम्राज्य सम्बन्धी एकमात्र विवरणात्मक ग्रन्थ सर्वमान्य 'आईन-इ-अकबरी' की रचना की थी। उसने उसमें अकबर कालीन मुगल साम्राज्य, शाही दरबार, साम्राज्य व्यवस्था, शाही सेना और उसका संगठन आदि अनेकों विस्तृत विवरण तथा विवेचनों में तत्कालीन दरबारी जीवन और संस्कृति का विस्तृत विवरण लिखा है। अतएव तत्कालीन मुगल साम्राज्य सम्बन्धी सब ही प्रकार की जानकारी का यह सर्व-संग्रह बन गया है। ईसा की 17वीं सदी के प्रारम्भिक युगों में ही सब ही शाही कामकाज में प्रमाणित सन्दर्भ-ग्रन्थ के रूप में उसका उपयोग किया जाने लगा था। पुनः फारसी भाषाविज्ञ विद्वत समाज को तो उसकी प्रतियां अवश्य ही सुलभ हो गयी थी। यदि कहीं नैणसी फारसी भाषा में पारंगत नहीं रहा हो तथापि आइन. ग्रन्थ, उसमें वर्णित विषय, उसकी लेखन-शैली आदि से नैणसी जैसा इतिहास का ज्ञाता सुविज्ञ अवश्य ही पूर्णतया परिचित होगा इस सम्बन्ध में

1– विगत., ∠, पृ. 487।

2– विगत., 1, पृ. 37,79, 82।

3– विगत, 1, पृ. 544, 546, 548।

4– विगत., 1, पृ. 543।

5– विगत., 1, पृ. 546,549, 550, 551।

6– विगत., 1, पृ. 505, 509, 552-53।

कोई शंका नहीं होती है। अतः यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि उसी तरह के अपने इस ग्रन्थ की विगत की रूपरेखा बनाने और बाद में उसको तैयार करते समय नैणसी आइन-इ-अकबरी से कहां तक प्रभावित हुआ था।

आईन-इ-अकबरी के प्रथम भाग में शाही राजमहल, शाही दरबार, मुगल सैनिक तथा व्यवस्था सम्बन्धी विस्तृत विवरण दिया गया है। आइन. के तृतीय भाग में हिन्दुस्तान का भौगोलिक वर्णन, हिन्दू-धर्म, दर्शन, समाज और संस्कृति सम्बन्धी वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया है। विगत. में इस प्रकार के कोई विस्तृत क्रमबद्ध विधरण नहीं हैं; यत्र-तत्र केवल कुछ प्रासंगिक उल्लेख ही मिलते हैं। विगत. का स्वरूप आइन. के द्वितीय भाग की तरह का है। परन्तु आइन. के भाग-2 में विवेच्य विषय का क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत है। अकबर के सम्पूर्ण साम्राज्य के विभिन्न सूबों, सरकारों और परगनों (महलों) का वर्णन इसमें सम्मिलित किया गया है। क्षेत्र अतीव विस्तृत होने के कारण अबुल फजल के लिए अपने इस ग्रन्थ में वहां की निम्नस्तरीय उन सब ही विभिन्न छोटी-छोटी बातों का समावेश कर सकना सम्भव नहीं था, जिनका समावेश नैणसी ने अपनी विगत. में किया है।

अबुल फजल ने आइन. के इस द्वितीय भाग में प्रान्तीय शासन व्यवस्था देने की जानकारी देने के बाद सर्वप्रथम विभिन्न राजस्व अधिकारियों का विवरण दिया है। उसके बाद इलाही गज, बीघा, बिस्वा और जमीन तथा उसका वर्गीकरण आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसमें उपज के आधार पर अलग-अलग प्रकार की भूमि का पोलच, पड़ती, चचर और बंजर में वर्गीकरण किया है साथ ही इन विभिन्न प्रकार की जमीनों से कितना और किस प्रकार लगान वसूल किया जाता था इसका वर्णन है। इलाहाबाद, अवध, आगरा, अजमेर, दिल्ली, लाहोर, मुलतान और मालवा सूबों की दस-वर्षीय भू-व्यवस्था का विस्तृत विवरण, वहां के राजस्व और सरकार की जानकारी देने के बाद वहां की दोनों फसलों में पैदा होने वाली वस्तुओं के नाम और उनका भाव (मूल्य) दाम और जीतल में दिया गया है। आगे चलकर अबुल फजल ने तत्कालीन मुगल साम्राज्य के 12 सूबों का अलग-अलग ब्यौरेवार विस्तृत विवरण दिया, जो आइन. के द्वितीय भाग का सबसे महत्त्वपूर्ण जानकारीप्रद अंश है। प्रत्येक सूबे की भौगोलिक स्थिति, वहां का प्राकृतिक भूगोल तथा सीमाएं, उस सूबे में मापी जा चुकी भूमि का क्षेत्रफल, उल्लेखनीय वृक्षों और फलों सम्बन्धी आदि बहुविध विवरण दिया गया है। सूबा केन्द्र अथवा मुख्य सरकारों अथवा विशिष्ट नगरों का संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण और उनकी प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। उदाहरणार्थ-उड़ीसा के विवरण में पुरी के जगन्नाथ मन्दिर और कोणार्क के सूर्य मन्दिर का विवरण तथा वहां के खान-पान, रहन-सहन का विवरण आइन. में पढ़ने को मिलता है, प्रत्येक सूबे की कुल सरकारों तथा प्रत्येक सरकार के अन्तर्गत सब ही परगनों की मापी गयी भूमि का क्षेत्रफल बीघा-बिस्वा में, प्रत्येक का राजस्व, सुयूरगल और वहीं नियुक्त घुड़सवारों और पैदल सैनिकों की संख्याएं दी हैं। यों सूबा, सरकार और परगनों या महलों का

आर्थिक विवरण ही सर्वाधिक दिया गया है। वहीं की राजस्व व्यवस्था की जानकारी दी गयी है। जैसे अजमेर और चित्तौड़ के पहाड़ पर पत्थर के सुदृढ़ किलों का उल्लेख उसमें है। मारवाड़ के विभिन्न स्थानों के किलों की स्पष्ट जानकारी है। विभिन्न परगनों में बसने वाली अथवा वहां शासन कर रही प्रमुख जातियों की जानकारी संक्षेप में दे दी है। अतः आइन. में शासन व्यवस्था के साथ ही वहां के समकालीन जन-जीवन का प्रतिबिम्ब भी देखने को मिलता है।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से आइन. से विगत की विभिन्नता स्पष्ट हो जाती है। अबुल फजल ने प्रत्येक सूबे का संक्षिप्त इतिहास और भौगोलिक वर्णन दिया है जबकि नैणसी ने परगनों का विस्तृत इतिहास और भौगोलिक बर्णन दिया है। विशेषकर जोधपुर परगना का तो 1722 वि. सं. (1665 ई.) तक का सम्पूर्ण इतिहास लिख दिया है।

आइन. में सूबा, सरकार और महलों के राजस्व के आंकड़े दिये हैं, विगत. में परगना, तफा और गांवों के राजस्व के आंकड़े दिये गये हैं। साथ ही विगत. में 1715 से 1719 वि. सं. तक प्रत्येक गांव की वास्तविक आय के आंकड़े भी दिये हैं।

आइन. में प्रत्येक सरकार की सैनिक संख्या और क्षेत्रफल का उल्लेख किया है। विगत. में तत्सम्बन्धी विवरण नहीं है। विगत. में कुछेक परगनों के गांवों का क्षेत्रफल अवश्य दिया गया है।

विगत. में प्रत्येक गांव का विस्तृत वर्णन दिया है, उसमें गांव में निवास करने वाली मुख्य जातियों, सिंचाई के साधन, पीने के पानी के साधन, परगना से गांव की दूरी और दिशा का वर्णन है। आइन. में गांवों के विवरण का अभाव है।

विगत का सम्पादन

मुहणोत नैणसी द्वारा लिखित विगत. के इस उपयोगी ग्रन्थ को तीन भागों में सम्पादित करने का श्रेय डॉ. नारायणसिंह भाटी, निदेशक, राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी (जोधपुर), को है और उक्त ग्रन्थ को प्रकाशित[1] करने का श्रेय राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर को है। प्रथम भाग में परगना जोधपुर, सोजत और जैतारण का विवरण है। अन्य सूत्रों से संकलित कर सम्पादक ने इस प्रथम भाग में एक परिशिष्ट जोड़ दिया है, जिसमें कुछ अतिरिक्त सामग्री भी प्रकाशित कर दी है। दूसरे भाग में परगना फलोधी, मेड़ता, सीवाणा और पोहकरण का वर्णन है। उक्त

1— प्रथम भाग का प्रकाशन 1968 ई., दूसरे का 1969 ई. और तीसरे भाग का 1970 ई. में हुआ।

भाग में भी सम्पादक ने दस परिशिष्ट जोड़कर जोधपुर तथा अन्य परगनों सम्बन्धी जानकारी के लिए अतिरिक्त सामग्री संगृहीत की है। इसमें परिशिष्ट (घ), 8 और 9 तैस्सीतोरी. द्वारा उल्लेखित विक्रम की 20वीं शती की प्रतिलिपि (ख) के प्रारम्भ या अन्त में प्रतिलिपिकार द्वारा जोड़ी गयी की 'फुटकर वार्ता' से लिये गये हैं।[1] तीसरे भाग में सम्पादक ने शोध सूत्र (विगत का हिन्दी सारांश) व ऐतिहासिक टिप्पणियों के अतिरिक्त सब ही भागों की अनुक्रमणिकाएँ और कुछ विशिष्ट शब्दों की परिभाषा देने का प्रयास किया है। कुछ शासकों की जन्म-पत्रियां भी संगृहीत कर दी गयी हैं तथा जागीरदारों की पीढ़ियों की विगत भी दे दी है।

मुहणोत नैणसी ने विगत. में सातों परगनों का ऐतिहासिक वर्णन करते समय तब तत्सम्बन्धी सारी आधार-सामग्री का उपयोग किया है। जहां से सामग्री प्राप्त की या जिस सामग्री का उपयोग किया, उसका उसने अनेक स्थानों पर स्पष्ट उल्लेख कर दिया। इस प्रकार अपने ग्रन्थ की प्रामाणिकता उसने स्वयं ही स्पष्ट कर दी है। प्रत्येक परगने का प्राचीन इतिहास लिखने के लिए तब उसे कोई अन्य प्रामाणिक आधार-सामग्री उपलब्ध नहीं हो पायी थी इस कारण उसे प्राचीन धार्मिक ग्रन्थ, प्राचीन पद्य और वंशावली आदि का सहारा लेना पड़ा और उसे तब उसमें प्रचलित कथानकों या प्रवादों का भी समावेश करना पड़ा। विशेषकर जोधपुर परगना सम्बन्धी विवरण में ऐसी बातों का समावेश बहुत मिलता है। अतः राव जोधा के पूर्व का राजनैतिक इतिहास प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है। राव जोधा के बाद राजनैतिक इतिहास को लिखते समय उसने तब उपलब्ध शासकीय कागज-पत्रों का, निजी व्यक्तियों के संग्रहों, ताम्र-पत्रों, स्तम्भ लेखों आदि आधार-सामग्री का उपयोग कर लिखा, जिनकी प्रामाणिकता में सन्देह नहीं किया जा सकता था। परन्तु इस काल के विवरणों में भी अनेक स्थानों पर सुनी-सुनायी बातों का आधार लेना पड़ा जिनकी ऐतिहासिकता स्पष्ट नहीं है।

विगत. का महत्व न केवल मारवाड़ के इतिहास के लिए ही है बल्कि राजस्थान और तत्कालीन भारतीय इतिहास के लिए भी इसका प्राथमिक महत्व है। मारवाड़ के ही नहीं मुगलों के राजनैतिक व सामाजिक इतिहास के लिए इसकी आधार-सामग्री के रूप में उपयोग किया जा सकता है। मध्यकालीन मारवाड़ के राजनैतिक इतिहास के लिए (राव जोधा से जसवन्तसिंह तक) भी आधार-सामग्री के रूप में इसका प्राथमिक महत्व है। तत्कालीन मारवाड़ के धार्मिक और सामाजिक और आर्थिक इतिहास के लिए यह ग्रन्थ अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

1– तैस्सीतोरी. जोधपुर., 1, पृ. 48-49, 51; विगत., 2, पृ. 421-24, 428-35, 486-99।

विगत. में गांवों के वर्णन में भी अनेक महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया गया। कभी किसी गांव में किसी समय विशेष प्रयोजन से कोई शासक रहा था, उसका भी उल्लेख मिलता है, साथ ही गांव की यदि कोई विशिष्ट उपलब्धि है तो उसका विवरण भी इसमें मिलता है। विभिन्न परगनों, अथवा उनके अलग-अलग उपविभाग, तफों की तब भौगोलिक सीमाएँ क्या थी इसका विवरण विगत. के अतिरिक्त अन्य किसी समकालीन ग्रन्थ में प्राप्त नहीं है। यों तत्कालीन मारवाड़ के राजनैतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक इतिहास के लिए इस ग्रन्थ का उपयोग प्राथमिक आधार-ग्रन्थ के रूप में किया जा सकता है।

मुहणोत नैणसी री ख्यात

रचनाकाल

मुहणोत नैणसी ने ख्यात का संकलन और लेखन कब से प्रारम्भ किया इस सम्बन्ध में प्राप्त प्रमाणों के आधार पर निर्विवाद रूप से कुछ भी कह पाना सम्भव नहीं है। ख्यात में सुलभ जानकारी अथवा उल्लेखों के आधार पर इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि नैणसी ने 33 वर्ष की अवस्था में तथा 1643 ई. से ख्यात का योजनाबद्ध लेखन और संकलन कार्य प्रारम्भ कर दिया था।[1] इसके बाद 1650 ई., 1651 ई., 1653-54 ई., 1658 ई., 1660 ई., 1662 ई., 1663 ई., 1665 ई. और जून 1666 ई. तक ख्यात सम्बन्धी सामग्री के संकलन विषयक उल्लेख ख्यात में मिलते हैं।[2] अतः यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि 1643 से 1666 ई. तक तो अवश्य ही निरन्तर 23 वर्ष तक मुहणोत नैणसी ख्यात का संकलन और लेखन कार्य करता रहा था। परन्तु तब ही एकाएक महाराज जसवन्तसिंह द्वारा उसे पदच्युत कर बन्दी बना लिये जाने के कारण संकलन और लेखन कार्य सम्बन्धी उसका यह समूचा काम एकाएक बन्द हो गया और यह महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक-संग्रह-ग्रन्थ अपूर्ण ही रह गया।

ख्यात का अपूर्ण और अव्यवस्थित स्वरूप : उसकी लेखन-प्रक्रिया का आकस्मिक अन्त

मुहणोत नैणसी की ख्यात की मूल प्रति अथवा उसकी ही प्रामाणिक प्रतिलिपियां तो वर्तमान में कहीं भी उपलब्ध नहीं हैं। इस कारण उसके तत्कालीन वास्तविक मूल स्वरूप के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी कह सकना कठिन ही है। वर्तमान में नैणसी

1– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 2, पृ. 6।

2– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 2, पृ. 15; 1, पृ. 8, 77, 127, 60, 172, 276, 49, 88, 113, 122, 135; 2, पृ. 265।

की समूची ख्यात की सबसे प्राचीन प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर में संगृहीत है (अनुक्रमांक 202), जो वि. सं. 1899 (1843 ई.) में लिखकर पूरी हुई थी। समूची ख्यात की ऐसी सब अन्य प्राप्य प्रतियां इसी की प्रतिलिपियां हैं। इसी प्रति में नैणसी स्वयं का एक उल्लेख मिलता है कि "एक बात तो ऊपर के पत्र 497 में लिखी है और एक बात पोकरणा ब्राह्मण कवीश्वर जसवन्त के भाई जोशी मनोहरदास ने इस प्रकार लिखायी है"[1] उक्त उल्लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान में उपलब्ध समूची ख्यात की पूरी प्रति का प्रारम्भ सीसोदियों की जिस ख्यात से होता है, नैणसी द्वारा तैयार की गयी ख्यात की मूल प्रति में वही विवरण पत्र संख्या 497 पर था। उससे यह सम्भावना लगती है कि ख्यात की जिन तब प्राप्य प्रति या प्रतियों से अब मान्य मूल प्रति तैयार की गयी उसमें विभिन्न विवरणों का क्रम आदि सर्वथा भिन्न ही थे। नैणसी को समय-समय पर राजवंशों के जो विभिन्न विवरण प्राप्त हुए उन्हें तब वह क्रमशः लेखबद्ध करता गया होगा। सामग्री संकलन का कार्य पूरा होने के बाद ही उस सबको पूरी तरह सुव्यवस्थित करने की नैणसी की योजना रही होगी, परन्तु उसे हाथ में लेने से पहले ही बन्दी बना लिया गया था। अतः उसे वह व्यवस्थित नहीं कर पाया था।

बाद के प्रतिलिपिकर्ता ने प्रत्येक राजवंश की सामग्री को एक ही स्थान पर संगृहीत कर उसे कुछ व्यवस्थित रूप देने का प्रयत्न किया होगा। परन्तु वर्तमान में ख्यात की सन् 1843 ई. की बीठू पना द्वारा बीकानेर में लिखित जो सबसे पुरानी प्रति उपलब्ध है वह भी पूर्णतया व्यवस्थित नहीं है, उदाहरणार्थ-सीसोदियों के विवरण में प्रारम्भ में बापा रावल से राणा राजसिंह तक की पीढ़ियां आदि दी हैं। तदनन्तर पुनः रावल बापा का विवरण दिया है।[2] इसके बाद बापा के पूर्व की पीढ़ियां, सीसोदिया नाग्रदा कहलाने के कारण, बापा का हारित ऋषि की सेवा और चित्तौड़ पर अधिकार, बापा रावल से करण तक की पीढ़ियां, रावल और राणा कहलाने सम्बन्धी विवरण, रावल रत्नसिंह, राणा राहप से राणा राजसिंह तक की वंशावलियां और संक्षप्ति विवरण, मेवाड़ का भौगोलिक विवरण, राणा प्रताप और कुंवर मानसिंह कछवाहा और प्रताप[4], राणा अमरसिंह और शाहजादा खुर्रम[5], बहादुरशाह का चित्तौड़ पर आक्रमण[6]

1– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 1, पृ. 9।

2– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 1, पृ. 1-7।

3– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 1, पृ. 32-48।

4– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 1, पृ. 48।

5– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 1, पृ. 48-49।

6– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 1, पृ. 49-51।

राणा कुम्भा[1], राणा राजसिंह[2], राणा कुम्भा द्वारा राव वदे को मारना[3], राणा रायमल के पुत्र पृथ्वीराज सम्बन्धी विवरण[4], महाराणा अमरसिंह[5], राणा खेता[6], राणा उदयसिंह[7], राणा अमरसिंह[8], चूण्डावतों की शाखाओं का विवरण।[9] इस प्रकार उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि नैणसी की ख्यात की यों संशोधित क्रम में नकल की गयी वीठू पना की उस प्रति में भी सही क्रम का पूर्ण निर्वाह नहीं हुआ है। एक शासक का विवरण भी एक स्थान पर संग्रहीत नहीं है साथ ही उसे उपयुक्त रूप में क्रमबद्ध नहीं किया जा सका है।

संकलनकर्ता लेखक नैणसी का आकस्मिक अन्त हो जाने के कारण ख्यात पूर्ण भी नहीं हो पायी थी। मेवाड़ के राजसिंह का विवरण अपूर्ण है, राजसिंह को मनसब में प्राप्त जागीर का ही विवरण दिया है।[10] इसी प्रकार बीकानेर के राठोड़ राज्य की सामग्री का तो संकलन ही अपूर्ण है। बीकानेर राज्य के राव बीका और राव लूणकरण सम्बन्धी विवरण[11], शासकों के सिंहासन पर बैठने का वर्ष, शासकों के पुत्रों के नाम[12] और शासकों के मरणोपरान्त सतियों का नामोल्लेख ही किया गया है।[13] इससे भी स्पष्ट है कि राव जैतसी से करणसिंह तक इन शासकों के कार्यकलापों का वह प्राप्त नहीं कर पाया था एवं वह यों अपूर्ण ही रहा। ख्यात का अव्यवस्थित और अपूर्ण स्वरूप होने का कारण यह है कि ख्यात की सामग्री के संकलन काल में ही 1666 ई. में देश-दीवान मुहणोत नैणसी को महाराजा जसवन्तसिंह ने बन्दी बना लिया और बाद में उसने आत्महत्या कर ली। अतः नैणसी अपनी योजनानुसार ख्यात को व्यवस्थित नहीं कर पाया। जिस तरह आकस्मिक रूप से उसे बन्दी बना लिया गया उसी तरह ख्यात का भी आकस्मिक अन्त हो गया।

1– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 1, पृ. 51।
2– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 1, पृ. 52-53।
3– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 1, पृ. 53-54।
4– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 1, पृ. 55-56।
5– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 1, पृ. 56-59।
6– ख्यात. (प्रतिष्ठान). 1. पृ. 59-60।
7– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 1, पृ. 60-62।
8– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 1, पृ. 62-65।
9– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 1, पृ, 66-67।
10– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 1, पृ. 52-53।
11– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 3, पृ. 13-15, 19-20।
12– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 3, पृ. 181, 202-8।
13– ख्यात. (प्रतिष्ठान), 3, पृ. 209-10।

ख्यात का पुनरूद्धार तथा उसका सुव्यवस्थित पुनर्गठन

मुहणोत नैणसी की मृत्यु के बाद उसके पुत्र करमसी ने महाराजा जसवन्तसिंह की सेवा छोड़ दी और वह अपने परिवार सहित नागोर में राव रायसिंह की सेवा में चला गया। सोलापुर गांव में रायसिंह की दो-तीन दिन बीमार रहकर मई 29,1676 ई. को अचानक मृत्यु हो गयी। इस पर रायसिंह के सरदारों और कामदारों ने वैद्य से मृत्यु का कारण पूछा तो उसने गुजराती में उत्तर दिया कि 'करमानो दोष है' अर्थात (हमारे) कर्म (भाग्य) का दोष है। रायसिंह के सरदार गुजराती भाषा नहीं समझ पाये और करमा से उन्होंने मुहणोत नैणसी के पुत्र करमसी का संकेत समझा और उनके कथन का अर्थ लगाया कि करमसी ने (विष देकर) धोखे से मरवा दिया है[1] एवं उन्होंने करमसी को जीवित दीवाल में चुनवा दिया और नागोर भी समाचार भेजे कि उसके सारे परिवार को कोल्हू में डालकर मरवा देवें।[2] करमसी की दो सेविकाएं किसी प्रकार उसके दो पुत्र सावन्तसिंह और संग्रामसिंह को लेकर भाग निकली और किशनगढ़ चली गयी। यों नैणसी के अधिकांश परिवार का अन्त हो गया। मात्र दो पौत्र बच निकले थे जो किशनगढ़ चले गये।[3] और तदनन्तर वहाँ से बीकानेर जा रहे।[4]

मुहणोत नैणसी और उसके सम्पूर्ण परिवार की दर्दनाक हत्या हो जाने पर तथा उसके सारे सामान पर इन्द्रसिंह का कब्जा हो जाने के बाद नैणसी की ख्यात कहां-कहां और किन-किन हाथों में रही, इस बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। नैणसी स्वयं की लिखी, उसके समय में लिखी गयी या उसके बाद की 'नैणसी की ख्यात' की प्राचीनतम मूल प्रतिलिपियों के बारे में अनेकों बातें कही जाती सुनी गयी हैं, परन्तु वे अब तक किसी को भी देखने को मिली नहीं हैं। अतः उनके बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। मुगल आधिपत्य काल में रचित प्रचुर बात साहित्य के संग्रह ईसा 18वीं शती के उत्तरार्द्ध में जब तैयार किये जाने लगे थे उनमें कुछ में 'मुहणोत नैणसी री ख्यात' की कई एक बातें भी यत्र-तत्र संग्रहीत मिलती हैं। ऐसे तीन संग्रह बीकानेर की अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में सुरक्षित हैं, जिनमें प्राचीनतम हैं 1763 ई. में बीकानेर में महाराजा गजसिंह के आदेश पर तैयार कराया गया 'फुटकर बातां रो संग्रह' में नैणसी की ख्यात की कुछ बातों की प्रतिलिपि की गयी थी। इसी प्रकार पश्चात्कालीन दो और हस्तलिखित ग्रन्थों में 'मुहणोत नैणसी री ख्यात' की बातें सम्मिलित हैं। इनसे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि नैणसी की ख्यात ईसा की 18वीं शती के उत्तरार्द्ध के

1– ख्यात वंशावली (ग्रन्थ सं. 74), प, 65 ख; जोधपुर ख्यात., 1, पृ. 272; ख्यात. (वणशूर), प. 69 ख; बाल. प. 63।
2– ख्यात. (वणशूर), प. 69; जोधपुर ख्यात., 1, पृ. 272; बाल, प. 93।
3– ख्यात. (वणशूर), प. 69 ख; बाल., प. 93।
4– दूगड़. (मुहणोत नैणसी वंश-परिचय), 1, पृ. 5।

प्रारम्भिक युगों में अवश्य ही बीकानेर में पहुंच गयी थी। परन्तु यह कहना सम्भव नहीं है कि ख्यात कब और कैसे बीकानेर पहुंची।

परन्तु नैणसी की ख्यात का पुनरूद्धार और वर्तमान में सुलभ व्यवस्थित पुनर्गठन करने का श्रेय बीकानेर में ही बीकानेर के महाराजा रतनसिंह के अनुज लक्ष्मणसिंह और चारण बीठू पना को है। लक्ष्मणसिंह के ही आदेश पर बीठू पना ने मुहणोत नैणसी की समूची ख्यात की प्रतिलिपि सन् 1843 ई. में तैयार की थी। यद्यपि निश्चित रूपेण यह नहीं कहा जा सकता है, परन्तु बहुत सम्भव है कि आज इस ख्यात को जो कुछ भी अर्द्ध व्यवस्थित और क्रमबद्ध स्वरूप मिलता है वह बीठू पना की ही देन है। आज तो वह उसी स्वरूप में उपलब्ध है और सर्वत्र उसी की प्रतिलिपियां मिलती हैं।[1]

नैणसी की समूची ख्यात की बीठू पना की लिखी जो वर्तमान प्राचीनतम प्रति उपलब्ध है और जो आज के तत्सम्बन्धी प्रकाशनों का मूल आधार बन गयी है उसमें कुछेक स्थलों पर सन् 1666 ई. के बाद के शासकों, सरदारों आदि से सम्बन्धित उल्लेख या सूचियां मिलती हैं। स्पष्टतया यह सब जानकारी बीठू पना ने स्वयं या अपने सहयोगी द्वारा एकत्रित करवाकर नैणसी की मूल ख्यात में यत्र-तत्र यथास्थान जोड़ दी है। ख्यात. में यह स्पष्ट लिखा है 'महाराजा श्री अनूपसिंहजी कस्य वंशावली' 'महाराजा श्री सूरतसिंहजी परत लिखाई' है।[2] अत: सन् 1882 ई. के पूर्व तैयार की गयी इस वंशावली के भी ख्यात लिखते समय बीठू पना ने संबद्धित कर दिया था। इसी प्रकार बीठू पना ने यत्र-तत्र राजाओं आदि की सूचियों में कई नाम जोड़े हैं।[3] सम्भवत: जोधपुर और किशनगढ़ के राजाओं की ख्यात-विगत तथा जोधपुर और बीकानेर के सरदारों की समूची सूचियां भी उसी समय इस ख्यात में जोड़ी गयी थी।[4] अत: नैणसी की इस ख्यात का मूल रूप निर्धारित करते समय ये सारे अंश जोड़ दिये जाने चाहिए।

ख्यात का हिन्दी में अनुवाद तथा सम्पादन

मुहणोत नैणसी की ख्यात का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने का श्रेय रामनारायण दूगड़ को है। रामनारायण दूगड़ ने सम्पूर्ण ख्यात को पूरी तरह सुव्यवस्थित कर उसका हिन्दी अनुवाद किया और नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ने

1- दूगड़., 1, पृ. 9-10।

2- ख्यात (प्रतिष्ठान), 3, पृ. 177-80।

3- ख्यात (प्रतिष्ठान), 1, पृ. 79।

4- ख्यात (प्रतिष्ठान), 3, पृ. 213-17 तक।

इस अनुवाद को दो भागों में प्रकाशित किया। मुहणोत नैणसी की ख्यात का प्रकाशन प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ने चार भागों में किया है। प्रथम दूसरे और तीसरे भाग में मूल ग्रन्थ तथा चौथा भाग अनुक्रमणिका है। इसका सम्पादन बदरीप्रसाद साकरिया ने किया है। उक्त सम्पादित ख्यात में सम्पादक ने मूल ख्यात के क्रम में कोई हेर-फेर नहीं किया है।

यह सही है कि ख्यात. को वह उसका सही अन्तिम रूप नहीं दे पाया था, और विगत. कुछ युगों पहले तक अज्ञात ही रही है। परन्तु अब वे सुलभ हैं और उनका अध्ययन तथा उपयोग किया जाने लगा है। तब उनके बहुविध विवेचन के साथ उनका वास्तविक समालोचनात्मक मूल्यांकन भी हो जाना चाहिए कि इतिहास के भावी संशोधक तथा इतिहासकार सही रूप में उनका समुचित उपयोग कर सम्बन्धित इतिहास को समृद्ध और परिपूर्ण बना सके।

संकेत-परिचय

1- ओसवाल. — 'ओसवाल जाति का इतिहास', सुखसम्पतराय भण्डारी, चन्द्रराज भण्डारी, कृष्णलाल गुप्त, भ्रमरलाल सोनी, बलराम रतनावत कृत।

2- कविराजा संग्रह — जोधपुर के कविराजा बांकीदास के वंशज श्री तेजदान से प्राप्त संग्रह जो अब 'श्री रघुवीर लायब्रेरी', 'श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ, मालवा में संगृहीत है, का नाम कविराजा बांकीदास मुरारदान संग्रह' रखा गया है।

3- ख्यात. — 'मुहणोत नैणसी की ख्यात'।

4- ख्यात. (प्रतिष्ठान) — 'मुहणोत नैणसी री ख्यात', सं. बद्रीप्रसाद साकरिया, भाग 1-4, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।

5- ख्यात-वंशावली. — 'राठोडां री ख्यात व वंशावली', कविराजा संग्रह, ग्रन्थ संख्या 74 (हस्तलिखित) 'श्री रघुबीर लायब्रेरी', श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ में संगृहीत।

6- ख्यात. (वणशूर) — 'जोधपुर राज्य की ख्यात'–वणशूर महादान संग्रह (हस्तलिखित) 'श्री रघुबीर लायब्रेरी, श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ में संगृहीत।

7– जोधपुर ख्यात. — 'जोधपुर राज्य की ख्यात', भाग 1 (हस्तलिखित) 'श्री रघुबीर लायब्रेरी', श्री नटनागर शोध संस्थान सीतामऊ में संग्रहीत ।

8– तैस्सीतोरी जोधपुर. — 'डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ग्रॉफ बार्डिक एण्ड हिस्टग्रारिकल मेन्यूस्क्रिप्टिव', डॉ. एल. पी. तैस्सीतोरी कृत, भाग 2 खण्ड 1 (बीकानेर स्टेट), 1918 ई. ।

9– दूगड़ — 'मुहणोत नैणसी री ख्यात', श्री रामनारायण दूगड़ कृत हिन्दी ग्रनुवाद, भाग 1-2, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी ।

10– पोथी. (ग्रन्थ सं. III) — 'गुरां मोतीचन्दजी री पोथी', (राठोड़ां री ख्यात), कविराजा संग्रह, ग्रन्थ संख्या III (हस्तलिखित) 'श्री रघुबीर लायब्रेरी', श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ में संग्रहीत ।

11– बाँकी. — 'बाँकीदास री ख्यात', सम्पादक नरोत्तम स्वामी ।

12– बाल. — 'राठोड़ां री वंशावली', (टंकित प्रति), बालमुकुन्द खीची, जोधपुर से प्राप्त, श्री रघुबीर लायब्रेरी, श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ में संग्रहीत ।

13– भण्डारिया री पोथी — 'भण्डारिया री पोथी', (हस्तलिखित) कविराजा संग्रह ग्रन्थ संख्या 78, 'श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ में संग्रहीत ।

14– राजस्थान — 'प्रोसिडंग्स ग्रॉफ राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस' ।

15– विगत. — 'मारवाड़ रा परगना री विगत', सम्पादक डॉ. नारायणसिंह भाटी, भाग 1-3, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

ऐतिहासिक इबारत के संग्रहकार बांकीदास

डॉ. नारायणसिंह भाटी
निदेशक
राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी, जोधपुर

राजस्थान की संस्कृति और इतिहास में चारण जाति का विशेष योगदान है. वैसे तो यह जाति बहुत प्राचीन है और पुराणों तक में इसका उल्लेख मिलता है परन्तु मध्यकालीन राजस्थान के इतिहास में काछेला व मारू दो प्रमुख शाखाओं का नाम आता है, जिनमें 'मारू' शाखा के चारण विशेष रूप से राजस्थान में बसे और यहां के विभिन्न राजवंशों से उनका अलग-अलग सम्बन्ध निरन्तर बना रहा, उनमें प्रकट होने वाली कुछ चारणी देवियों को भी इन राजवंशों ने कुल देवी के रूप में स्वीकार किया और शक्ति के रूप में उनकी उपासना यहां होती रही। चारणों की 120 शाखाओं में आशिया शाखा प्रसिद्ध है। आशा नामक पूर्व पुरुष के नाम पर यह शाखा चली। राव जोधा ने पूंजा आशिया को खाटावास नामक गांव सासन में दिया था। इसी के पुत्र माला आशिया को सम्वत् 1632 में सिवाना राठोड़ देवीदास ने भांडियावास गांव सासन में दिया। इसके वंशजों में भीमा आशिया बहुत प्रसिद्ध हुआ जिसकी दानशीलता की प्रशंसा कई कवियों ने की है। दुरसा आढ़ा का निम्न दोहा चारण समाज में बहुत प्रसिद्ध है—

किसना संसारी कहै, वूठा मेहां वत्त ।
भीमा नै कहतां भलो, मीनू बरजै मत्त ॥

उसके वंशज फतेहसिंह के बांकीदास पैदा हुआ।[1] बांकीदास के कुल तीन भाई और एक बहन थी। तीन भाईयों के नाम पनजी, कलजी व बुद्धजी थे। ये तीनों भाई महाराजा मानसिंहजी के समय में काफी सम्मानित थे।

बांकीदास की शिक्षा-दीक्षा बचपन में अपने घर व ननिहाल में हुई तथा बाद में वे रायपुर के ठाकुर अर्जुनसिंह उदावत के पास गये। ठाकुर ने इसे प्रतिभाशाली समझ कर अपनी हवेली में रख लिया और खाने-पीने व विद्या अर्जित करने की अच्छी व्यवस्था

1– बांकीदास का जन्म वि.सं. 1838 में तथा निधन वि.सं. 1890 में हुआ।
– सम्पादक

कर दी । उन्हीं के संरक्षण के कारण लगभग 5 वर्षों तक उन्होंने विद्या अध्ययन किया और कई गुरूग्रों के पास डिंगल, ब्रज, प्राकृत, संस्कृत, फारसी व इतिहास की शिक्षा ग्रहण की । एक दोहे में अर्जुनसिंह की इस कृपा का वर्णन बांकीदास ने विशेष परिस्थितियों में किया ।

माली ग्रीखम मांझ, पोख सजल द्रुंम पालियो ।
तिण रो जस किम जाह, अत धण बूठां ही अजोह ।।

सम्वत 1860 में जब महाराजा मानसिंह जोधपुर की राजगद्दी पर बैठे तो उनके गुरू आयस देवनाथ ने प्रतिभाशाली युवा कवि को महाराजा के सामने पेश किया । महाराजा ने कवि की काव्य प्रतिभा और विद्या को देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और उसे अपना आश्रय प्रदान किया । कवि को दो गांव भी प्रदान किये गये । समय-समय पर इन जागीर के गांवों में परिवर्तन भी होता रहा और अन्त में दो गांव चवां और डोहकी इनके पास रह गये थे । महाराजा मानसिंह इनकी काव्य प्रतिभा से पूरी तरह प्रभावित थे । क्यों न हों वे स्वयं जो उच्च कोटि के कवि थे । उन्होंने कवि को लाखपसाव व कुरब के अतिरिक्त हवेली तथा पुरस्कार स्वरूप अनेक बार कीमती वस्तुएं प्रदान की । राजदरबार में रहने से बड़े-बड़े विद्वानों के साथ उनका समागम होता रहता था जिससे उनकी प्रतिभा में और भी निखार आया ।

समय के उलटफेर में व्यक्ति की सच्ची परीक्षा होती है । यों तो बांकीदास जी महाराजा के बहुत निकट और निजी व्यक्तियों में से थे परन्तु जब महाराजा के एक मात्र पुत्र छत्रसिंह को युवराज पदवी दी गई और जो लोग महाराजा को शक्तिहीन कर देना चाहते थे उनका षड़यंत्र सफल हो गया तो अनेक महत्वपूर्ण व्यक्ति महाराजा का साथ छोड़कर युवराज के इर्द-गिर्द मंडराने लगे । बांकीदास ने भी बदली हुई परिस्थितियों में युवराज के नजदीक रहना ही उचित समझा और वे भी विरोधी लोगों की जमात में शामिल हो गये । समय कभी एक सा नहीं रहता, वह बदलता ही है । युवराज की दुर्व्यसनों के कारण मृत्यु हो गयी और महाराजा मानसिंह ने पुनः राज्य कार्य अपने हाथ में लिया तब अपने विरोधियों को पूरी तरह दण्डित करने में वे नहीं चूके, बांकीदास का भी नम्बर आया । उन्हें प्राण दण्ड तो नहीं दिया, परन्तु जागीर जब्त कर ली गई और गढ़ में आकर मुंह न दिखाने का हुक्म दिया । बांकीदास की हालत उस समय बहुत दयनीय हो गई थी ।[1] और अन्य कोई चारा नहीं देखकर वे भाद्राजून ठाकुर बखतावरसिह जी हवेली में शरण मांगकर रहे । बखतावरसिंह जी ने उन्हें शरण दी । फिर कालान्तर में ठाकुर शिवनाथसिंह मेड़तिया और साथीन ठाकुर शक्तिदान भाटी के मारफत जागीर आदि पुनः प्राप्त करने का भरसक प्रयास किया परन्तु सफलता

1– देखें– महाराजा मानसिंह री ख्यात, सम्पादक डा. नारायणसिंह भाटी ।

नहीं मिल सकी । आखिर खारिया के ठाकुर नवलसिंह भाटी ने प्रयास करके महाराजा को राजी किया और बांकीदास के गांव बहाल करवाये व उन्हें क्षमादान दिया गया । इस भाव का एक दोहा इस प्रकार है—

जाता तरपत्रां ज्युंही, तांबापत्र तमांम ।
किसनहरै अवचल् किया, नवल उबारण नांम ।।

ऐसा उल्लेख मिलता है कि सम्वत् 1870 में रूपनगर में महाराजा मानसिंह और जयपुर नरेश जगतसिंह की उपस्थिति में प्रसिद्ध हिन्दी कवि पदमाकर और बांकीदास के बीच साहित्यिक शास्त्रार्थ हुआ था जिसमें कवि ने पदमाकर को पराजित किया था जिससे महाराजा बड़े प्रसन्न हुए थे । महाराजा मानसिंह ने जैसा सम्मान इस कवि को दिया वैसा राजस्थान के बहुत कम शासकों ने किसी कवि को दिया होगा । इस सम्बन्ध में कई प्रवाद आज भी प्रचलित हैं ।

बांकीदास ने तीन विवाह किये थे परन्तु उनके कोई पुत्र नहीं हुआ । एक पुत्री गुलाब बाई ही हुई । उन्होंने अपने लघु भ्राता पनजी के पुत्र भारतदान को गोद लिया । उसी का पुत्र मुरारीदान हुआ जिसने जसवन्त जसों भूषण ग्रन्थ लिखा और राज्य में अच्छा सम्मान पाया ।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि कविराजा को अपनी विद्या का विकास करने हेतु पर्याप्त सुविधायें व समय मिला था । काव्य-सर्जन उनकी नैसर्गिक प्रतिभा का फल था परन्तु इतिहास में भी उनकी गहरी रुचि थी इसलिए वे इतिहास के अध्येता भी बने रहे ।

बांकीदास की ख्यात

बांकीदास की ख्यात में कोई 2000 स्फुट छोटी-छोटी बातों का संग्रह है । ये बातें एक पंक्ति से लेकर पांच-छह पंक्ति तक की हैं । मुहणोत नैणसी की ख्यात इतिहास के साधन-स्त्रोत के रूप में प्रसिद्ध है परन्तु उसमें जो भी बातें हैं वे अध्याय के रूप में हैं और उनका ब्यौरा सलीके से जमाकर लिखा हुआ है परन्तु बांकीदास की बातें केवल नोट्स के रूप में हैं जो याददास्त के लिए लिखी गई हैं । उनमें कोई क्रम भी नहीं है ।[1] असल में उसे ख्यात कहना उचित नहीं होगा । यह एक ऐतिहासिक टिप्पण संग्रह है, जो लेखक ने समय-समय पर सुनकर या किसी ग्रन्थ से देखकर नोट कर लिया है । इतना

1– बांकीदास की ख्यात के सम्पादक श्री नरोत्तमदास स्वामी ने इन्हें जाति व खांप के हिसाब से क्रमवार व्यवस्थित किया है ।

होने पर भी यह संग्रह इतिहास के शोधकर्ताओं के लिए बड़ा उपयोगी है क्योंकि इसमें राजस्थान के अनेक व्यक्तियों और घटनाओं के सम्बन्ध में ऐसी बातें मिलती हैं जो ख्यातों तक में नहीं मिलती और कई तो बिलकुल अज्ञात हैं। कई बातें गोपनीय प्रसंगों पर भी प्रकाश डालती हैं, तो कई ऐसी हैं जो मध्यकालीन राजस्थान के प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरूषों की मानवीय कमजोरियों को भी उजागर करती हैं। ऐसी स्थिति में इस संग्रह का मूल्य किसी ख्यात से कम नहीं है। इसलिए प्रसिद्ध इतिहासकार ओझाजी ने इस ख्यात को महत्त्वपूर्ण माना है।

"पुस्तक बड़े महत्त्व की है। ... ग्रन्थ क्या है इतिहास का खजाना है। राजपूताना के तमाम राज्यों के इतिहास-सम्बन्धी अनेक रत्न उसमें भरे पड़े हैं। ... उसमें राजपूताना के बहुधा प्रत्येक राज्य के राजाओं, सरदारों मुत्सद्दियों आदि के सम्बन्ध की अनेक ऐसी बातें लिखी हैं जिनका अन्यत्र मिलना कठिन है। उसमें मुसलमानों, जैनों आदि के सम्बन्ध की भी बहुत सी बातें हैं। अनेक राज्यों और सरदारों के ठिकानों की वंशावलियां, सरदारों के वीरता के काम, राजाओं के ननिहाल, कुंवरों के ननिहाल आदि का बहुत कुछ परिचय है। कौन-कौन से राजा कहां-कहां काम आये, यह भी विस्तार से लिखा है। अनेक राजाओं के जन्म और मृत्यु के संवत्, और मास, पक्ष, तिथि आदि दिये हैं।"[1]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है यह ख्यात व्यवस्थित रूप में नहीं लिखी गई इसलिए इसमें कहीं-कहीं पुनरावृत्ति भी हो गई है। मुख्य रूप से यह बातें राठौड़ों, गहलोतों, यादवों, कछवाहों, पड़िहारों, पंवारों, चौहानों, देवड़ों, मुसलमानों और फिरंगियों से सम्बन्धित हैं। कुछ बातें भौगोलिक व फुटकर विषयों की हैं। उपरोक्त राजवंशों के कई प्रसिद्ध पुरूषों के बारे में जहां इसमें जानकारी है वहीं कई ठिकानों की वंशावलियां आदि भी दी हुई हैं। इस संग्रह का विशेष रूप से इसलिए भी महत्त्व है कि इसमें प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरूषों के ननिहाल, सन्तति, रानियों आदि की विस्तार से जानकारी मिलती है जिसे ख्यातों ने भी नजर-अन्दाज कर दिया है। यहां तक कि पासवानों और प्रदायतों तक की सन्तति का उल्लेख इसमें मिल जाता है।

इस ख्यात में यहां के लोगों की धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक मान्यताओं के बारे में भी अनेक उपयोगी संकेत मिलते हैं जो मध्यकालीन समाज के समाज-शास्त्रीय अध्ययन और उस समय की जातियों के आपसी सम्बन्ध तथा धर्म परिवर्तन आदि के कारणों पर भी प्रकाश डालते हैं तथा यहां के लोगों के रहन-सहन, रीति-रिवाज, वस्त्र-आभूषण, खान-पान, आचार-विचार आदि की जानकारी भी देते

1– पुरोहित हरिनारायणजी के नाम ओझाजी का पत्र, बांकीदास ग्रन्थावली भाग 3, प्रस्तावना पृ. 6-7।

हैं। कुछ बातें ऐसी भी हैं जो बादशाहों, वजीरों, नवाबों आदि के बारे में भी रोचक जानकारी प्रस्तुत करती हैं। भौगोलिक विषय से सम्बन्धित बातें, गांवों के नामकरण, अन्य गांवों से उनकी दूरी और भौगोलिक विशेषताओं पर प्रकाश डालती हैं। इस प्रकार इन छोटी-छोटी बातों में अनेक प्रकार की जानकारियां हैं, जो महत्त्वपूर्ण संकेतों का काम देती हैं।

बातों के इस संग्रह को देखकर यह ख्याल आता है कि बांकीदास मारवाड़ जैसे बड़े राज्य के राज्य कवि थे और चारण व इतिहास प्रेमी लोग उनके पास आते रहे होंगे। उनसे चर्चा के दौरान जो बातें कविराजा को उपयोगी लगीं वे नोटकर ली गई और वह एक संग्रह बन गया। इसलिये ये बातें अलग-अलग समय में नोट की हुई बातों की इबारत हैं।

इन बातों के अलावा कवि ने काव्य के 35-36 लघु ग्रन्थ लिखे और करीब 200 डिंगल गीतों का भी सृजन किया। इनमें से भी इनकी अनेक कृतियां प्राचीन ऐतिहासिक पुरूषों की महत्ता को उजागर करने वाली हैं। उनके अधिकांश डिंगल गीत समसामयिक पुरूषों पर भी लिखे गये हैं जिनसे उस समय का राजनैतिक और सामाजिक जीवन प्रकाश में आता है। कवि की काव्य प्रतिभा यद्यपि लघु काव्य ग्रन्थों में अधिक प्रौढ़ता लिए हुये है परन्तु उनके गीत भी कवि की मनस्थिति में समय की साख भरते हैं।

बांकीदास की तथाकथित ख्यात जैसे अनेक ग्रन्थ बिखरे हुए पड़े हैं जिनमें इस प्रकार के ऐतिहासिक टिप्पणियों के संग्रह हैं। यदि इन्हें प्रकाशित किया जाय तो वे निश्चय ही इतिहास को रोचक बनाने में सहायक सिद्ध होंगे।

टॉड का व्यक्तित्व व कृतित्व

डॉ. नारायणसिंह चूण्डावत
सहायक प्रोफेसर, इतिहास,
सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

राजस्थान की आधुनिक ऐतिहासिकी का संस्थापक लेफ्टिनेण्ट कर्नल जेम्स टॉड का जन्म मार्च, 20, 1782 ई. इस्लिंगटन में हुआ था। उसके मामा पैट्रिक हिटली ने 1798 ई. में उसको ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा में केडेटशिपा दिलवा दी व उसे प्रशिक्षण के लिए रॉयल मिलिटरी अकादमी, वूलविच में भेज दिया गया, जहां एडिस-काम्बें में कम्पनी का शिक्षा संस्थान स्थापित होने से पहले केवल गिने-चुने शिक्षार्थियों को ही शिक्षा दी जाती थी। मई 29, 1800 ई. को वह देशी पैदल फौज की 14वीं रेजीमेण्ट का लेफ्टिनेण्ट नियुक्त हुआ और उसके बाद में उसके शब्दों में "कलकत्ता हरिद्वार तक उसकी तलवार घूमती रही।" लेफ्टिनेण्ट कर्नल विलियम निकल, जिसने उसके साथ चौदहवीं रेजीमेण्ट में काम किया था, ने 1800 ई. में लिखा कि "वह सरल प्रकृति का था और सभी सहकारी अफसर उसे प्यार करते थे तथा उसमें उस समय उद्दीयमानता के सभी लक्षण दृष्टिगत होते थे, जो बाद में उसने अपनी प्रतिभा के बल पर प्राप्त कर लिये थे।" उसकी प्रतिभा से प्रभावित होकर कम्पनी ने 1801 ई. में दिल्ली के पास एक पुरानी नहर का सर्वेक्षण करने के लिए इन्जीनियर के पद पर उसका चयन किया। इस कार्य को उसने बड़ी योग्यता के साथ पूरा किया। 1805 ई. में जब ग्रीम मर्सर, दौलतराव सिन्धिया के दरबार में राजदूत और रेजीमेण्ट नियुक्त होकर जा रहा था, ने टॉड के आग्रह पर अपने साथ ले जाने की अनुमति सरकार से प्राप्त कर ली। यहीं से उसकी भावी असाधारण कीर्ति का प्रारम्भ हुआ।

टॉड को 1813 ई. में केप्टन के पद पर पदोन्नत किया गया तथा उसे सिन्धिया के दरबार में एजेण्ट स्ट्रैची का द्वितीय सहायक बनाया गया। उसने पिण्डारियों के दमन तथा अन्तिम मराठा युद्ध में कम्पनी की कूटनीतिक और सैनिक तैयारियों में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। 1817-18 ई. में जब मेवाड़, मारवाड़, ढूंढाड़, व अन्य राजपूत राज्यों ने अंग्रेजों के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किए, उस समय तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड हैस्टिंग्ज ने टॉड को, राजस्थान की स्थिति से परिचित होने के कारण पश्चिमी भाग के इन राजपूत राज्यों में अपना राजनीतिक प्रतिनिधि बनाकर उदयपुर में नियुक्त किया।[1]

1– सीक्रेट कन्सलटेशन मार्च 6, 1818 क्रमांक 7, राष्ट्रीय अभिलेखागार, दिल्ली।

खराब स्वास्थ्य के कारण जून, 1822 ई. में टॉड समय से पहले ही कम्पनी की सेवा से निवृत्त हो गया।[1] राजपूतों के प्रति प्रशंसात्मक भावना रखने के कारण भारत में कार्यरत कम्पनी के उच्च पदाधिकारी उसके सेवाकाल के अन्तिम वर्षों में उससे पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं थे।[2] बिशप हैबर[3] लिखता है कि– "यह उसका दुर्भाग्य था कि देशी राजाओं का अत्यधिक पक्ष लेने के कारण कलकत्ता की सरकार ने उस पर भ्रष्टाचार का सन्देह किया और परिणामतः उसके अधिकारों को सीमित करके उसके साथ दूसरे अधिकारी लगा दिये गये, अन्ततः वह तंग आ गया और उसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। मुझे विश्वास है कि अब उन्हें संतोष हो गया है कि उनके सभी सन्देह निराधार थे।" अपने कार्यकाल से पूर्व सेवा निवृत्ति के शारीरिक और मानसिक तनाव से बचने के लिए स्वयं टॉड ने यह विचार व्यक्त किया है कि "मेरे व्यापक कार्यों (जिसके लिए बाद में चार अधिकारियों की नियुक्ति की गई) व अत्यधिक परिश्रम के कारण मेरा स्वास्थ्य इतना खराब हो गया था कि दूसरे मौसम तक मेरे लिए जिन्दा रहना असम्भव था। प्रतिदिन 12 से 14 घण्टे कार्य में व्यस्त रहने के कारण हर दूसरे दिन में सिरदर्द से परेशान रहता था। इतनी कठिनाइयों के पश्चात् भी मेरा जिन्दा रहना मेरे चिकित्सक मित्र के लिए आश्चर्य था।" इन सभी कठिनाइयों के बावजूद एक इतिहासकार के रूप में अमर रहने के लिए वह जिन्दा रह गया।

अपने भारत निवास के 24 वर्षों में से उसने 18 वर्ष राजपूताना में व्यतीत किये। इन 18 वर्षों में से अन्तिम पांच वर्ष उसने मेवाड़, मारवाड़, जैसलमेर, कोटा, बूंदी और सिरोही के राजपूत राज्यों में राजनीतिक प्रतिनिधि के रूप में उदयपुर में व्यतीत किये।[4] उदयपुर में रहते हुए उसने इन सभी राज्यों की यात्रा की। राजस्थान के निवासियों के सम्पर्क से उसके मन पर इस प्रदेश की समग्र संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ा। उस समय के अन्य अंग्रेज अधिकारियों की अपेक्षा वह यहां के निवासियों का अनन्य हिषैषी बन गया और अपने अधिकार का प्रयोग सामान्य जनता के हित के लिये करने लगा। राजाओं और सामन्तों को भी टॉड जनहितकारी व न्यायप्रिय कार्य करने की सलाह देता रहा। अंग्रेजों की स्वार्थी और आतंकात्मक शासन नीति का अवसर पड़ने पर उसने विरोध भी किया। वह भलीभांति जानता था कि उस समय के देशी राज्यों के साथ की गई सहायक सन्धियों का अन्त कहाँ जाकर होने वाला है। टॉड

1– पोलिटिकल कन्सल्टेशन 11 अप्रेल, 1822 क्रमांक 14-15, राष्ट्रीय अभिलेखागार (नई दिल्ली)।

2– प्रोसीडिंग्स ऑफ इण्डियन हिस्टोरिकल रिकार्डस् कमीशन, उदयपुर सेशन।

3– नेरेटिव आफ ए जरनी थ्रू दी अपर पोवीन्सेज, भाग 2, पृ. 42।

4– डॉ. नारायणसिंह चूण्डावत : महाराणा भीमसिंह (द्वितीय) जीवन एवं समय (1878-1928) अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, पृ. 215-250।

सदैव ही राजपूताना आदि क्षेत्रों में अनोखी संस्कृति के इन अवशेषों पर विदेशी संस्कृति तथा सत्ता के अत्यधिक प्रभाव का विरोधी रहा। उसने "ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया" में लिखा है कि, "ब्रिटेन के संरक्षण में जो जातियां आ गई हैं उनको सजा देते समय दया का व्यवहार बहुत कम किया जाता है और न्याय का दण्ड अवश्य ही किसी न किसी को मार गिराता है जिससे हमारा शासन तलवार का शासन कहा जाता है। यही नहीं हमारी सरकार द्वारा राज्य तथा अर्थ सम्बन्धी जो भी कानून बनाये जाते हैं वे इनकी (प्रजाजनों की) दशा सुधारने के दृष्टिकोण से नहीं वरन् हमारे कोष को भरने के लिए बनाये जाते हैं। अपने भारतीय प्रजाजनों की गाढ़ी कमाई से लाखों स्वर्ण मुद्राएं प्राप्त करके उसका कौनसा भाग उनकी भलाई के लिए खर्च किया जाता है। पुनः अभी तक कोई भी ऐसा विद्वान शास्त्री सामने नहीं आया है कि जो रेग्युलेशन्स (नियम और पद्धति) कहलाने वाली इस विशाल एकत्रित अप्रौढ़ सामग्री को सरल संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत कर सकें।[1]

उसके इस प्रकार के जनहितकारी कार्यों, सहृदय व्यवहार और उदार विचारों के बारे में कलकत्ता के उच्च अंग्रेज शासकों को जानकारी मिली तब उसकी प्रवृत्तियों का पर्यवेक्षण सन्देह के साथ करने लगे। कम्पनी की सेवा से निवृत होकर टॉड इंगलैण्ड लौट गया। अपनी इंगलैण्ड निवास की अवधि में उसने यूरोपीय महाद्वीप का अनेकों बार भ्रमण किया। 1824 ई. में उसे मेजर और 1826 ई. में उसे लेफ्टिनेण्ट कर्नल का पद दिया गया। नवम्बर 17, 1835, को उसकी मृत्यु हो गयी। विलियम जोन्स व एशियाटिक रिसर्चस् के शोध कार्यों ने कर्नल टॉड को इतिहास, प्राचीन सभ्यताएं और प्रजाति-शास्त्र से सम्बन्धित ज्ञान के अध्ययन ने प्रेरणा दी। इंगलैण्ड से लौटकर टॉड ने अपने भारत निवास में संगृहीत सामग्री के आधार पर लिखना आरम्भ किया। उसने अपने जीवन के अन्तिम दशक में "एनल्स एण्ड एण्टिक्विटीज आफ राजस्थान" व "ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया" नामक ग्रन्थ लिखकर अपार ख्याति अर्जित की। इस काल में वह रायल एशियाटिक सोसायटी से सम्बन्धित रहा। कुछ समय तक उसने वहां के पुस्तकालयाध्यक्षों के रूप में भी काम किया। खण्डित प्रतिमाओं, शिलालेखों, शस्यशालाओं, हस्तलिखित ग्रन्थों, कागज-पत्रों और प्राचीन सिक्कों आदि की चालीस सन्दूकों के निजी संग्रह को अपने इण्डिया हाउस लन्दन की रायल एशियाटिक सोसायटी को भेंट कर दिया। टॉड की इस साधना ने यह सिद्ध कर दिया कि संस्कृत, डिंगल, पिंगल, प्राकृत, हिन्दी और राजस्थानी में ऐतिहासिक सामग्री का अभाव नहीं है।

टॉड के लेखन का उद्देश्य एवं उसकी सम्भावित रूप-रेखा

टॉड ने सर्वप्रथम अपने ऐनल्स के लिए विपुल सामग्री का संकलन किया और बाद में उसको लिखने का कार्य किया। जब वह सिन्धिया के दरबार में राजदूत था

1– पश्चिमी भारत की यात्रा, अनुवादक श्री गोपाल नारायण बहुरा, पृ. 64-67।

तभी से वह सामग्री के संकलन के कार्य में जुट गया। 'ऐनल्स' का सांगोपांग अध्ययन करने पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि वह राजस्थान के सभी सुविख्यात राजपूत राजवंशों का इतिहास लिखना चाहता था। इसी उद्देश्य से उसने गुहिलोत, सीसोदिया, चौहान, राठौड़, कछवाहा, भाटी आदि सब ही प्रमुख विभिन्न राजपूत राजवंशों से सम्बन्धित सारी ऐतिहासिक आधार सामग्री का वृहद संकलन किया।

सभी राजपूत राजवंशों का ऐसा इतिहास लिखने के लिए उसने सभी राज्यों अथवा राजवंशों के इतिहास से सम्बन्धित सामग्री का संकलन किया। अपने भारत निवास के 24 वर्षों में से उसने 18 वर्ष राजस्थान में व्यतीत किये थे। इन 18 वर्षों में से अन्तिम पांच वर्ष वह राजनीतिक प्रतिनिधि के रूप में उदयपुर में रहा था। उदयपुर में रहते हुए उसने राजपूताना की यात्रा की। जिन-जिन स्थानों पर भी वह गया, वहां की जानकारी प्राप्त करने के लिए उसने सारे सम्भावित सूत्रों की टोह लेकर उनसे सम्पर्क साधा और अपेक्षित सभी ऐतिहासिक स्रोतों को लेखबद्ध किया। इसके लिए उसने काफी धन भी व्यय किया व शारीरिक कष्ट भी सहे।

उसने यहां की भाषाओं को समझने का प्रयास किया। संस्कृत, प्राकृत, अरबी आदि भाषाओं में लिखी गई सामग्री का संकलन किया। प्राचीन शिलालेखों, ताम्रपत्रों, पट्टों इत्यादि का भी उसने संग्रह किया। भाट, बारहठ, चारण, राव आदि के मुख से सुनी हुई प्राचीन गाथाओं पर भी उसने टिप्पणियां आदि लिखी। इसके अतिरिक्त चंद के नाम से प्राप्त "पृथ्वीराज रासो", मेवाड़ और मारवाड़ आदि के राजाओं की कुछ वंशावलियां तथा छोटी-मोटी ख्यातों आदि को वह प्राप्त करने में सफल रहा। जैसा कि उसने लिखा है कि ऐसी जातियों से सम्बन्धित प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री को संगृहीत करने का मेरा उद्देश्य यूरोप के निवासियों को उनसे परिचित कराना था। यह बताना कि किस प्रकार से मैंने राजपूतों के इतिहास से संकलित सामग्री को एकत्रित करके तत्कालीन रूप दिया है, एक पाठक के लिए अरूचिकर होगा। पुराणों की पवित्र वंशावलियों से उसने अपना कार्य प्रारम्भ किया तथा महाभारत और चंद की कविताओं का भी परीक्षण किया। जैसलमेर, मेवाड़ और मारवाड़ की विस्तृत ऐतिहासिक कविताओं, खीचीयों के इतिहास तथा कोटा एवं बूंदी के हाड़ा राजाओं का इतिहास जो कि भाटों ने लिखा था, का भी परीक्षण किया। यही नहीं उसने संस्कृत आदि प्राचीन भाषा, साहित्य तथा पुराने लिखे गये ग्रन्थों को पढ़ने व समझने के लिए उसने जैन गुरू यति ज्ञानचन्द्र को भी अपने पास रखा। इस प्रकार से उसने उन तथ्यों के संकलन का प्रयास किया जो कि राजपूतों के इतिहास, चरित्र और तौर-तरीकों पर प्रकाश डाल सकते हैं। उसने लिखा कि "इनमें से अनेकों जो अभी तक पढ़े नहीं गये हैं, प्राचीन भारत के इतिहास पर नवीन प्रकाश डालेंगे। मुझे तो केवल यूरोपियन विद्वानों के समक्ष लाने का श्रेय है। लेकिन मैं यह आंशा करता हूं कि यह सामग्री अन्य विद्वानों को इसी प्रकार का कार्य करने की प्रेरणा देगी।"

टॉड का दूसरा ग्रन्थ "पश्चिमी भारत की यात्रा" है। अपने इस यात्रा वर्णन में ऐतिहासिक खोज और उसके द्वारा भूत-कालीन इतिवृत्त की अज्ञात लुप्त तथा विशृंखलित कड़ियों को जोड़ने के लिए टॉड सदैव ही समुत्सक रहा। वह जानता था कि इन प्रदेशों में ऐसी सामग्री की कमी नहीं है, जिसका उपयोग शोध (विषयक प्रवृत्ति) को समान रूप से सम्मानित और प्रोत्साहित करने में किया जा सकता है। यही कारण था कि टॉड जहां भी गया वह सदैव पुराने शिलालेखों, प्राचीन सिक्कों, हस्तलिखित ग्रन्थों आदि की खोज में रहा। आबू चन्द्रावती, सिद्धपुर, अनहिलवाड़ा (पाटण), खम्भात, वल्लभी, पालीटाना, शत्रुजंय, सोमनाथ, पट्टन, जूनागढ़, गिरनार, द्वारका आदि के महत्त्वपूर्ण मन्दिरों, बावड़ियों और खण्डहरों में ही नहीं, राह में पड़ने वाले नगण्य और उपेक्षित परन्तु सम्भावित स्थानों में भी शिलालेखों की खोज की और जो भी उपयोगी जान पड़ा उसकी तत्काल ही प्रतिलिपि करवा ली। इस यात्रा के दौरान ग्रन्थ भण्डारों, इतिहासकारों, चारण, भाटों तथा ऐतिहासिक घरानों में प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थों और महत्त्वपूर्ण कागज पत्रों के संग्रहों की टोह लगाता रहा। बाली के जैन कस्बे में मेवाड़ के राणाओं से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक नामावली का खर्रा प्राप्त किया। सोमनाथ पट्टन से उसने हिन्दी काव्य की खण्डित प्रति प्राप्त की, जिसमें पाटण के पतन की कहानी थी। द्वारका में एक झालावंशीय सरदार से उनकी वंशोत्पत्ति की विभिन्न कथाएं और वाघेलों की उत्पत्ति सम्बन्धी बहुत सी बातें उसने सुनी। द्वारका के ही एक वंश भाट की वंश बही तथा राज वंशावली में उसने कुछ पत्रों की नकलें कर ली। भुज नगर से भाटों की बहियों को प्राप्त किया और राजपूत शासन पद्धति वह किन बातों में भिन्न है इसको भी समझने का प्रयास किया। इसके साथ ही पाटण और खम्भात के जैन ग्रन्थ भण्डारों से उसने कुछ प्रतियां प्राप्त की।

इस यात्रा में जिन-जिन क्षेत्रों में से टॉड गुजरा उन सभी स्थानों के जलवायु, प्राकृतिक परिस्थितियों और दृश्यों के साथ वहां के निवासियों का भी सजीव विवरण उसने लिखा है। साथ ही उस क्षेत्र के इतिहास सम्बन्धी प्रवादों व रोचक दंत कथाओं को भी टॉड ने यत्र-तत्र जोड़ दिया है। ऐसे विवरण अनेक स्थलों पर प्रामाणिक न होते हुए भी उन प्रदेशों के विगत इतिहास सम्बन्धी जनसाधारण की भावनाओं तथा प्रतिक्रियाओं पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि 'ट्रैवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया' केवल एक यात्रा विवरण ही नहीं है वरन् उसके द्वारा संग्रहीत ऐतिहासिक सामग्री तथा उससे ज्ञात ऐतिहासिक जानकारी का एक विस्तृत संग्रह है। टॉड ने अपने इस ग्रन्थ लेखन के लिए इस शैली विशेष को अपनाने का कारण स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "जब मैं यह कहता हूं कि चरित्रों, ऐतिहासिक वृत्तान्तों, सिक्कों और शिलालेखों आदि से इतनी सामग्री प्राप्त होती है कि अनहिल-वाड़ा और उसके अधीनस्थ राज्यों का एक क्रमबद्ध इतिहास लिखा जा सकता है, तो प्रश्न होता है कि मैंने ही ऐसा प्रयास क्यों नहीं किया? उत्तर सीधा है कि अपनी शक्ति पर भरोसा न होने से मैंने अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर ऐतिहासिक और कालक्रम सम्बन्धी तथ्यों की संगति को देना ही अधिक उपयुक्त समझा और जैसा

कि मैंने अपनी पूर्व कृति "ऐनल्स एण्ड एण्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान" में किया है, इतनी सी सामग्री इतिहास लेखकों के लिए प्रस्तुत करने में मुझे सन्तोष भी है। तथापि यहाँ पर हम उन टूटी हुई कड़ियों को जोड़ने का प्रयास कर सकते हैं जो पश्चिमी भारत के बल्हरा राजाओं के इतिहास को ईसाई सन के समकालीन युगों से सम्बन्ध करती है।"

इस प्रकार अपने दोनों ग्रन्थों को तैयार करने के लिए टॉड ने विभिन्न प्रकार की यथा साध्य सारी प्रामाणिक आधार सामग्री तथा अन्य विश्वसनीय सूत्रों से जानकारी प्राप्त की। उनमें सुलभ विवरण की सत्यता या प्रामाणिकता आदि की जाँच के लिए उसने अलग-अलग सूत्रों द्वारा प्राप्त प्रमाणों का समुचित उपयोग किया था। सारी छानबीन के बाद जब उसे यह विश्वास हो गया कि कोई बात सही है, तब ही उसने मान्य किया है।

टॉड का इतिहास दर्शन और इतिहास विषयक उसकी अवधारणा

कर्नल जेम्स टॉड एक सुविज्ञ चिन्तनशील इतिहासकार था। इतिहास को उसने अत्यावश्यक वैज्ञानिक दृष्टि से देखा-भाला और परखा था। टॉड का 'ऐनल्स' लिखने का उद्देश्य बाहरी संसार को यहां के इतिहास से अवगत कराना मात्र ही नहीं था बल्कि सम्राट की सरकार पर यह प्रभाव भी डालना था कि उनकी पुरानी स्वतन्त्रता को पुनर्स्थापित किया जाय। उसका ऐतिहासिक दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक था। क्योंकि वह राजपूतों के इतिहास, शौर्य और बलिदान के वर्णनों से काफी प्रभावित था किन्तु उसने राजपूतों की गाथाओं का वर्णन केवल मात्र योद्धाओं के दृष्टिकोण से ही नहीं किया वरन् उनके सम्पूर्ण जीवन को अपने अध्ययन का लक्ष्य बनाया। जहां एक ओर उसने राजपूतों के शौर्य की प्रशंसा की है तो दूसरी ओर अत्यधिक अफीम सेवन के बारे में लिखा। 'ऐनल्स' में राजपूत समाज का अध्ययन करते समय टॉड ने इतिहास लेखन की महत्त्वपूर्ण कठिन आवश्यकताओं को पूरा करने में उत्साह का प्रदर्शन नहीं किया। उसने जो सामग्री एकत्रित की उसका वह आलोचनात्मक मूल्यांकन न कर सका। मानवीय जीवन के घटनाक्रम एवं राज्यों के उत्थान एवं पतन, विकास व ह्रास के कारणों एवं सिद्धान्तों की स्थापना तथा प्रतिपादन करने में उसने रूचि प्रदर्शित नहीं की। ऐतिहासिक घटनाक्रम सम्बन्धी बार-बार उठने वाले क्यों और कैसे जैसे प्रश्नों की ओर उसने विचार नहीं किया। किसी घटना की पृष्ठभूमि में क्या कारण रहे? क्या परिणाम हुए? तथा उसका क्या महत्त्व है? व आने वाली पीढ़ी को उसने कहां तक प्रभावित किया इस विषय में वह अक्सर मौन है। राजस्थान की स्वतन्त्रता का जो अपहरण हुआ उसके कारणों पर उसने प्रकाश नहीं डाला है, जबकि राजपूतों के शौर्य और पराक्रम का वर्णन चटकीले ढंग से किया है। उसने यह जानने का प्रयत्न नहीं किया कि राजपूत साम्राज्य स्थापित करने में क्यों नहीं सफल हुए, जबकि मराठे सफल हो गये थे।

वस्तुतः वह एक आलोचनात्मक इतिहासकार के बजाय तथ्यों का संकलनकर्त्ता ज्यादा था। इसी कारण उसने अपनी इस ऐतिहासिक कृति को "राजस्थान का इतिहास" शीर्षक देने की अपेक्षा "ऐनल्स एण्ड एण्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान" देना उपयुक्त समझा। उसने स्वयं ने यह स्वीकार किया है कि "इस विषय को इतिहास की कठोर शैली में लिखने का मेरा कभी इरादा नहीं था, क्योंकि ऐसा करने से अनेक ऐसे विवरण छूट जाते जो एक राजनीतिज्ञ जिज्ञासु के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते थे। मैं अपनी इस कृति को लगन व एकत्रित परिश्रम के साथ किये गये संग्रह के रूप में प्रस्तुत करना चाहता हूं और बहुत अधिक सामग्री देने की अपेक्षा ऐसी सामग्री देने को जो कि सम्भवतः उपयोगी सिद्ध हो, अधिक महत्त्व देता हूं।" इस प्रकार की कार्य प्रणाली अपनाने के बाद भी उसका 'ऐनल्स' राजस्थान के इतिहास के लिए एक अभूतपूर्व देन है, साथ ही 'ऐनल्स' एक कलापूर्ण कृति है और इसी कारण एक आलोचनात्मक इतिहासकार इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

टॉड के 'ऐनल्स' में कई स्थानों पर उसकी विवरणात्मक शैली में स्वतन्त्र उत्साह और भविष्य प्रदत्ता की भावना दिखाई देती है। यद्यपि वह सदैव सही नहीं है और यत्र-तत्र कठोर है तथा उसका विवरण कभी अत्यन्त ही सजीव है। उसकी कृतियों की कमियां उनकी प्रकृति से पृथक नहीं है। विभिन्न राजपूत जातियों का स्पष्ट व पृथक गाथाओं को एक क्रमबद्ध इतिहास में डालना लगभग असम्भव ही था इसलिये उसने सोचा कि आरम्भ में येन-केन प्रकारेण तथ्यों का संकलन कर लिया जाय। इसलिए उसने मध्यभारत और राजपूताना में रहते हुए तथ्यों के संकलन को प्राथमिकता दी। इस प्रकार से उसने उन तथ्यों के संकलन का प्रयास किया जो कि राजपूतों के इतिहास, चरित्र व तौर-तरीकों पर प्रकाश डाल सकते थे। टॉड ने स्वयं ने लिखा है कि "अत्यधिक व्यय और समय व्यतीत करके जिसके लिए असाधारण उत्साह की आवश्यकता थी, मैंने न केवल उनके इतिहास के बारे में वरन् धार्मिक विचारों और रीति-रिवाजों के सम्बन्ध में सामग्री एकत्रित की। इसके लिए मैंने उनके राजाओं और भाटों से सम्पर्क स्थापित किया तथा उनकी परम्परागत कहानियां एवं अलंकारपूर्ण कविताओं को सुना।" उसके इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि यह जानते हुए भी कि राजाओं और उनके आश्रित कवियों के बीच समझौता होने के कारण ये लोग उनकी थोथी प्रशंसा करते हैं, फिर भी उसने इन कवियों की रचनाओं की अवहेलना न करने और उनके वर्णनों को अपने लेखन का मुख्य आधार बनाया।

उसकी यह मान्यता थी कि भाट व चारण अनेक ऐतिहासिक तथ्यों, घटनाओं, धार्मिक मान्यताओं, रीति-रिवाजों आदि से जनता को अवगत कराते हैं। उनकी रचनाओं में तत्कालीन समय की मान्यताओं व तौर-तरीकों का जो ज्ञान प्राप्त होता है उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस प्रकार टॉड जहां तक सम्भव हो सका सही प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत करने में नहीं उलझा एवं उसका लेखन समीक्षात्मक न था।

उसकी मुख्य अभिरूचि

इतिहास लेखन में टॉड की अभिरूचि राजनीतिक इतिहास के साथ ही सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक गतिविधियों की भी रही है। राजनीतिक इतिहास को स्पष्ट करने तथा उसमें आये हुए इतिवृत्तों का खुलासा करने अथवा उन्हीं सन्दर्भों में प्रयुक्त भौगोलिक या अन्य नामों आदि की जानकारी देना आवश्यक प्रतीत हुआ, उन्हें भी उसमें यथा स्थान जोड़कर राजनैतिक वृतान्तों को ही परिपूर्ण करने का उपयुक्त प्रयत्न टॉड ने अवश्य ही यथा स्थान किया है। उसके द्वारा रचित ऐनल्स के अध्ययन से उसकी यह अभिरूचि स्पष्ट हो जाती है। ऐनल्स में प्रत्येक राज्य का इतिवृत्त लिखते समय सर्व-प्रथम उस राज्य की स्थापना से लेकर उस समय तक का ब्यौरेवार यथा साध्य इतिहास दिया गया है। ऐनल्स का संकलन भी राजनैतिक इतिहास विषयक सारी सम्बन्धित जानकारी प्रस्तुत करने के उद्देश्य से ही किया गया है। इसलिए उसने राजपूतों की उत्पत्ति, उनकी सामन्ती व्यवस्था आदि का विस्तृत विवेचन किया है। महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक युद्धों का भी विवरण दिया गया है। इन युद्धों का विवरण लिखते हुए उनके कारणों तथा परिणामों की जानकारी देते हुए उन युद्धों में भाग लेने वाले व्यक्तियों व मारे गये वीरों की जानकारी भी दी है।

राजपूतों में प्रचलित धर्म, देवी-देवताओं, धार्मिक त्यौहारों व उत्सवों, अन्ध-विश्वासों, धार्मिक मान्यताओं तथा ब्राह्मणों व जैनों का समाज और प्रशासन पर प्रभाव के विषय में महत्त्वपूर्ण व आकर्षक वर्णन लिखा है। इसके साथ ही उसने अनेक विषयों पर जो प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित नहीं थे, उन पर भी अपने विचार प्रकट किये हैं। उसका 'ऐनल्स' भारत के धर्म, प्रजातिशास्त्र एवं समाजशास्त्र के विकास के अध्ययन के लिए एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह भारतीय कृषक समाज की मान्यताओं के विश्लेषण में भी ज्ञान कराता है। इस प्रकार से ऐनल्स एक विस्तृत व व्यापक खजाना है, जिसमें भारत के गणमान्य लोगों के बारे में भी जानकारी मिलती है।

अपने यात्रा विवरण में टॉड ने इस यात्रा से सम्बन्धित स्थानों, तीर्थों, मन्दिरों, गढ़ों, शासकों आदि के विषय में जो कुछ उसने सुना-देखा अथवा पढ़ा उस सभी को उसने इसमें संकलित किया। उसने शत्रुन्जय, गिरनार, द्वारका, सोमनाथ आदि पवित्र तीर्थ स्थानों के भी सुन्दर और भावपूर्ण चित्रण इस पुस्तक में किये हैं। अरावली पर्वत क्षेत्र में रहने वाली भील जातियों के संगठन, रहन-सहन, आहार-विहार, अन्ध विश्वासों, भोलेपन आदि पर टॉड ने विस्तृत रूप से लिखा है। उसका यह विवरण मानव विज्ञान सम्बन्धी अध्ययन करने वालों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व उपयोगी है। अरावली की ऋतुओं के वर्णन के अतिरिक्त उसने कच्छ और सिरोही के भूगोल पर भी प्रकाश डाला है। इस प्रकार इतिहास के अलावा अनेक विषयों में उसकी अभिरूचि रही है।

भौगोलिक विवेचन में टॉड की सजगता

राजनीतिक इतिहास के साथ सदैव से तत्कालीन राजनीतिक भूगोल का सर्वथा अटूट सम्बन्ध रहा है। राज्य के विकास अथवा यह कहें कि वहां के इतिहास पर उस क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों का अमिट प्रभाव पड़ना नैसर्गिक रूप से ही अनिवार्य होता है। कोई भी ऐतिहासिक घटनाक्रम अपने क्षेत्र की प्रकृति के विपरीत न जाकर वहां की परिस्थितियों से तालमेल बिठाकर ही आगे बढ़ता है। सामान्यतः पूरे भारत का इतिहास और उसमें भी विशेषकर राजस्थान का इतिहास उपरोक्त नैसर्गिक नियम का अपवाद नहीं है। यह बात यहां के इतिहास का सिंहावलोकन करने मात्र से ही स्पष्ट हो जाती है। पुनः राज्य के निवासियों का चरित्र, जनजीवन की गतिविधियों, कृषि और उद्योगों आदि पर उस क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियां, आबोहवा, नदी-नालों और सिंचाई के साधन, आवागमन के मार्गों आदि का पूर्ण प्रभाव पड़ता है। अतः टॉड ने अत्यन्त ईमानदारी के साथ अपने आपको सर्वेक्षण के कार्य में लगा दिया। पर्याप्त साधनों के अभाव में भी अपनी सहनशीलता, लगन एवं सहज सरलता के बल पर, जो उसमें कूट-कूट कर भरी हुई थी, टॉड ने बड़ा सराहनीय कार्य किया।

स्वास्थ्य ठीक न होने पर भी उसने इस कार्य को इतनी अधिक योग्यता के साथ किया कि बाद के अधिक परिष्कृत साधनों और सर्वेक्षण विषय के प्रायोगिक एवं सैद्धान्तिक उपार्जित ज्ञान के द्वारा भी उसमें सुधार की कोई गुंजाइश नहीं दिखाई दी। उस समय में राजपूताना के भूगोल के बारे में अंग्रेजों व भारतीयों का ज्ञान सीमित था। यहां तक कि उदयपुर और चित्तौड़ की स्थिति अनेक मानचित्रों में भी बिलकुल विपरीत दिखाई जाती थी तथा चित्तौड़ को उत्तर पूर्व के स्थान पर उत्तर पश्चिम में दिखाया जाता था। टॉड ने ऐसी त्रुटियों को सुधारा। राजपूताना के पश्चिमी और मध्य विभाग के राज्य तो बहुधा सब ही छोड़ दिये गये थे। ऐसा विश्वास किया जाता था कि राजपूताना की नदियां दक्षिण की तरफ बहती हुई नर्बदा से जा मिलती हैं। 1806 ई. के बसंत में जब वह सिंधिया के दरबार में पहुंचा तो टॉड ने मेवाड़ के विषय में हमारे भौगोलिक ज्ञान की कमियों को दूर करने का कार्य आरम्भ किया। उसका यह कथन सत्य है कि "उस समय के बाद जो भी मानचित्र प्रकाशित किए गए हैं उनमें एक भी ऐसा नहीं है जिसमें बताई गयी मध्य एवं पश्चिमी भारत की स्थिति मेरे परिश्रम पर आधारित न हो।" सिंधिया की सेना के साथ वह इस प्रदेश के सर्वेक्षण के लिए 1812 ई. तक इधर-उधर घूमता रहा। 1812 ई. ग्वालियर में उसकी नियुक्ति हो गई। इस समय टॉड ने उन भू-भागों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की योजना बनाई, जिनमें वह स्वयं नहीं गया था।

मर्सर के अनुसार "जब तक मैं इस रेजीडेन्सी में रहा वह (टॉड) इस प्रदेश के भूगोल सम्बन्धी अपने ज्ञान को बढ़ाने के लिए प्रत्येक सुलभ और शक्य अवसर का लाभ उठाता रहा और मेरा विश्वास है कि उसके वेतन का बहुत बड़ा भा । देश के विभिन्न

भागों में कार्यकर्ता भेजकर उनके द्वारा संकलित सूचनाएं प्राप्त करने में व्यय होता था। वह स्वयं भी इस उद्देश्य के लिए अथक परिश्रम करता रहता था।" इस प्रकार कुछ ही वर्षों में मार्गों को मानचित्रों में अंकित करके अनेक जिल्दें तैयार कर ली और बहुत सी सीमावर्ती रेखाओं को निश्चित करके एक साधारण खाका तैयार कर लिया जिसमें सभी प्रकार की सूचनाएं अंकित थी। इसके बाद इस कार्य की शुद्धता को जांचने के लिए त्रिकोण समिति के आधार पर पुनः सर्वेक्षण आरम्भ करने का निश्चय किया। टॉड लिखता है कि ऐसे ही तरीकों से उसने अपरिचित स्थलों में अपना कार्य प्रारम्भ किया। 1817-18 में जब पिण्डारियों के विरूद्ध अंग्रेज संघर्षरत थे तब राजस्थान की स्थिति से परिचित होने के कारण उसे राजस्थान में कार्य सौंपा गया।

'एनल्स' की पहली जिल्द के प्रारम्भ में राजस्थान के भूगोल[1] पर प्रकाश डाला गया है। दूसरी जिल्द में भारतीय मरूस्थल सम्बन्धी दो अध्याय लिखे गये हैं।[2] 21 अध्याय उसके व्यक्तिगत वर्णन के हैं[3] जो यात्रा डायरी की तरह लिखे गये हैं, जिनमें महत्त्वपूर्ण भौगोलिक तथ्यों की जानकारी मिलती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक राजपूत राज्य का इतिहास लिखते समय उसने पुनः भूगोल को भी स्थान दिया है।[4] यद्यपि टॉड द्वारा लिखित भौगोलिक वर्णन अव्यवस्थित अपूर्ण और कई स्थानों पर त्रुटिपूर्ण भी है तथा उसमें अनेक बार तथ्यों को दुहराया गया है, तथापि यह विस्तृत है जो इस बात का प्रमाण है कि टॉड इतिहास की पृष्ठभूमि में भौगोलिक परिस्थितियों के प्रभाव के महत्व को समझता था।

'एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान'

1829 ई. में इसका प्रथम भाग प्रकाशित हुआ और उसके लगभग तीन वर्ष पश्चात् 1832 ई. में दूसरा भाग प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से यूरोप के प्राच्यविद्या विद्वानों में हलचल मच गई। शीघ्र ही स्थायी महत्व के अंग्रेजी साहित्य में उसका स्थान सुनिश्चित हो गया। अंग्रेजी भाषा में अपने विषय का सर्वप्रथम ग्रन्थ होने तथा साथ ही अपनी खोजपूर्ण भाषा तथा रोचक शैली के कारण यह ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय हुआ।[5] इस ग्रन्थ के उल्लेखित तथा प्रतिपादित तथ्यों के विषय में इसके प्रकाशन से लेकर आज तक अनेकानेक विद्वानों, शोधकर्ताओं, आलोचकों आदि ने भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये हैं, नाना प्रकार की टिप्पणियां लिखी हैं और आज भी यह क्रम चालू है। बस यही एक बात इस ग्रन्थ की विशिष्टता, लोकप्रियता और प्रेरणात्मकता सिद्ध करने में पर्याप्त है।

1– कुक, भाग 1, पृ. 1-22।

2– कुक, भाग 3, पृ. 1257-1325।

3– कुक, भाग 2, पृ. 760-914, भाग 3, पृ. 1621-1827।

4– कुक, भाग 2, पृ. 1104, 1145, 1147, 1248, भाग 3, 1428-1431।

5– डॉ. रघुवीरसिंह, राजस्थान के प्रमुख इतिहासकार और उनका कृतित्व, पृ. 19।

टॉड का 'एनल्स' लिखने का उद्देश्य बाहरी संसार को यहां के इतिहास से अवगत कराना मात्र ही नहीं था, बल्कि सम्राट की सरकार पर यह प्रभाव डालना था कि उनकी पुरानी स्वतन्त्रता को पुनर्स्थापित किया जाय। टॉड ने 'एनल्स' लिखते समय इसके पीछे की व्यापक भूमिका प्रदेश के भूगोल, उसके धर्म तथा सभ्यता सभी को सामने रखते हुए साथ ही उसके गहन सम्बन्धों की सुन्दर व्याख्या की है। वास्तव में एनल्स तथ्यों का एक विशाल भण्डार है। वह ऐसे विषयों पर भी प्रकाश डालता है जो किसी और ऐतिहासिक लेखन में सामान्यतः कोई स्थान प्राप्त नहीं करते हैं। इसे राजस्थान और राजपूतों का कोष कहा जा सकता है।

एनल्स में टॉड ने राजपूताने की आर्थिक अवस्था[1] का भी वर्णन किया है। यद्यपि इसमें उसने केवल तथ्यों का लेखा-जोखा किया है। भूमि की उर्वरता, प्रकृति का वर्णन, कृषि और औद्योगिक उत्पादन, व्यापारिक मार्गों का वर्णन टॉड ने अपने व्यक्तिगत ज्ञान और सरकारी दस्तावेजों के आधार पर दिया है। "स्केच ऑफ दी फ्यूडल सिस्टम इन राजस्थान"[2] नामक अध्याय में लेखक ने भूस्वामियों व किसानों के सम्बन्धों तथा दासों के विभिन्न वर्गों के बारे में भी लिखा है। राजस्थान की जनसंख्या का वर्णन भी राज्यों का सर्वेक्षण करने के पश्चात् दिया गया है।[3] यही नहीं बल्कि राजपूत समाज में स्त्रियों की स्थिति के बारे में भी लिखा है। यद्यपि राजपूतों के विवाह के नियम और रीति-रिवाजों का विस्तृत विर्णन नहीं दिया गया है, तथापि विधवाओं का जीवित जलाना, बाल हत्या और जौहर जैसे सामाजिक विषयों को उसने अछूता नहीं छोड़ा है।[4] यत्र-तत्र उसने राजस्थान की जनजातियों भील, मीणा व मेरों की सामाजिक व आर्थिक अवस्था के विषय में बिखरा हुआ किन्तु महत्त्वपूर्ण विवरण लिखा है।[5]

एनल्स के चार अध्यायों में राजपूताना में प्रचलित धर्म, देवी-देवताओं, धार्मिक त्यौहारों व उत्सवों, अन्ध विश्वासों, धार्मिक मान्यताओं, ब्राह्मणों व जैनियों का समाज और प्रशासन पर प्रभाव के विषय में महत्त्वपूर्ण और आकर्षक वर्णन मिलता है।[6] 'हिस्ट्री ऑफ दी राजपूत ट्राईबल्स' में टॉड ने राजपूतों की उत्पत्ति का विश्लेषण किया है।[7]

1– कुक, भाग 2, पृ. 1106, 1112, 1140-1156, 1246-1249, भाग 3, 1430-1431।

2– कुक, भाग 1, पृ. 153-254।

3– कुक, भाग 2, पृ. 1104-1106, 1146-1149, 1242, 1243, 1252-56।

4– कुक, भाग 2, पृ 789-797।

5– कुक, भाग 2, पृ. 789-797।

6– कुक, भाग 2, पृ 589-706।

7– कुक, भाग 1, पृ 23-96।

एनल्स के आद्योपरांत अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि टॉड अपने समय के राजस्थान, जो कि नष्ट प्रायः दुखी, गरीब तथा राजनीति पंगु था, की तुलना में मुगलों के शासन के पूर्व के राजस्थान में अधिक रूचि रखता था। 'एनल्स' के अठारहवीं सदी के राजस्थान के राजनीतिक विकास का लेखा-जोखा न केवल अपूर्ण है, बल्कि अनेक स्थलों पर सत्य से परे भी है। राजपूत राज्यों से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सम्बन्धों का वर्णन बहुत ही संक्षिप्त है और यही नहीं बल्कि कम्पनी के कर्मचारी होने के कारण उसमें सावधानी का अंश भी है। यद्यपि यत्र-तत्र उसने ब्रिटिश नीति की आलोचना भी की है, तथापि उन सभी तथ्यों पर उसने प्रकाश नहीं डाला है, जिसका कि कम्पनी का सेवक होने के कारण उसको ज्ञान था। यदि वह चाहता तो राजस्थान के राज्यों पर ब्रिटिश आधिपत्य स्थापित करने का पूर्ण और विश्वसनीय विवरण हमारे लिए छोड़ गया होता। जैसा कि ग्राण्ट डफ और कनिंघम ने विवरण दिया है वैसा विवरण उसने नहीं देकर चुप रहना ही उचित समझा।

टॉड ने राजपूतों को एक संक्रमण काल से गुजरते हुए देखा था। जैसा कि कुक ने लिखा है- "यह एक सुखद संयोग ही था कि राजपूतों की स्थिति सुधरने के प्रारम्भिक काल में प्राचीन हिन्दू राजनीति के इतिहास के एक चरण के अभिलेखों के अध्ययन के लिए उन्हें टॉड जैसा एक योग्य व सहानुभूतिपूर्ण व्यक्ति मिला। टॉड ने उन अंग्रेज इतिहासकारों की विचारधारा को बनाने में अभूतपूर्व योगदान दिया जो यह मानते थे कि भारतीयों को पाश्चात्य विचारों की अपेक्षा अपनी परम्परागत संस्थाओं को निभाते हुए शनैः शनैः उन्नति करनी होगी।। कम्पनी व राजपूत राज्यों के मध्य हुई सन्धियों के आधार पर ब्रिटिश प्रभुसत्ता की सीमाओं की व्याख्या करने तथा उनके मामलों में हस्तक्षेप करने की समस्याओं पर उसने जो विचार प्रकट किये उसमें उनकी नियमित सहानुभूतिपूर्ण विचाराधारा झलकती है।" उसने "एनल्स" में लिखा है "कि प्रत्येक सन्धि के शब्दों तथा भावनाओं में एक स्थाई भेदभाव है।" उसके मत में राजपूतों के साथ अंग्रेजों के सम्बन्धों में सत्ता सम्पन्न शासक के पैतृक कर्तव्य के सिद्धान्त के प्रति अत्यन्त प्रशंसात्मक भावना के कारण प्रत्येक राज्य की आन्तरिक स्वतन्त्रता क्रमशः लगभग समाप्त कर दी गई है। राजपूतों की परम्परागत राजनीतिक संस्थाओं एवं सामाजिक व्यवस्थाओं तथा ब्रिटिश प्रभुसत्ता के मध्य एक सामंजस्य स्थापित करने के पक्ष में उसने विचार प्रकट किया। लेकिन वह यह अनुभव करने में असमर्थ रहा कि समय की आवश्यकता तथा विदेशी शासन के आधारभूत स्वरूप को देखते हुए राजस्थान में पुरातन की व्यवस्था को बनाये रखना सम्भव नहीं है।

राजस्थान के राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था जानने को टॉड ने बहुत समय तक अथक प्रयत्न किये। इस दृष्टि से उसने राजस्थान की सामन्त व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं की व्यापक जानकारी प्राप्त की। उसके आधार पर उसने अपने ग्रन्थ में राजस्थान की सामन्त व्यवस्था का सविस्तार विवेचन किया है।

तत्कालीन सामन्तवाद की विवेचना के लिये मेवाड़, मारवाड़ और ढूंढाड़ आदि के राजघरानों की व्यवस्थाओं का विवेचन करने का उसने प्रयत्न किया। राजाओं द्वारा अंकित शिलालेखों, उनकी दी गई सनदों, ताम्रपत्रों आदि के संकलन के साथ ही मुगल साम्राज्य के तत्कालीन वैभव और मांग प्रतिष्ठा आदि के जो विवरण इंग्लैण्ड के राजदूत सर टामस रो, टेव्हेरनियर, मनुची आदि के यात्रा विवरणों में मिलते हैं, उनका भी उसने विवेचन किया।

अकबर ने सैनिक सेवा के लिये मनसबदारी प्रथा की स्थापना की जो टॉड के अनुसार सामन्तवादी व्यवस्था के समान ही थी। राजस्थान में राज्य की शासकीय व्यवस्था का आचरण तथा जन-समाज के हितार्थ प्रक्रियाओं की परिपाटी भी मूलतः राजा के व्यक्तित्व तथा उसके निजी दृष्टिकोण पर ही निर्भर रहता था।

टॉड ने सामन्तवाद सम्बन्धी कई एक महत्वपूर्ण अभिलेखों आदि के अनुवाद देकर सामन्तवाद के साथ ही राजस्थान के इतिहास के संशोधकों, अध्येताओं तथा इतिहास-कारों के लिये उन्हें सुलभ करा दिया है जिससे कि इस महत्त्वपूर्ण आधार सामग्री का समुचित उपयोग किया जा सके।

राजपूत सामन्तबाद का गहन अध्ययन करते समय एक शोधकर्ता को यह ध्यान में रखना पड़ेगा कि जिस प्रकार से टॉड ने इसकी तुलना मध्यकालीन यूरोप में प्रचलित सामन्तवादी व्यवस्था से की है वह पूर्ण रूप से सही नहीं है। वहां की व्यवस्था तथा भारत की राजपूत सामन्ती प्रथा में अनेक भिन्नताएं हैं। राजपूत सामन्तवाद मूल रूप से एक विशिष्ट प्रकार की संघीय, राष्ट्रीय व प्रजातांत्रिक संस्था है जो एक विशद व्याख्या मांगती है। इन दोनों प्रणालियों में दो महत्त्वपूर्ण भेद हैं। पूर्व में विशेषतः राजस्थान में भूमि और उसकी मिट्टी पर उपज के आधार पर राजस्व के अतिरिक्त राजा का कोई अधिकार नहीं है। यूरोपीय सामन्त प्रणाली में मुख्य सिद्धान्त यह है कि राजा ही राज्य का सार्वभौम स्वामी और मूल स्वत्वाधिकारी होता है और समस्त अधिकार उसी में निहित होते थे तथा उसी से प्राप्त किये जा सकते थे। फिर यूरोपीय सामन्त प्रणाली में कृषक अथवा दास कोई सम्पत्ति प्राप्त नहीं कर सकता था और यदि वह कोई सम्पत्ति या भूमि खरीद भी लेता था तो वह स्वामी उसमें घुसकर स्वेच्छा से उसका उपयोग कर सकता था, जबकि राजस्थान में रैयत अथवा किसान ही भूमि का असली मालिक होता था। संक्षेप में समग्रता के साथ किये गये अध्ययन के बाद अनेक समानताएं अस्पष्ट अथवा तर्कहीन जान पड़ती हैं। यों तो भारतीय सामन्त-वाद पर कुछ विद्वानों के ग्रन्थ अंग्रेजी में प्रकाशित हुए थे, जो सम्भवतः अब अप्राप्य हैं। मध्यकालीन इतिहास में साम्राज्यों अथवा राष्ट्रों के विघटन व पतन में सामन्तवाद ही एक मूलभूत कारण के रूप में अधिकतर उभरता रहा है। ऐसी स्थिति में डेढ़ सौ वर्ष पूर्व कर्नल जेम्स टॉड द्वारा सामन्तवाद सम्बन्धी यह विवेचन अवश्य ही इस सन्दर्भ में गहन पुनर्चिन्तन का प्रेरक हो सकेगा।

टॉड ने अपने इस ग्रन्थ में राजपूत जाति के उद्भव के सम्बन्ध में इस बात की स्थापना करने का भरसक प्रयत्न किया है कि राजपूत मुख्य रूप से सिथियनों अर्थात् शकों के वंशज हैं। अपने इस कथन के समर्थन में टॉड ने बताया है कि राजपूतों में प्रचलित अनेक रीति-रिवाज, जैसे सूर्यपूजा, सतीप्रथा, अश्वमेघ यज्ञ करना, विशेष मद्यपान, शस्त्रों और घोड़ों की पूजा आदि शक जाति के रीति-रिवाजों से बहुत मिलते-जुलते हैं। यही नहीं टॉड के अनुसार तातारी और शक लोगों की पुरानी कथाओं तथा पुराणों की कथाओं में भी समानता पाई जाती है। आगे चलकर विसेंट स्मिथ आदि यूरोपीय विद्वानों ने टॉड के इस मत को मान्य ही नहीं किया, किंतु एक मात्र गुर्जर प्रतिहार नाम के आधार पर ही उनमें से कई ने अन्य तीन तथाकथित अग्निवंशी राजकूलों को भी गुर्जर हूणों का वंशज होने का अनुमान प्रस्तुत किया।

महत्त्वपूर्ण प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री के अध्ययन और मनन से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि टॉड का कथन अधिकतर काल्पनिक ही था। अन्य यूरोपियन इतिहासकार भी मूल प्रमाणों के आधार पर निश्चितरूपेण यह प्रमाणित नहीं कर पाये हैं कि कौन-कौन सी राजपूत जातियाँ किस-किस बाहरी आक्रमणकारी जातियों की वंशज हैं। ओझाजी ने जहां विन्सेण्ट स्मिथ आदि इन सब ही यूरोपियन इतिहासकारों के कथनों को अमान्य किया है वहां साथ ही इस स्थापना को स्थापित करने का प्रयत्न किया है कि भारत पर आक्रमण करने वाली शक और हूण जातियां आर्यों से भिन्न नहीं, किन्तु वस्तुतः क्षत्रिय ही थी और वैदिक धर्म को छोड़कर अन्य (बौद्ध आदि) धर्मों के अनुयायी हो जाने के कारण वैदिक धर्म के आचार्यों ने उनकी गणना निधर्मियों (धर्म-भ्रष्टों) में की। पुनः तथाकथित अग्नि-वंशी राजकुल विक्रम संवत की 16वीं शताब्दी से पहिले अपने को अग्नि-वंशी नहीं मानते थे, प्रत्युत उनके शिलालेखों में स्वयं को "सूर्यवंशी", "चन्द्रवंशी" या "ब्रह्मवंशी" आदि लिखा मिलता है।[1]

ईसा की 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में टॉड ने राजपूतों को एक संगठित जाति के रूप में पाया और साथ ही उसने राजपूतों के छत्तीस राजकुलों का सविस्तार विवरण पढ़ा और सुना। महाभारत, पुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों में भारत के प्राचीन राजवंशों के विवरणों में उसे न तो राजपूत जाति का उल्लेख मिला और न उसने इन छत्तीस राजकुलों की व्यवस्था ही पाई। अतः "राजपूत" जाति की उत्पत्ति और उसके निवास की समस्या एक अबूझ पहेली के रूप में टॉड के सम्मुख उपस्थित हुई, जिसका उसने अपनी बुद्धि के अनुसार उपर्युक्त हल निकाला। परन्तु इस समस्या का हल निकालने के लिए यह पता लगाना अत्यावश्यक है कि किसी जाति सूचक अर्थ में "राजपूत" शब्द का प्रयोग कब से होने लगा?

1– राजपूताने का इतिहास, भाग 1, द्वि. सं. पृ. 2।

ओझाजी के अनुसार मुसलमानों के राजत्व काल में क्षत्रियों के राज्य क्रमशः अस्त होते गये और जो बचे उनको मुसलमानों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी, अतएव वे स्वतन्त्र राजा न रहकर सामन्त से बन गये। ऐसी स्थिति में मुसलमानों के समय राजवंशी होने के कारण उनके लिए (राजपूत्र) "राजपूत" नाम का प्रयोग होने लगा। फिर धीरे-धीरे यह शब्द जाति सूचक होकर मुगलों के समय अथवा उसके पूर्व सामान्य रूप से प्रचार में आने लगा। इस कथन की विवेचना करते हुए जयचन्द्र विद्यालंकार[1] ने लिखा है कि (सब ही राज) कुलों को मिलाकर राजपूत जाति बनाने की कल्पना का सौलहवीं शताब्दी से पहले होने का कोई प्रमाण नहीं है। .... असल में राजपूत कोई नई जाति न थी। राजाओं के पुत्र इस देश में सदा से पैदा होते थे और अपने बराबर वालों में ही ब्याह शादी की जावे ऐसा रूझान भी लोगों में सदा रहा है।"

इसके अतिरिक्त टॉड अपने एनल्स में राजपूतों की सामाजिक व आर्थिक अवस्था का सही वर्णन कर सका है। वह उनकी कठोर आर्थिक अवस्था के मूल दोषों को समझने में भी असफल रहा। उसने राजपूतों की आर्थिक अवस्था के नष्ट हो जाने का मूल कारण मराठों के प्रवेश को माना है जबकि अनेक अन्य कारणों जैसे कृषि योग्य भूमि का अभाव, व्यापार व उद्योगों पर परम्परागत जातियों के एकाधिपत्य आदि को उसने महत्त्व प्रदान नहीं किया।

राजस्थान की युद्धप्रिय जातियों और प्राचीन यूरोप की जातियों की उत्पत्ति के स्रोत को समान समझते हुए टॉड ने लिखा है कि मैं कुछ हद तक यह सिद्ध करने में सफल रहा हूं कि भारत में उपस्थित सामन्ती प्रथा और यूरोपियन महाद्वीप के प्रारम्भिक काल की सामन्ती व्यवस्था में काफी समानता है। वह 1818 ई. में हेनरी हेलम की पुस्तक "व्यू ऑफ दी स्टेट ऑफ यूरोप ड्यूरिंग दी मिडल ऐजेज" से बहुत ही प्रभावित था, किन्तु प्राचीन व्यवस्था की अन्धकारपूर्ण नीति पर तीक्ष्ण प्रकाश डालते समय उसने हेलम द्वारा दी गयी चेतावनी की चिन्ता नहीं की। हेलम के अनुसार उपमाओं के प्रति हमारे लिए पूर्ण सजग रहना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह सब गहन चिन्तन के सम्मुख नहीं टिक पाते। यूरोप की मध्यकालीन सामन्ती व्यवस्था और राजपूतों की जातीय संस्थाओं के मध्य समानता दर्शाने के प्रयास में उसने अनेक त्रुटियां की हैं। एनल्स में तथ्यों व घटनाओं के क्रम में भी अनेकों त्रुटियां दृष्टिगोचर होती हैं। सम्वत को सन् में परिवर्तित करने में भी उसने 57 वर्ष की जगह 59 वर्ष घटाये जो कि आधुनिक मान्यता के विरूद्ध है।[2]

1– भारतीय इतिहास की मीमांसा, पृ. 145-147।

2– क्रूक, भाग 2, पृ. 1104-1106, 1146-1149, 1242-1243,1252-1256, भाग 3, 1428-1430।

एनल्स के अध्ययन से टॉड की राजपूतों के प्रति पक्षपातपूर्ण विचारधारा स्पष्ट रूप से झलकती है। राजपूत योद्धाओं के बलिदान की घटनाओं व उनकी तलवारों की चमक ने टॉड की आंखों को चकाचौंध कर दिया। राजपूतों की परम्परागत बहादुरी से प्रभावित होकर टॉड ने लिखा कि राजस्थान में एक भी ऐसा राज्य नहीं है जिसमें थर्मोपली जैसा युद्ध क्षेत्र न हो और न ही ऐसा कोई गांव है जिसने ल्योनीडास जैसे वीर पैदा न किये हों। हल्दीघाटी राजस्थान की थर्मोपली है और दिवेर मेरेथान।

यद्यपि राजपूतों में व्यापक अफीम के सेवन की बुराई जैसे तथ्यों पर उसने प्रकाश डाला है, तथापि उनके चरित्र की अनेकों कमियों उदाहरणार्थ, सुरा व सुन्दरी में लिप्त रहना, आपसी कलह व मनोमालिन्य, इतिहास प्रसिद्ध अदूरदर्शिता आदि दुर्बलताओं के बारे में उसने ज्यादा नहीं लिखा।

टॉड राजपूत वंश की अनेकों शाखाओं में से मेवाड़ के सीसोदिया वंश का अत्यधिक सम्मान करता था, जिनको कि वह बहुत निकटता से जानता था। यद्यपि उसने 'एनल्स' में छोटे व बड़े सभी राजपूत राज्यों को स्थान दिया जो कि विस्तृतता के दृष्टिकोण से सन्देह से परे हैं, फिर भी टॉड ने मेवाड़ के इतिहास के वर्णन को किसी भी अन्य राज्य की तुलना में अधिक स्थान दिया है। टॉड के ग्रन्थ का अधिकांश भाग मेवाड़ से सम्बन्धित है। मेवाड़ का इतिहास अन्य राज्यों की तुलना में बहुत प्राचीन काल से दर्शाया गया है, जबकि टॉड के समय में मेवाड़ राजस्थान का महत्त्वपूर्ण राज्य नहीं था। मुगलों के प्रारम्भिक काल से ही मेवाड़ के शासकों ने राजपूताने में अपना महत्त्व खो दिया था, जबकि मारवाड़ और ढूंढाड़ केन्द्रीय संरक्षण से अपनी स्थिति और समृद्धता में बहुत आगे बढ़ गये थे। जैसा कि डॉ. ए.सी. बनर्जी[1] ने लिखा है कि "उन्नीसवीं शताब्दी के राजनीतिक पर्यवेक्षक ने इस तथ्य को नजरअन्दाज नहीं किया होगा कि मारवाड़ व ढूंढाड़ राजस्थान के मुख्य राज्य थे और मेवाड़ की तुलना में इतिहासकारों का ज्यादा ध्यान आकर्षित किया। जयपुर का इतिहास केवल एक परिशिष्ट मात्र है और वह तत्कालीन राजनीतिक उद्देश्यों को सामने रखकर लिखा गया था। एस.के. भट्टाचार्य[2] के मत में इसका कारण जयपुर नरेश द्वारा सन्धि करने के समय हिचकिचाहट का प्रदर्शन था।

जहां तक डॉ. बनर्जी व डॉ. भट्टाचार्य की टॉड के सम्बन्ध में आलोचना का प्रश्न है, इसके प्रत्युत्तर में यह कहा जा सकता है कि मेवाड़ का सीसोदिया राजघराना इस सर्वोच्चता का अधिकारी था, क्योंकि यह भारत के क्षत्रियों का प्राचीनतम जीवित राज्य था। इसके अतिरिक्त मुगल साम्राज्य के स्थापित होने के पश्चात् मेवाड़ मुगल संघर्ष स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास था। यह संघर्ष एक दिशा निर्देशक था, जिसे यह

1– लेक्चर्स ऑन राजपूत हिस्ट्री, कलकत्ता 1962, पृ. 186-187।

2– एस.पी. सेन (सम्पादक) हिस्टोरियन एण्ड हिस्ट्रीयोग्राफी इन मोडर्न इण्डिया।

उदाहरण प्रस्तुत किया कि कैसे एक छोटा सा राज्य एक शक्तिशाली साम्राज्य के विरूद्ध स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कर सकता है। किन्तु यह स्वीकार करना पड़ेगा कि मेवाड़ के प्रति पक्षपात की भावना टॉड के ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होती है। जैसे गुहिल से हमीर तक मेवाड़ प्रभुत्व सम्पन्न नहीं था, फिर भी टॉड ने इस पक्ष की ओर ध्यान नहीं दिया। गुहिल से हमीर तक के काल में प्रतिहार, पंवार, सोलंकियों के वर्णन की ओर उन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया।

टॉड ने 'एनल्स' में औरंगजेब की नीति की भी आलोचना की है। उसने यह लिखा है कि "एशिया के तख्त पर बैठने वाले सम्राटों में सबसे ज्यादा अपराध औरंगजेब ने किये। उसने एक भी ऐसा उदार कार्य नहीं किया जिससे उसमें सफलता मिल सकती। उसने राजपूतों की अवहेलना करके अपनी शक्ति के स्रोत को खतरे में डाल दिया। मराठों के प्रति ईर्ष्या और कटु भावना रखते थे, उसी तरह के विचार टॉड के थे। राजपूताना में मराठों की गतिविधियों के सन्दर्भ में यह ऐतिहासिक निर्णय के सन्तुलन के बाहर चला गया। वैसे भी एक सामान्य अंग्रेज अधिकारी के लिए उस समय मराठों को कम्पनी के शत्रु समझने के अतिरिक्त अन्य निर्णय करना आसान नहीं था और टॉड जो कि राजपूतों का मित्र था, के लिए तो मराठे निन्दा के पात्र थे।

टॉड का लेखन ऐसे व्यक्तियों को अपनी कृतियों का आधार बनाकर अन्य स्रोतों का समग्र अध्ययन नहीं कर सका। उसने सिक्कों व शिलालेखों को इसमें समाविष्ट नहीं किया। यही नहीं बल्कि राजपूत राज्यों के इतिहास पर प्रकाश डालने वाले फारसी स्रोतों का उपयोग करने में भी असल रहा, जो कि तुर्कों के भारत आगमन के पश्चात् प्रारम्भ होते हैं। 'एनल्स' के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उसे मराठी साधनों का ज्ञान नहीं था तथा न ही उसने उन राजकीय पत्रों का उपयोग किया जो कि राजपूत शासकों के पास सुरक्षित थे तथा जिनसे राजपूत-मुगल और राजपूत-मराठा सम्बन्धों की जानकारी मिलती है।

काश्मीर के इतिहास से सम्बन्धित महान संस्कृत ग्रन्थ "राजतंरगिणी" का नाम भी उसने नहीं सुना था। गुजरात के इतिहास के सुप्रमाणित तथा संगृहीत "प्रबन्ध चिन्तामणी" नामक ग्रन्थ भी उसने नहीं पढ़ा। यहां तक कि राजस्थान के सबसे बड़े और अत्यन्त महत्त्व के राजस्थानी ऐतिहासिक ग्रन्थ "मुंहता नैणसी की ख्यात" तक की उसे जानकारी नहीं मिली।[1] वह स्वयं संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं को नहीं पढ़ सकता था। प्राचीन लिपि के पढ़ने का वह पूर्ण रूप से अभ्यस्त नहीं था। प्राचीन ब्राह्मी लिपि, जिसमें अशोक के धर्म लेख अंकित हुए थे और जिस लिपि में लिखे सैंकड़ों ग्रन्थ अब उपलब्ध हो गये हैं, उसके अक्षरों का भी उसे ज्ञान नहीं था। मौर्य उत्तर-

---

1 – मुंहणोत नैणसी री ख्यात, श्री रामनारायण दुगड़ कृत हिन्दी अनुवाद, भाग 1, भूमिका, पृ. 8-9।

कालीन, कुषाण, क्षत्रप, गुप्त आदि राजाओं के समय के शिलालेख, ताम्रपत्र, सिक्के आदि जो बाद में हजारों की संख्या में उपलब्ध हुए हैं, उनमें से किसी की भी कल्पना टॉड को नहीं हो पाई थी।

ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया

'एनल्स एण्ड एण्टिक्वीटिज आफ राजस्थान' के दूसरे भाग को प्रकाशित करने के पश्चात् उसने अपने इस ग्रन्थ को लिखना प्रारम्भ किया। सितम्बर 1835 ई. में उसने इस पुस्तक के अन्तिम प्रकरण लिख डाले थे। यत्र-तत्र कुछ और पाद टिप्पणियां जोड़ना, कुछ परिशिष्टों का चयन तथा इस ग्रन्थ की भूमिका ही लिखनी बाकी रह गई थी। इस ग्रन्थ को लन्दन से प्रकाशित करने के लिये टॉड नवम्बर, 1835 ई. में लन्दन रहने को चला गया, परन्तु इसी माह उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार से न तो वह मूल पाण्डुलिपि में अत्यावश्यक संशोधन कर सका और न यत्किंचित अपूर्ण रहे विभिन्न प्रकरणों को वह परिपूर्ण ही बना पाया। ग्रन्थकर्ता विषयक संस्मरण मात्र जोड़कर टॉड की प्रतिलिपि को यथावत् 1839 ई. में लन्दन से प्रकाशित किया गया।

इस पुस्तक में टॉड ने अपनी उदयपुर से माण्डली तक की पश्चिमी भारत की यात्रा का विवरण दिया है। इस यात्रा से सम्बन्धित स्थानों, तीर्थों, मन्दिरों, गढ़ों, शासकों आदि के विषय में जो कुछ उसने सुना, देखा अथवा पढ़ा उस सभी को उसने इसमें संकलित किया है। आबू पहाड़ को संसार में ख्याति दिलाने का श्रेय उसी को है। उसने शत्रुंजय, गिरनार, द्वारका, सोमनाथ आदि पवित्र तीर्थ स्थानों के भी सुन्दर और भावपूर्ण वर्णन इस पुस्तक में लिखे हैं।

इस पुस्तक में सिरोही के देवड़ा राजघराने से सम्बन्ध व टॉड द्वारा दी गई जानकारी को तद्विषयक आधार सामग्री माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त उसने प्रसिद्ध राजपूत कवयित्री मीरा बाई के बारे में भी लिखा है। अरावली की ऋतुओं के वर्णन के अतिरिक्त उसने कच्छ और सिरोही के भूगोल पर भी प्रकाश डाला है। टॉड द्वारा प्रस्तुत आबू के परमार राजाओं की राजधानी चन्द्रावती के भग्नावशषों का सचित्र विवरण मूलतः कर्नल विलियम हण्टर ब्लेअर की पत्नी द्वारा बनाये गये चित्रों (जिन्हें इस यात्रा विवरणमें प्रकाशित किया है) पर आधारित प्रतीत होता है। 1824 ई. में बम्बई प्रेसिडेन्सी के मुख्य सेनापति सर चार्ल्स कालविल की पत्नी ने अपने पति के साथ यात्रा करते समय चन्द्रावती के भग्नावशषों का अवलोकन करके चित्रित किया था तथा उनके विवरण टॉड को लिख भेजे थे। कुछ ही समय बाद ये भग्नावशेष नष्ट हो गये। अतएव अन्य कोई इतिहास प्रेमी अथवा पुरातत्व वक्ता उन्हें देखकर इनके बारे में कुछ और नहीं लिख सका।

चन्द्रावती के खण्डहरों की सामग्री से निर्मित अहमदाबाद नगर के निर्माण पर टॉड को बड़ा आक्रोश था। उसने मुसलमानी और हिन्दू स्थापत्य के अन्तर को बताते

हुए लिखा है कि गहरे कटावदार हिन्दू भवन समूहों को देखने पर एक चित्र सरीखी श्यामल छाया गम्भीरतम् दृश्य उपस्थित करती है और वे मेघाच्छान्न आकाश से अधिक साम्य लिए हुए तथा अपने पिरामिण्ड जैसे शुण्डाकार शिखरों के चारों ओर खेलते हुए तूफानों की शक्ति पर एक तिरस्कारपूर्ण हँसी हँसते हुए-से जान पड़ते हैं, जबकि किसी गुम्बददार मस्जिद और इसकी परियों जैसी गगनचुम्बी मीनारें उसी समय सुन्दरतम दृश्य उपस्थित कर पाती हैं जब प्रकृति शांत होती है अथवा जब निरभ्र आकाश से किसी खिड़की की रंगीन चौखट में होकर आती हुई-सी सूर्य-रश्मियाँ संगमरमर की गुम्बद पर अबाध गति से खेल रही होती हैं।[1]

अपनी इस यात्रा में ऐतिहासिक खोज और उसके द्वारा भूतकालीन इतिवृत्त की अज्ञात, लुप्त तथा विश्रृंखलित कड़ियों को जोड़ने के लिए टॉड सदैव ही उत्सुक रहा। वह जानता था कि इन प्रदेशों में ऐसी सामग्री की कमी नहीं है, जिसका उपयोग शोध (विषयक प्रवृत्ति) को समान रूप से सम्मानित और प्रोत्साहित करने में किया जा सकता है। शिलालेखों के आधार पर चरित्रों एवं ऐतिहासिक वृत्तों के तिथि-क्रम के तथ्यों को निश्चित करना, भाटों के लेखों से (अनेकानेक) नामधारी विदेशी जातियों के उत्तरी एशिया से चलकर इन प्रदेशों में आ बसने के क्रम का पता लगाना, विभिन्न पूजा प्रकारों पर विचार करना जो वे अपने पूर्व पुरूषों की भूमि में यहां पर लाए और यहां से जिन लोगों को हटाकर वे बस गए, उनके रहन-सहन आदि के तरीकों में घुलने-मिलने से जो भी थोड़े बहुत परिवर्तन हुए हैं उनके विषय में अनुमान लगाना तथा इस बात की भी शोध करना कि उनकी प्राचीन आदतों और संस्थाओं में से कितनी अब भी बच रही है। ऐसे विषय हैं जो किसी भी विचारशील मस्तिष्क के लिये कदापि हीन या अपेक्षणीय नहीं हैं और यहां के शोध के लिये पूरी-पूरी सुविधाएं प्राप्त हैं।[2]

टॉड द्वारा यों ढूंढ निकाले गये कईएक शिलालेख उन प्रतिलिपियों या उनके इन उल्लेखों द्वारा ही अब आधुनिक इतिहासकारों को प्राप्य हैं। अपने इस यात्रा वर्णन में टॉड ने स्थान-स्थान पर प्राप्त शिलालेखों तथा कहीं-कहीं उनसे प्राप्त महत्त्वपूर्ण जानकारी का भी यथा स्थान उल्लेख किया है। डॉ. रघुबीरसिंह के शब्दों में- "इन शिलालेखों में परिशिष्ट संख्या सात का शिलालेख विशेष महत्व का है जो मूलतः सोमनाथ का होते हुए भी टॉड को बेरावल में मिला था। उसमें सिंह संवत् का उल्लेख है, जो तब तक अज्ञात हीं था। उसको किसने प्रारम्भ किया इस बारे में इतिहासकार अभी तक एक मत नहीं हो पाये हैं।[3]

1- पश्चिमी भारत की यात्रा, पृ. 251।

2- पचश्मी भारत की यात्रा, पृ. 225।

3- पश्चिमी भारत की यात्रा, प्रस्तावना, पृ. 14।

किसी भी विषय पर सर्वप्रथम लिखे गये ग्रन्थ में पाये जाने वाले सारे गुण दोष, टॉड की इस कृति में देखने को मिलते हैं। डॉ. रघुवीरसिंह के मत में टॉड ने जिस काल में यह सारी सामग्री एकत्र की तथा उसको समझने बुझने का प्रयत्न कर अपने ग्रन्थों की रचना की, वह भारतीय पुरातत्व तथा ऐतिहासिक शोध का सर्वथा प्रारम्भिक काल था। अतः टॉड के इस ग्रन्थ में अनेकानेक मूल्यों, एकांगीयता और अपूर्णता का होना अनिवार्य था। वस्तुतः टॉड का "ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया" से गुजरात से पुरातत्व तथा पूर्व मध्यकालीन इतिहास के अध्ययन का प्रारंभ ही हुआ था।[1] वस्तुतः उसमें संगृहीत ऐतिहासिक सामग्री तथा उन क्षेत्रों के ऐतिहासिक स्थानों, मन्दिरों या विशिष्ट प्राचीन खण्डहरों के तत्कालीन विवरणों के साथ ही कई एक अन्य विशेषताओं के कारण ही टॉड के इस यात्रा विवरण का महत्व अपने आप ही बना हुआ है।

टॉड ने यह यात्रा तब की थी जब वहां अंग्रेजों का आधिपत्य स्थापित हुए कुछ ही वर्ष हुए थे। वहां की राजनीति, समूचा समाज और संस्कृति तब भी मध्ययुगीन परम्पराएं तथा गये बीते युगों के वातावरण में डूबी हुई थी। वहां का समूचा समाज तब अंग्रेजी सत्ता के आधिपत्य तथा आतंक के फलस्वरूप इन क्षेत्रों में सह स्थापित शान्ति के सुखमय जीवन का आनन्द लेता हुआ सहज आलस्य और अफीम की पीनक में निमग्न था। पाश्चात्य भावनाओं, आदर्शों, मान्यताओं तथा तौर तरीकों के प्रथम आघात के फलस्वरूप गुजरात के सदियों से निश्चेष्ट अनुद्विग्न जीवन में जो प्रतिक्रियाएं आगे चलकर होने वाली थी, उनका तब कोई भी आयाम नहीं दिख पड़ रहा था। टॉड ने इन सबको देखा और समझा तथा अपने इस ग्रन्थ में उनका यत्र-तत्र संकेत भी दिया है। ये ही सब जब इतिहास की बातें हो गई हैं, जो बाद की घटनाओं के कारण को समझने में सहायक होती है, अतः उनका विशेष गहराई के साथ अध्ययन और विवेचन अत्यावश्यक है।

टॉड का लेखन एवं साम्प्रदायिकता

कर्नल टॉड ने एक राजस्थानी कहावत "बगड्यो ठाकर करे पुराणी बात" (बिगड़ा ठाकुर पुरखों की ही गाथा गाता है) का उल्लेख कर अपने समय के राजपूतों की एक चारित्रिक विशेषता की ओर संकेत किया है। उसके अनुसार अपने पुरखों का कीर्तन करना अथवा स्मरण करना राजस्थान के सामन्तों की एक दुर्बलता बन चुकी थी। ऐसा आरोप लगाया जाता है कि टॉड ने राजपूतों की एक प्रवृत्ति का लाभ उठा कर राजस्थानी शासकों को मोह लिया और मुसलमानों एवं मराठों से अलग कर अपने जाल में फंसाया। उसने अपने "एनाल्स" में राजस्थान और विशेषतः मेवाड़ के इतिहास का बहुत ही चटकीली भाषा में वर्णन किया है। उसने विदेशी आक्रान्ताओं के विरूद्ध राजस्थानी वीर पुरूषों के उन संघर्षों का झसेड़ों की भाँति हिन्दुओं द्वारा

1– पश्चिमी भारत की यात्रा, प्रस्तावना, पृ. 17।

मुसलमानों के विरूद्ध निरन्तर लड़े गये धर्म युद्धों का बाना पहनाकर देश में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक विद्वेष के बीज बोये। टॉड का ग्रन्थ प्रकाशित होने के पश्चात् समूचे इतिहास को हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष के रूप में देखने और उसी रूप में उसकी व्याख्या करने की एक नयी प्रवृत्ति ने जन्म लिया। राजस्थानी साहित्य में टॉड युग के पूर्व की रचनाओं में मुस्लिम विरोधी भावनाएं प्रायः नहीं के बराबर हैं। यहां तक कि पृथ्वीराज रासो में शहाबुद्दीन गोरी और पृथ्वीराज के संघर्ष में हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का भाव ध्वनित नहीं होता है। रासो के रचयिता ने कहीं पर जयचन्द को इसके लिये नहीं धिक्कारा है कि उसने एक हिन्दू राजा के विरूद्ध मुसलमान का साथ दिया। प्राचीन राजस्थानी साहित्य में राजपूत मुसलमान संघर्ष को शुद्ध स्वदेशी-विदेशी के बीच होने वाले स्वाभाविक संघर्ष के रूप में ही अंकित किया गया है। मुगलों से पहले तुर्क मुसलमान आक्रान्ताओं को प्रायः शक कहा गया है और मुगलों को तुर्क जिनके विरूद्ध प्राचीनकाल में भी निरन्तर संघर्ष करने की धुन्धली स्मृति राजस्थानवासियों के मन में पहले से थी। टॉड के लेखन की श्रृंखला में कोटा के कवि सूरजमल द्वारा वंश भास्कर नामक एक बहुत वृहत काव्य इतिहास की रचना (1835-68) इस नयी प्रवृत्ति के साहित्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

भारत के अन्य प्रान्तों के निवासियों को भी टॉड के ग्रंथ ने प्रभावित किया। हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष की नये सिरे से उभरती हुई भावनाओं पर 1857 की क्रान्ति के नेताओं द्वारा किये गये प्रचार से कुछ रोक लगी। उसका प्रभाव नष्ट करने में टॉड के ग्रंथ का प्रचार बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। उसके अनुवाद उत्तर भारत की प्रायः सभी भाषाओं में निकले। साम्प्रदायिक विद्वेष के विष-बीज उस ग्रंथ के प्रसार के साथ-साथ देश में चारों तरफ फैले।

टॉड ने भारतीय इतिहास के मध्यकाल को मुस्लिम काल कहा है। तुर्क, अफगान और मुगल शासकों के शासन को मुस्लिम शासन कहा है। यद्यपि अधिकांश मुस्लिम हिन्दुओं की भांति गरीब तथा करों से उत्पीड़ित थे और दोनों को शासक, सामन्त, सरदार और जमीदार भले ही वे मुसलमान हों या हिन्दू, तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे तथापि टॉड ने यह घोषित कर दिया कि मध्यकालीन भारत में सभी मुस्लिम शासक थे तथा सभी गैर मुस्लिम शासित थे।

टॉड इस तथ्य को नजरअन्दाज कर गया कि अन्य देशों की राजनीति की भांति प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय राजनीति धार्मिक आधारों पर नहीं बलिक आर्थिक और सामाजिक हितों पर आधारित थी। शासकों और विद्रोहियों, दोनों ने अपने भौतिक हितों और महत्वाकांक्षाओं को छिपाने के लिये धर्म का सहारा लिया। इस प्रकार टॉड ने भारत की मिली-जुली संस्कृति की धारणा पर प्रहार किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत में विभिन्न संस्कृतियां विद्यमान थी, किन्तु यह विभिन्नता धार्मिक आधार पर नहीं थी। एक क्षेत्र के निवासियों तथा एक ही क्षेत्र के उच्च और मध्यम

वर्गों के सांस्कृतिक ढांचे समान थे। फिर भी टॉड ने भारत में हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों को भिन्न-भिन्न माना।

टॉड ने मध्यकालीन राजस्थानी संस्कृति को विकृत रूप से प्रस्तुत किया। उसने भारतीय संस्कृति तथा भारतीय राष्ट्र का हिन्दू धर्म तथा हिन्दुओं के साथ तादात्म्य कर दिया। उदाहरण के लिये प्रताप व राजसिंह का गुणगान उनकी ऐतिहासिक भूमिकाओं के कारण ही नहीं बल्कि इसलिये किया कि वे ऐसे राष्ट्रीय नेता थे जो विदेशियों के विरूद्ध लड़े। किसी भी परिभाषा के अनुसार अकबर या औरंगजेब को विदेशी कहने का आधार मान लिया जाय। वस्तुतः प्रताप व अकबर या राजसिंह व औरंगजेब के परस्पर संघर्ष को एक विशेष ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में राजनैतिक संघर्ष के रूप में देखना चाहिये था। अकबर या औरंगजेब को विदेशी तथा प्रताप या राजसिंह को राष्ट्रीय शासक घोषित करना टॉड के साम्प्रदायिक दृष्टिकोण का परिचायक है।[1] अतः यह कहना अनुचित नहीं होगा कि इस प्रकार के तथ्यों ने राष्ट्रीय एकता को गहरा आघात पहुंचाया। किंतु इससे कहीं अधिक उसके लेखन ने राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरणा दी।

टॉड का लेखन-राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरणा

टॉड के प्रख्यात ग्रन्थ 'एनल्स' में मेवाड़-मुगल संघर्ष के लोकप्रिय जीवन की झांकी मिलती है। टॉड का यह ग्रन्थ नाटकीय, रोचक और स्फूर्तिदायक घटनाओं से भरा होने पर भी कई अंशों में ऐतिहासिक सत्यता से विहीन अपने विषय का प्रथम तथा तब का एकमात्र ग्रंथ है। इस प्रकार अपने भावना भरे रोचक वर्णन, सजीव चरित्र-चित्रण और स्फूर्तिपूर्ण शैली के कारण टॉड कृत "राजस्थान" प्रारम्भ से ही विद्वानों में मान्य हुआ और भारत के विभिन्न प्रदेशों के अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों में बहुत ही लोकप्रिय हो गया। फलतः अनेक भारतीय भाषाओं में उसके संक्षिप्त या पूरे अनुवाद निकले। टॉड कृत "राजस्थान" के अनुवाद उसके आधार पर लिखी गई पुस्तकों को पढ़कर विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्यकार और राजस्थान के इतिहासकार ग्रन्थ के प्रमुख जन नायक की ओर आकर्षित हुए तथा उन्होंने इन नायकों के ऊपर अनेक विख्यात देशभक्ति पूर्ण नाटक, उपन्यास और काव्य रचे। इस प्रकार इन नायकों की वह वीर गाथा भारत के बंगाल, उत्कल, आन्ध्र, कन्नड़ और महाराष्ट्र जैसे दूरस्थ प्रदेशों के जनसाधारण में फैल गई और उन्हें स्वतन्त्रता की साधना के लिए प्रेरित करने लगी।[2]

आजादी की लड़ाई में ऐसे कथानक की आवश्यकता थी, जो हमारी सोई स्मृति को झकझोर कर नवीन प्राण फूंक सके। इसे कर्नल जेम्स टॉड कृत "राजस्थान" ने

1– टॉड का लेखन एवं साम्प्रदायिकता, डॉ. नारायणसिंह चूण्डावत, मरु भारती वर्ष 33, अंक 3, 1985।

2– महाराणा प्रताप, पृ. 65, रघुवीरसिंह, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार 1972।

पूरा किया। बंगला साहित्यकारों को जैसे अनचाहे गुबेर का खजाना मिल गया। वे "राजस्थान" का दोहन करने लगे और अपनी रचना प्रक्रिया से साहित्य भण्डार को भरने लगे। राजस्थान के वीर चरित्रों में उनका सबसे बड़ा आकर्षण रहा राणा प्रताप।[1] बंगला के नाट्य-सम्राट गिरीशचन्द्र, रवीन्द्रनाथ के अग्रेज ज्योतिरिन्य ठाकुर, रवीन्द्रनाथ के समकालीन और अप्रतिम प्रतिद्वन्द्वी द्विजेन्द्रलाल राय ने राणा प्रताप के जीवन की अछूती घटनाओं को लेकर बंगला साहित्य में नाट्य साहित्य की रचना की। वास्तव में बंगला साहित्य की सभी साहित्यिक विधाओं में "राजस्थान" की वीर गाथाओं पर बेशुमार रचनाएं हैं। इन रचनाओं में रमेशचन्द्र दत्त[2] के उपन्यास सर्वाधिक चर्चित हैं।[3] बंकिम की अपेक्षा रमेशचन्द्र के उपन्यासों में इतिहास अधिक सच्चाई के साथ उजागर हुआ है। वे भी बंकिम की भांति इतिहास के रोमांस को लेकर आगे बढ़े पर उनकी कृतियों में इतिहास ज्यादा सपाट बयानी से मुखरित हुआ। इसका कारण यह था कि एक तो वे स्वयं इतिहास के पण्डित थे तथा दूसरे उन्होंने स्टूआर्ट के "हिस्ट्री ऑफ बंगाल" तथा टॉड के "एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान" को मनोयोग से पढ़ा था।[4]

बंग विजेता "माधवी कंकण", महाराष्ट्र जीवन प्रभात, और राजपूत जीवन संध्या, नामक उपन्यासों में राजस्थानी नायकों की साहसिकता, देश प्रेम, वीरत्व, मातृभूमि की रक्षा, असीम मनोबल, कष्ट सहिष्णुता आदि कई एक गुणों के रोमांचक प्रसंगों का उल्लेख कर उनके प्रति भावपूर्ण श्रद्धा व्यक्त की है। बंग विजेता उपन्यास में रमेशचन्द्र ने राजा टोडरमल के मुख से राणा प्रताप की भूरि-भूरि प्रशंसा कराई है और माधवी कंकण में एक चारण के मुख से प्रशस्ति गीत गवाया है। यह गीत इस उपन्यास के नायक नरेन्द्रनाथ को इतना प्रिय लगा कि वह राजपूत जाति की गरिमा के प्रति नत-मस्तक हो गया और अपने को धन्य मानने लगा कि वह ऐसी वीर प्रसविनी मरूधरा में आया है। नरेन्द्र सोचने लगा "भारतवर्ष में जब ऐसे प्रतापी वीर हैं तब

1– बंगला उपन्यासों में राणा प्रताप की गौरव गाथा, शिवकुमार, जून 2, 1987, नवभारत टाइम्स-दिल्ली संस्करण।

2– 19वीं शताब्दी के श्रेष्ठ रचनाकारों में रमेशचन्द्र दत्त का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। वे प्रथम बंगभूमि पुत्र थे, जिन्होंने इंग्लैण्ड जाकर आई.सी.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। 1899 ई. में राष्ट्रीय कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन के सभापति चुने गये।

3– रमेशचन्द्र दत्त ने कुल छः उपन्यास लिखे, जिनमें बंगविजेता, माधवी कंकण, महाराष्ट्र जीवन प्रभात और राजपूत, जीवन संध्या, ऐतिहासिक हैं तथा 'संसार' और 'समाज' सामाजिक हैं।

4– शिवकुमार उल्लेखित।

बंगदेश की यह दुर्दशा क्यों है ? युद्ध ही राजस्थान के लोगों का पेशा है। मरूभूमि के बालक, वृद्ध और युवकों तथा रमणियों ने देश के लिए त्याग बलिदान स्वीकार किया है। धन, सुख, जीवन दिया है। यवनों ने मेवाड़वासियों के घर जला दिये। खेती नष्ट कर दी। दुर्ग छीन लिए, फिर भी उन्होंने अपने देशाभिमान से मस्तक ऊंचा रखा, नीचा नहीं किया। ऐसी वीर जाति पर किसे गर्व न होगा। वीरव्रती राणा के गीत आज भी अरावली की उपत्यकाओं में अनुगुन्जित हैं। और बंगदेश में !· · · · वेगवती गंगा नदी उसके गौरव गीत को नहीं गाती। ब्रह्मपुत्र नदी स्वाधीनता का गीत नहीं सुनाती और कटक की महानदी अनसुनी कर रही है। वहां के राजा और प्रजा सुख से सोते हैं। संसार में उनका नाम नहीं, वीरों की श्रेणी में उनका स्थान नहीं।[1]

अंग्रेजी साम्राज्य से जूझने वाले भारत के क्रान्तिकारियों ने भी राजस्थान के जननायकों के जीवन तथा आदर्श से प्रेरणा ली और उन्होंने स्थान-स्थान पर अनेक "नव भारतेर हल्दीघाटियों" को अपने रक्त से सींचा। भारत के पूजनीय वीर स्वातंत्र्य साधकों में प्रताप की भी गणना होने लगी। इस प्रकार उसकी वे सारी विफलताएं और आजीवन विरोध सदियों बाद विदेशी अंग्रेजी शासकों से लड़ने भारतीय स्वतन्त्रता के सैनिकों को हिम्मत बंधाते रहे।[2] यहां यह उल्लेखनीय है कि यह प्रेरणा टॉड के चटकीले लेखन से मिली।

मुगलकालीन भारतीय इतिहास में मेवाड़-मुगल संघर्ष का महत्व मुख्यतः स्थानीय प्रादेशिक ही रहा। प्रताप का कार्य-क्षेत्र और उसकी कार्यवाहियों का प्रभाव मेवाड़ प्रदेश तक ही सीमित रहा था। अतएव यह मानते हुए भी कि पराजित प्रताप विजेता अकबर से कम न था, सन्तुलित इतिहासकार को अकबर कालीन भारत के इतिहास में प्रताप के विवरण को इने-गिने पृष्ठों तक ही सीमित रखना पड़ा।[3] परन्तु 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में जब मुगलों के साथ प्रताप के आजीवन सफल संघर्ष की वीरगाथा समूचे देश में फैल गई और उसने अनुप्राणित होकर जब भारत की भाषाओं के प्रमुख साहित्यकार प्रताप के जीवन को लेकर बहुत प्रकार के प्रेरक साहित्य की रचना करने लगे, तब तो प्रताप का महत्व समूचे देश में व्याप्त हो गया। प्रताप की इस वीरगाथा ने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम को जो प्रेरणा दी उससे प्रताप की गिनती भारतीय राष्ट्र के पूजनीय स्वातंत्र्य वीरों में की जाने लगी और भारत की स्वाधीनता के बाद भी प्रताप का प्रभाव और महत्व किसी प्रकार कम नहीं हुआ है, क्योंकि प्रताप एक ऐसी अनुपम वीरगाथा का निर्माण कर गया है, जो आगे भी सभी देशकाल के स्वातंत्र्य साधकों को निरन्तर प्रेरणा देती रहेगी।[4]

1– माधवी कंकण, अष्टादश परिच्छेद।
2– महाराणा प्रताप, पृ. 65 रघुवीरसिंह।
3– महाराणा प्रताप, पृ. 65 रघुवीरसिंह।
4– महाराणा प्रताप, पृ. 65 रघुवीरसिंह।

टॉड जैसे एक अंग्रेज अधिकारी की कलम से निकली राजस्थानी वीरों की उज्ज्वल कथाओं के फैलने से भारतवासियों को हिन्दुओं को ही सही जातीय भाव और घोर आत्मविश्वास के प्रवाह में पांव टिका कर खड़े रहने की टूटी-फूटी बैसाखी हाथ लगी।[1] सुप्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना कर राणा प्रताप के आदर्श तथा स्वातंत्र्य युद्ध की उसकी परम्परा को दूर-दूर तक पहुंचाया और टॉड लिखित उनकी इस विवेचना को पढ़कर साहित्यकार मुग्ध हो गए और अपनी-अपनी रचनाओं द्वारा अनेकों ने इसका सर्वत्र प्रचार किया। उसी प्रकार नव महाराष्ट्र ने भी शिवाजी के साथ ही उसके पूज्य आदर्श राणा प्रताप को भी अपना मार्ग दर्शक स्वीकार कर लिया। इसी कारण ईसा की 19वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में प्रारम्भ होने वाले स्वराज्य प्राप्ति सम्बन्धी समस्त राजनैतिक आन्दोलनों एवं भारत की स्वतन्त्रता के लिए तब से ही सशस्त्र क्रान्ति के लिए सतत् प्रयत्न करने वाले प्रायः सब ही भारतीय देश भक्तों ने राणा प्रताप को अपना पूजनीय आदर्श मानकर उसकी इस इतिहास प्रसिद्ध परम्परा को अपने-अपने ढंग से आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया था। पुनः भारत को स्वाधीनता प्राप्त हो जाने के बाद राजस्थान के विभिन्न अर्द्ध-स्वतन्त्र राज्यों का राजनैतिक के साथ ही शासकीय एकीकरण भी करके स्वतन्त्र भारत के अन्तर्गत उसी के एक अवि-भाज्य विभाग के रूप में राजस्थान को एक सुसंगठित प्रांत बना देने वाले भी राणा प्रताप की दुहाई देकर अपने इस आयोजन को उसके ही चिरवांछित अपूर्व आदर्शों को पूरा करने का एक सफल प्रयत्न घोषित करते हैं। राजस्थान की राजनैतिक विचार-धारा के साथ राणा प्रताप की उस परम्परा का जो अभेद्य सम्बन्ध स्थापित हो गया है उसका आगे चलकर वहां के भावी इतिहास पर बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा, यह बात सुस्पष्टरूपेण दिख पड़ रही है।[2]

टॉड पर हेलेनेस्टिक सभ्यता का प्रभाव

यूनानी स्वतन्त्रता का संघर्ष इस समय चल रहा था। इंग्लैण्ड के अनेक विद्वान, जिनमें बायरन, शैली आदि थे उस समय इस प्राचीन सभ्यता की महानता से प्रभावित टॉड पर विशेष रूप से हेलाम द्वारा मध्य-कालीन युग के इतिहास का प्रभाव पड़ा। जे.एस. ग्रेवाल के मत में उसने राजस्थान के वीरों की तुलना प्राचीन यूनानी वीरों से की।[3] उसके मत में संयुक्त राजस्थान की हेलन थी तथा चूंडा राजस्थान का एक्सेरस था।

1– हमारा राजस्थान, पृथ्वीसिंह मेहता, पृ. 265।

2– पूर्व आधुनिक राजस्थान, डॉ. रघुवीरसिंह, पृ. 5-6।

3– जे. एस. ग्रेवाल : मिडिवल इण्डिया, हिस्ट्री एण्ड हिस्टोरियन्स, पृ. 88-101।

उपसंहार

टॉड के लेखन में अनेक कमियों के बावजूद यह स्वीकार करना पड़ेगा कि टॉड राजस्थान का प्रथम आधुनिक इतिहासकार की हैसियत से उच्च स्थान का अधिकारी था। टॉड ने पश्चिमी जगत को राजस्थान और उसके निवासियों से परिचित कराया। उसने राजस्थान के इतिवृत्त के व्यवस्थित अध्ययन की आधारशिला रखी। टॉड का "एनल्स" एकमात्र प्रादेशिक सर्वेक्षण न होकर भारत की प्राचीन परम्पराओं, वंश विश्लेषण, धर्म और समाजशास्त्र के एक चरण का प्रतिनिधि ग्रन्थ भी है। क्रुक ने राजस्थान के इतिहासकार के रूप में टॉड की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि जब कभी भी राजपूतों का एक नया इतिहास लिखने का अवसर आयेगा, वह अवश्य ही मुख्य रूप से टॉड के संग्रह तथा विस्तृत रूप से इतिहास और पुरातत्व सम्बन्धी नये शोध के आधार पर लिखा जायेगा। वास्तव में राजस्थान के इतिहास की आधारशिला रखने में टॉड का योगदान सर्वाधिक है। उसने इतिहास के अनेकों नये क्षितिज तलाशे हैं, अनेकों प्रश्नों के उत्तर दिये हैं एवं कई प्रतिमान स्थापित किये हैं। भावी खोजों एवं नवीन अनुसंधान में अनुरत पीढ़ी के लिए टॉड का यह विशिष्ट कार्य न केवल प्रेरणा का उल्लेखनीय कार्य करेगा अपितु उनका मार्ग प्रशस्त करने में सहयोग देगा।

कानूनगो ने लिखा है कि उसमें हिन्दुस्तान के हैलास ने एक हिरोडोट्स पाया। उससे हमारे बाद के इतिहासकारों ने प्रेरणा ली और उसके अविस्मरणीय ग्रन्थ ने, हमारी जनता की भावनाओं को एक शताब्दी तक उत्तेजित किया। उसका 'एनल्स' अब समयानुकूल नहीं रहा होगा किन्तु वह सदैव ही देशभक्ति व अभिमान के लिए प्रेरणा देता रहेगा।[1]

इसके अतिरिक्त उसने इतिसास लेखन की एक ऐसी सरस प्रणाली का सूत्रपात किया जो केवल घटनाओं और तिथिक्रमों का कंकाल मात्र न रहकर पौराणिक उपाख्यानों पर लोककथाओं, उत्साहवर्धक वीरगाथाओं, मनोरंजक प्रवादों और रोमांचकारी लोकगीतों के विशुद्ध रस प्रवाह से सम्पुष्ट और प्राणवान है। उसके विश्लेषण सबल मानवीय अनुभूतियों पर आधारित हैं जो अन्य बड़े लेखकों में दुर्लभ है।

कर्नल टॉड ने विदेशी लेखकों के इस विचार पर करारी चोट की है कि भारतीयों में इतिहास लेखन की प्रवृत्ति ही नहीं है और न भारतीय साहित्य में कोई इतिहास जैसी वस्तु ही विद्यमान है। टॉड ने बड़ी लगन के साथ यहां के प्राचीन स्थापत्य, स्मारकों अन्य पुरातन वस्तुओं और इतिहास लेखन के स्रोत, प्राचीन ग्रन्थों का सूक्ष्म निरीक्षण करके उनका मूल्यांकन किया और इस पूर्वाग्रह को अमान्य करते हुए यह

1– स्टडीज इन राजपूत हिस्ट्री, पृ. 103।

घोषणा की कि भारत में इतिहास लेखन की ऐसी प्रामाणिक और अत्यधिक मात्रा में सामग्री मौजूद है कि जितनी उन उन्नतशील होने का दम भरने वाले देशों में भी उस काल के ऐतिहासिक साहित्य में उतनी मात्रा में नहीं पाई है। उसने स्पष्ट लिखा है कि "कुछ लोग आंख मीचकर यह मान बैठे हैं कि हिन्दुओं के पास ऐतिहासिक ग्रन्थों जैसी कोई वस्तु नहीं है।[1] मैं फिर कहूंगा कि इस प्रकार के अर्थहीन अनुमान लगाने में प्रवृत्त होने से पहले हमें जैसलमेर और अणहिलवाड़ा (पाटण) के जैन ग्रन्थ भण्डारों और राजपूताना के राजाओं तथा ठिकानेदारों के अनेक निजी संग्रहों का अवलोकन कर लेना चाहिये।

पुरातत्वान्वेषण में श्रम से मुंह चुराकर भारतीय इतिहास के प्रति हीन भावना बनाने वाले को टॉड ने लताड़ते हुए लिखा है कि ऐसी स्थिति में तो हम उस दम्भपूर्ण मिथ्याभिमान के प्रति दयाभाव ही प्रदर्शित कर सकते हैं, जिसने इस विचार को प्रेरणा दी है कि हिन्दुओं के पास कोई ऐतिहासिक लेख नहीं है और जिसके द्वारा इस प्रकार के अन्वेषणों को व्यर्थ का प्रयास स्थापित करके जिज्ञासा की भावना को दबा देने का प्रयत्न मात्र किया गया।[2] टॉड की भारतीय विषयों के अनुसंधान और उसके विवेचन में जो रूचि थी उसके विषय में उसने लिखा है कि यदि स्वास्थ्य लाभ और पर्याप्त अवकाश मुझे मिलता तो जो कुछ मैंने किया है, उससे दसगुना काम करता और यदि विशेष सुविधाएं मिली होती तो उस दसगुने का भी दसगुना कर दिखाता, मेरे इस कथन पर विश्वास कर लेना चाहिये।[3]

1– पश्चिमी भारत की यात्रा, पृ. 156।

2– पश्चिमी भारत की यात्रा, पृ. 248।

3– पश्चिमी भारत की यात्रा, पृ. 256।

दयालदास सिंढायच

डॉ. राजेन्द्रप्रकाश भटनागर
पी.एच.डी. (इतिहास)
पी.एच.डी. (आयुर्वेद)

राजस्थान के इतिहास लेखन में ख्यातों का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिस प्रकार मुस्लिमकाल का इतिहास फारसी तवारिखों पर आधारित है, उसी प्रकार राजस्थान के इतिहास का निर्माण ख्यातों के बिना अधूरा रह जायेगा। जब मुगल बादशाह अकबर ने अपने दरबारी इतिहासकार अबुल फजल को "आईन-ए-अकबरी" बनाने की आज्ञा दी तब ही अपने अधीन सब देशी राज्यों को भी अपने-अपने वंश व राज्य के इतिहास एकत्रित कर लिख भेजने के लिए कहा गया। उस समय राजस्थान के राजाओं ने अपने "राज्य की ख्यातें" तैयार करवायी। इससे 16 वीं शती में ख्यातों का बनना प्रकट होता है। इससे पहले ख्यातें बनी थी या नहीं, इसका कोई निश्चय नहीं होगा। 17 वीं शती से तो ख्यात, वात, वंशावली एवं ऐतिहासिक कार्यों के रूप में राजस्थानी भाषा में लिखा विपुल साहित्य मिलता है। इतिहास के निर्माण में शिलालेख, ताम्रपत्र, रुक्के, पट्टे, परवाने, फरमान, बहियां आदि अभिलेखीय सामग्री की भांति यह सामग्री भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अभिलेखीय सामग्री केवल आंकड़े और सूचनाएं प्रस्तुत करती है, परन्तु उक्त सामग्री उनका राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण व अध्ययन प्रस्तुत करती है जो इतिहास के वैज्ञानिक पक्ष को प्रकट करने में उल्लेखनीय है।

राजस्थानी ख्यातों में मुंहणोत नैणसी की ख्यात प्रथम है। उसी परंपरा में राज्याश्रय और गैर-राज्याश्रय में लिखी अनेक ख्यातें मिलती हैं।

राजस्थानी ख्यातकारों में दयालदास सिंढायच का नाम महत्त्वपूर्ण है। वह ख्यातकारों की परम्पराओं में अन्तिम लेखक था। उसने न केवल बीकानेर राज्य के इतिहास पर अपितु राजस्थान के राठौड़ों के इतिहास का विस्तार से विवेचन किया है।

दयालदास ने अपने जीवन के सम्बन्ध में अपनी कृतियों में कोई प्रकाश नहीं डाला है। उसका जन्म भूतपूर्व बीकानेर राज्य के अन्तर्गत कूबिया नामक ग्राम में सं. 1855 (1798 ई.) में हुआ था और मृत्यु 93 वर्ष की आयु में वैशाख, वि. सं.

1948 (1891 ई.) में हुई थी ।[1] उसका जन्म मारू चारण जाति की भादलिया शाखा की सिंढायच नामक उपशाखा में हुआ था । यही इसके वंश का नाम था । कहते हैं कि नाहड़राव पडिहार ने कई सिंहों को मारने के उपलक्ष्य में नरसिंह भादलिया को "सिंढायक" उपाधि प्रदान की थी, इसका अपभ्रंश सिंढायच है ।[2] दयालदास की बाल्यकाल से ही इतिहास के प्रति विशेष रूचि थी । उसको पढ़ने-लिखने का काफी शौक होने से उसने न केवल बीकानेर राज्य और राठोड़ों के इतिहास का ही ज्ञान प्राप्त किया था अपितु पड़ौस के अन्य राज्यों और मुगलों के इतिहास का भी उसे अच्छा ज्ञान हो गया था ।

अपनी विद्वता और प्रतिभा के कारण वह तत्कालीन बीकानेर नरेश रत्नसिंह का प्रीति-पात्र बन गया था । इस कारण उसे कई राजकीय कार्यों में भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ था । वह बीकानेर राज्य की ओर से उदयपुर और रींवा आदि राज्यों में भी गया था । 1837 ई. में महाराणा रत्नसिंह मथुरा, वृन्दावन, प्रयाग, काशी और गया की यात्रा पर रवाना हुए, उस समय सिंढायच दयालदास भी उसके साथ था । गया में महाराजा ने अपने सरदारों से प्रतिज्ञा कराई कि वे भविष्य में अपनी पुत्रियों को नहीं मारेंगे । लौटते हुए रींवा के राजा विश्वनाथसिंह के आग्रह पर महाराजा रींवा पहुंचे । वहां महाराजा के ज्येष्ठ पुत्र सरदारसिंह का विवाह रींवा की राजकुमारी से सम्पन्न हुआ । इस विवाह का उल्लेख दयालदास की ख्यात में मिलता है ।

1839 ई. में महाराजा पुष्कर होकर नाथद्वारा दर्शनार्थ गये । तब महाराणा सरदारसिंह वहां उससे मिलने आये । महाराणा के आग्रह पर महाराजा उदयपुर आया और यहाँ कुछ दिन रहा । यहां 17 जनवरी 1840 ई. को महाराणा की पुत्री महताब कुंवरी का विवाह बीकानेर के युवराज सरदारसिंह के साथ हुआ । इस समय सिंढायच दयालदास भी महाराजा के साथ था । इस विवाह के उपलक्ष्य में दयालदास को काफी पुरस्कार मिले । इस समय ही महाराजा की पुत्री का विवाह महाराणा के साथ तय हुआ । 1839 ई. में महाराणा सरदारसिंह गया की यात्रा पर रवाना हुआ । उस समय महाराजा की ओर से सिंढायच दयालदास भी महाराणा के साथ गया । गया यात्रा से लौटने के बाद महाराणा बीकानेर गया और 6 अक्टूबर 1840 ई. को बीकानेर की राजकुमारी गुलाब कुंवरी से उसका विवाह हुआ ।[3]

1– स्वतन्त्र भारत में बीकानेर राज्य के विलीनीकरण के पूर्व तक दयालदास के वंशजों (प्रपौत्र अवड़दान आदि) को बीकानेर राज्य की ओर से मोकलेरा, वासी और कूबिया आदि गांव मिले हुए थे ।

2– डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग-2, भूमिका, पृ. 7 ।

3– डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग-2, पृ. 426-428 ।

महाराजा रत्नसिंह ने अनेक अवसरों पर सिंढायच दयालदास का अच्छा सम्मान किया और उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि की। इसके इतिहास के प्रति प्रेम को देखकर महाराजा रत्नसिंह ने दयालदास को बीकानेर के राठौड़ों का एक विस्तृत और स्पष्ट इतिहास लिखने के लिए प्रेरित किया। महाराजा की आज्ञा से वह इस इतिहास लेखन में संलग्न हो गया। उस समय तक कर्नल जेम्स टॉड का "एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान" नामक प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ प्रकाशित होकर सर्वत्र ख्याति प्राप्त कर चुका था। इस ग्रंथ में टॉड ने बीकानेर राजवंश को राजपूताना के राज्यों में द्वितीय श्रेणी में परिगणित किया था।[1] इसी से महाराजा ने चाहा कि बीकानेर राज्य का विस्तार से इतिहास लिखकर टॉड के कथन को असंगत और निराधार प्रमाणित किया जाय। अंग्रेजों के साथ संधि (1817 ई.) होने पर राजपूताने के राजाओं ने अपने वंश के इतिहास की सामग्री एकत्रित कराकर विस्तार से इतिहास लिखवाने की आवश्यकता अनुभव की और राज्याश्रय में इतिहास तैयार करवाये गये। इसी से महाराजा की दृष्टि दयालदास पर गयी। वह हर प्रकार से इसके योग्य था। अतः महाराजा ने उसे बीकानेर राज्य का इतिहास लिखने की आज्ञा दी। इसके लिए उसे राजकीय अभिलेख-संग्रह और राजकीय पुस्तकालय (जिसे अब अनूप संस्कृत पुस्तकालय कहते हैं) की सारी सामग्री सुलभ करायी गयी। दयालदास ने राजकीय संग्रह में उपलब्ध प्रशासनिक बहियों, पट्टे, परवाने, फरमान, पुराने कागज-पत्र आदि[2] एवं पुस्तकालय में संगृहीत पुरानी बातों, ख्यातों, वंशावलियों आदि का समुचित उपयोग करके बड़े परिश्रम के साथ "बीकानेर राज्य की ख्यात" का निर्माण किया, जिसे "दयालदास की ख्यात" कहते हैं। दयालदास ने "बीकानेर रै राठौड़ री ख्यात, महाराजा सुजानसिंह जी सुं महाराज गजसिंह जी तांई" नामक ख्यात के अंश यथावत् अपनी ख्यात में ले लिये हैं।

दयालदास एक योग्य और विद्वान व्यक्ति था। वह इतिहासकार, ख्यातकार, सुकवि और तत्कालीन राजस्थानी (बीकानेरी) भाषा का उच्च कोटि का गद्य लेखक था। उसकी रचनाएं गद्य एवं पद्य दोनों में मिलती हैं। उसका सारा जीवन इतिहास-लेखन और साहित्य-सृजन में व्यतीत हुआ परन्तु उसकी मुख्य प्रसिद्धि उसके द्वारा लिखित "ख्यात" के कारण ही है। उसके द्वारा लिखे गये ग्रंथों में निम्नलिखित मुख्य हैं–

1– बीकानेर रै राठौड़ां री ख्यात।

2– देश दर्पण।

3– बीकानेर रै पट्टारै गांवां री विगत।

1– जेम्स टॉड : एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान, जिल्द-2, पृ. 137।

2– उस समय यह सामग्री बीकानेर के पुराने किले (जूनागढ़) में स्थित "बड़े कारखाने" में संगृहीत थी।

4– आर्याख्यान कल्पद्रुम ।
5– जसरत्नाकर
6– सुजसबावनी
7– पंवारवंश दर्पण ।

दयालदास का लेखन काल बहुत लम्बा है । उसे रत्नसिंह (1828-51 ई.), सरदारसिंह (1851-72 ई.) और डूंगरसिंह [1872-87 ई.] का राज्याश्रय प्राप्त हुआ । इन बीकानेर नरेशों का वह दरबारी कवि और लेखक ही नहीं अपितु विश्वसनीय सलाहकार और कुशल राजनीतिज्ञ भी था । इसी से वह हमेशा कृपापात्र रहा । यहां दयालदास की ऐतिहासिक कृतियों की समीक्षा प्रस्तुत की जा रही है ।

बीकानेर रै राठौड़ां री ख्यात

दयालदास की कृतियों में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है । लेखक के नाम के कारण यह "दयालदास री ख्यात" नाम से अधिक प्रसिद्ध है । यद्यपि इस ग्रंथ की मूल प्रति का अब तक कहीं पता नहीं चला है, फिर भी इसकी कुछ प्रतिलिपियां (हस्तलिखित) मिलती हैं ।

अनूप संस्कृत पुस्तकालय लालगढ़, बीकानेर में उपलब्ध हस्त प्रति (ग्रथांक 10/188) मूल ग्रंथ की प्रतिलिपि ज्ञात होती है। यह प्रति 394 पृष्ठों की विस्तृत रचना है । इसके दो खण्ड हैं और दोनों खण्ड पृथक-पृथक चमड़े की जिल्द में बंधे हैं । प्रथम खण्ड में राठौड़ों की उत्पत्ति से लेकर राव कल्याणमल के शासन काल (1542 से 1574 ई.) के अंत तक का वर्णन है । इस भाग में 201 पृष्ठ हैं । द्वितीय खण्ड में महाराजा रायसिंह के राज्यारोहण से महाराजा रत्नसिंह की मृत्यु एवं महाराजा सरदारसिंह के राज्यारोहण से महाराजा रत्नसिंह की मृत्यु एवं महाराजा सरदारसिंह के राज्यारोहण वि. सं. 1908 (1851 ई.) तक का विवरण मिलता है ।

इस ख्यात पर सर्वप्रथम कर्नल पी. डब्ल्यू पाऊलेट का ध्यान गया था, जिसने "गजेटियर ऑफ दी बीकानेर स्टेट" की रचना की थी । इस गजेटियर का प्रकाशन 1874 ई. में कलकत्ता में हुआ था । गजेटियर का समग्र राजनैतिक वृतांत मुख्यतया दयालदास की ख्यात के आधार पर लिखा गया था । उसने अपने गजेटियर के प्रत्येक अध्याय में इस ख्यात के उद्धरण भी दिये हैं ।[1] इसके बाद इटली निवासी टेसिटोरी ने इस ख्यात की विस्तृत समीक्षा की थी । टेसिटोरी ने राजस्थान की हस्तलिखित ऐतिहासिक कृतियों का विस्तृत सर्वेक्षण करते हुए "ए डिस्क्रिप्टिव केटेलॉग ऑफ बार्डिक

1– पाऊलेट : गजेटियर ऑफ दी बीकानेर स्टेट (बीकानेर बि. सं. 1937) पृ. 11, 111 ।

एण्ड हिस्टोरिकल मेन्यूस्क्रिप्ट्स" नाम से उसका विवरण तैयार किया, जो रॉयल एशियाटिक सोसायटी, बंगाल से चार रिपोर्टों के रूप में क्रमश: 1914, 1915, 1916 और 1917 ई. में प्रकाशित हुआ। इस विवरण के "बार्डिक पोएट्री" के भाग 1 व 2 एवं "प्रोज क्रोनिकल्स" के भाग 1 व 2 प्रकाशित हुए। "प्रोज क्रोनिकल्स" के भाग 1 में "दयालदास री ख्यात" का समीक्षात्मक वर्णन किया गया है। बाद में डॉ. गौरी शंकर हीराचंद ओझा ने दो खण्डों में बीकानेर राज्य का इतिहास (1939-1940 ई.) लिखते समय इस ख्यात का बहुत प्रयोग किया और उसके अनेक संदर्भ दिये। बाद के इतिहास लेखकों द्वारा इसका आधार लिया जाता रहा है। इस ख्यात से ज्ञात होता है कि इसकी रचना महाराजा सरदारसिंह के आदेश से चारण दयालसिंह सिंढायच ने की थी और उसके लिखाने पर चारण बीठू चावड़े ने इसे लिखा था।

संपूर्ण ख्यात का अब तक प्रकाशन नहीं हुआ है। इसका एक अंश (राव बीका से राजा अनूपसिंह तक) डॉ. दशरथ शर्मा ने संपादित कर "शार्दूल रिसर्च इन्स्टीट्यूट" बीकानेर से 1948 ई. में प्रकाशित कराया था। इसका संपादन दो प्रतियों, राजकीय पुस्तकालय एवं राव गोपालसिंह बैद (बीकानेर) के संग्रह की प्रति के आधार पर किया गया था। दोनों में कुछ अंतर है। अनूप संस्कृत पुस्तकालय की हस्तप्रति में उन दोनों से कुछ अलग अंतर पाये जाते हैं। अतः यह प्रतिलिपिकार के प्रमाद का फल कहा जा सकता है। कहीं-कहीं वर्णन-क्रम में भेद मिलता है। डॉ. दशरथ शर्मा ने अपने संपादित-प्रकाशित अंश को ख्यात का द्वितीय भाग लिखा है। इसमें राव बीका के जोधपुर छोड़ने की घटना से लेकर महाराजा अनूपसिंह के राज्यकाय के अंत (वि. सं. 1495-1755) तक का वर्णन है। संभवतः डॉ. शर्मा राव बीका के पूर्व के अंश को प्रथम खण्ड एवं महाराजा अनूपसिंह के बाद वाले अंश दो तृतीय खण्ड के रूप में प्रकाशित कराना चाहते हों। अब यह प्रकाशित ग्रन्थ भी दुष्प्राप्य हो चुका है। वस्तुतः अनूप संस्कृत पुस्तकालय लालगढ़, बीकानेर में उपलब्ध हस्त-प्रति के आधार पर इसका संपादन किया जाकर प्रकाशित करने की नितांत आवश्यकता है।

यद्यपि दयालदास ने अपनी ख्यात की रचना तत्कालीन बीकानेर राज्य की मारवाड़ी भाषा में गद्य शैली में की है, फिर भी उसने प्रचलित और दरबारी फारसी व उर्दू के शब्दों का भी भरपूर प्रयोग किया है। उसने ख्यात में गद्य के साथ प्रचुर प्रमाण में गीत, कवित्त, निसाणी, वचनिका, दूहा आदि काव्य विधाओं का भी उपयोग किया है। प्रत्येक ऐतिहासिक घटना के साथ उसने उससे सम्बन्धित कोई-न-कोई गीत आदि को दिया है। ये गीत या तो उसके स्वयं के ही बनाये हुए हैं अथवा वह पुरानी ही रचनाएं उदधृत करता है। जहां कहीं-कहीं वह रचनाकार के नाम का भी उल्लेख करता है। काव्य रचनाओं का ख्यात लेखन में इतना अधिक प्रयोग अन्य किसी भी ख्यात में देखने को नहीं मिलता। इसी से पाऊलेट ने इसे पुराने गीतों पर आधारित ख्यात बताया है।

यहां ख्यात की कुछ विशेषताओं को लिखना आवश्यक होगा।

ख्यात के प्रारंभ में गणपति और सरस्वती के साथ करणीजी का स्मरण किया गया है। करणीमाता की कृपा से ही बीकानेर में इस राजवंश की स्थापना हुई थी। यह इस राजवंश की कुलदेवी भी है। महाराजा (सरदारसिंह) की आज्ञा से ख्यात-लेखन प्रारंभ करने का उल्लेख है[1] फिर महाराजा का स्तुतिगान है। इसके बाद "सूर्य वंशीरी पीढ़ियां" लिखकर राठौड़ों को सूर्यवंशी बताया है। यह वंशावली आदिनारायण से प्रारंभ होती है। वंशक्रम में 254 वें स्थान पर जयचन्द्र का उल्लेख है, जो कन्नोज का शासक और पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) का समसामयिक था। दयालदास अन्यत्र भी राजस्थान में आये राठौड़ों को जयचंद का वंशज मानता है। इसके बाद राजस्थान के प्रथम राठौड़ शासक राव सीहा का जन्म संवत 1175 दिया है। इस ख्यात में दी गई राव सीहा के जन्म की यह सबसे पुरानी तिथि है। यहीं से राठौड़ों का क्रमबद्ध इतिहास प्रारंभ होता है। राव जोधा का इतिहास पृ. 117 ब से 131 ब तक दिया है। इसके बाद पृ. 131 ब से बीकानेर का वृतांत प्रारंभ होता है।

दयालदास ने उस वंशावली को अविकल दिया है जो महाराजा सूरतसिंह के काल में बनायी गई थी। इसमें महाराजा अनूपसिंह के बाद महाराजा स्वरूपसिंह, सुजानसिंह और जोरावरसिंह के नाम जानबूझ कर छोड़ दिये गये हैं। महाराजा सूरतसिंह के पितामह आनन्दसिंह और पिता गजसिंह के नाम दिये हैं। लेखक इस विवरण से सूरतसिंह के उत्तराधिकार को वैध और न्यायोचित बताना चाहता था। इस प्रकार दयालदास ने ख्यातों में कई ऐतिहासिक तथ्यों को आग्रह पूर्वक तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किये हैं। जिससे इसके ऐतिहासिक महत्त्व में आघात पहुंचता है। कहीं-कहीं वह अतिशयोक्ति भी कह बैठता है। उसने बताया है कि राव बीका के साहसिक अभियानों से वह तीन हजार गांवों का अधिपति बन गया था। बीकानेर राज्य में कभी इतने गांवों की संख्या नहीं रही। यह 1800 से 2000 गांवों से अधिक नहीं पहुंची।

दयालदास ने ख्यात[2] में कहीं बीकानेर की किसी राजकुमारी के मुगलों को ब्याहने का उल्लेख नहीं किया है। सम्भवतः मुगलों के साथ वैवाहिक सम्बन्धों को सामाजिक तौर पर बहुत हेय समझा जाता था। इससे प्रभावित होकर उसने यह तथ्य छुपाये या अनदेखे कर दिये।

1– यद्यपि ख्यात में महाराजा सरदारसिंह (1851-1872 ई.) के आदेश से इसे लिखने का उल्लेख किया है, परन्तु तथ्यों से ज्ञात होता है कि इसकी रचना महाराजा रत्नसिंह के काल में ही हुई थी।

2– ख्यात की विषयवस्तु के विवरण के लिए देखिए– परम्परा, भाग– 28-29, पृ. 1-13। (डॉ. टेसीटोरी का राजस्थानी ग्रन्थ सर्वेक्षण)।

फारसी तवारीखों में राजपूतों के मुगल अभियानों में सक्रिय सहयोग और योगदान को कभी स्पष्टतया उभार कर उजागर नहीं किया गया है। दयालदास ने अपनी ख्यात में विशेषकर बीकानेर के राठौड़ों की औरंगजेब के दक्षिणी अभियानों में सैनिक सेवाओं पर समुचित प्रकाश डाला है। उसने मुगल दरबार में बीकानेर शासकों को प्राप्त सम्मान और प्रतिष्ठा को भी बहुत महत्त्व दिया है और उनका विस्तार से स्पष्ट उल्लेख किया है।

प्रत्येक मुगल मनसबदार को अपनी जागीरी के एवज में दरबार में पेशकशी के रूप में वार्षिक रमक देनी होती थी। दयालदास ने बीकानेर के शासकों द्वारा जो मुगल मनसबदार रहे, पेशकशी की ऐसी रकम देने का ही जिक्र नहीं किया है। अर्थात् दयालदास किसी तरह बीकानेर शासकों के वर्चस्व को कम नहीं होने देना चाहता था एवं इस्ट इण्डिया कम्पनी के सामने यह तथ्य रखना चाहता था कि बीकानेर राज्य ने कभी किसी को वार्षिक कर नहीं दिया।

पूरी ख्यात में राजा का जन्म, राज्यारोहण, उसके शासनकाल की मुख्य-मुख्य घटनाएं, उसकी रानियां, कुंवर, कुंवरियां, उसके विवाह आदि का विवरण दिया गया है।

मुगल बादशाहों द्वारा बीकानेर के राजाओं के नाम भेजे गये फरमानों का राजस्थानी अनुवाद देना दयालदास की ख्यात की एक मुख्य विशेषता है। यद्यपि नैणसी ने ऐसे कुछ उदाहरण दिये हैं परन्तु दयालदास की ख्यात में ये प्रचुर प्रमाण में उपलब्ध हैं। साथ ही अंग्रेजों के साथ किये संधिनामे का भी राजस्थानी में अनुवाद दिया है।

16वीं और 17वीं शती के ऐतिहासिक विवरणों की अपेक्षा उसके द्वारा दिये गये 18वीं शदी के विवरण अधिक महत्त्वपूर्ण, विश्वसनीय और स्पष्ट हैं, क्योंकि उस काल की घटनाओं से उसका सीधा सम्पर्क था अथवा उस समय के वृद्धजन तब मौजूद थे जिनसे वह साक्षात् वृतांत सुन सकता था। 18वीं शती में अनेक ऐतिहासिक रचनाएं भी लिखी गई।

दयालदास ने जो तिथिक्रम दिया है, वह मात्र पुरानी ख्यातों, वंशावलियों, बहियों के आधार पर है। उसने शिलालेख, ताम्रपत्र आदि का उपयोग नहीं किया। इसके साथ ही उसने प्रशासन सम्बन्धी अन्य अभिलेखीय सामग्री का भी समुचित प्रयोग करने के प्रति अपनी अभिरूचि प्रदर्शित नहीं की थी। इससे घटनाक्रम की सही तिथियां देने में असमर्थ रहा है। कहीं-कहीं उसके द्वारा दी गई तिथियां अशुद्ध या गलत पायी जाती हैं।[1] डॉ. ओझा ने शिलालेखों के आधार से ऐसी तिथियों को सुधारने का

1– डॉ. हुकमसिंह भाटी : राजस्थान के ख्यातकार व उनके ग्रन्थों का तिथिक्रम, पृ. 21, 90-95।

प्रयास किया है। फिर भी उसके द्वारा दिया गया विवरण काफी विस्तृत और क्रमबद्ध है, जो अन्य ख्यातों में प्रायः देखने को नहीं मिलता। नैणसी और बांकीदास की ख्यातों के साथ मिलकर उसकी ख्यात राजस्थान के इतिहास की निर्मिति को पूर्णता प्रदान करती है इसमें कोई सन्देह नहीं। उसकी ख्यात में तत्कालीन मारवाड़ एवं बीकानेर राज्य की सामन्त प्रणाली, रेख, पट्टा-प्रणाली, आदि प्रशासनिक व्यवस्था के पहलुओं पर भी विस्तार से समुचित प्रकाश डाला गया है।

देशदर्पण

इसको स्वयं लेखक ने "देशदर्पण-ख्यात" कहा है। इसकी रचना महाराजा सरदारसिंह के काल में वैद मेहता राव जसवन्तसिंह के आदेश से दयालदास ने वि.सं. 1927 (1871 ई.) में की थी। इसमें बीकानेर के राठौड़ों का इतिहास महाराजा रत्नसिंह के काल में 1845 ई. तक दिया है। इसमें राठौड़ों की वंशावली श्रीनारायण से महाराजा डूंगरसिंह तक दी गई है। इसके बाद गद्य में विवरण दिया गया है। इस विवरण में कुछ नये और महत्त्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी मिलती है, जैसे महाराजा रायसिंह को अकबर ने आदेश देकर उसको राजच्युत कर दिया था, बाद में उसने फिर उसे राजा मान लिया था। इस बात की सूचना दयालदास ने इस ग्रन्थ में दी है। देशदर्पण का तात्पर्य है जिसमें देश का इतिहास कांच की तरह नजर आता हो। यह अप्रकाशित है।

बीकानेर रै पट्टा रै गांवां री विगत

यह बीकानेर राज्य के पट्टा-गांवों की सूची है। इसमें राजपूत जाति की खांपों के अनुसार पट्टा गांवों का वर्गीकरण दिया गया है। राठौड़ों की बीकावतों, कांधलोतों, बीदावतों आदि खांपों और उनकी उप शाखाओं का अच्छा विवरण मिलता है। पहले राठौड़ों की जागीरों का, फिर अन्य राजपूतों भाटी, तंवर, परिहार, कछवाहा, पंवार, वाघेला आदि की जागीरों का वृतांत है। ठाकुरों या पट्टायतों के नाम के साथ उसके पट्टे के गाँवों के नाम, पट्टे में होने वाले परिवर्तन, उनकी खांप का इतिहास, गांवों की 'जमा' धरों और जनसंख्या आदि का वर्णन क्रमवार दिया है। इससे राठौड़ों की सामन्त व्यवस्था और प्रशासनिक व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। पट्टे के गांवों के अतिरिक्त पुण्यार्थ (धर्म, शिक्षा, पूजा आदि से सम्बन्धित व्यक्तियों, चारण, भाटों आदि को), "सांसण" नाम से दिये गये गांवों की सूची भी दी है। फिर राज दरबार में सामन्तों के बैठने की स्थिति को दर्शाया गया है।

आर्याख्यान कल्पद्रुम

इस कृति की रचना महाराजा डूंगरसिंह के आदेश से संवत् 1934 में दयालदास ने की थी। महाराज डूंगरसिंह दयालदास की ख्यात और देशदर्पण से सन्तुष्ट नहीं हुए

थे। उन्होंने उसे सारे भारतवर्ष का राजस्थानी में इतिहास लिखने का आदेश दिया। इसमें प्रारम्भ से संवत् 1927 तक का इतिहास लिखा गया है। यह देशदर्पण के अनुरूप राठौड़ों का संक्षिप्त इतिहास है।

जसरत्नाकर

महाराजा रत्नसिंह के भाई लक्ष्मणसिंह के आदेश से इस ग्रन्थ की रचना की गई थी। यह अपूर्ण है। इसमें बीकानेर के शासकों का इतिहास दिया है।

सुजस बावनी

53 पद्यों की इस कृति में राजा लक्ष्मणसिंह का यशोगान किया गया है।

पंवार वंशदर्पण

यह 25 दोहे-कवित्तों में लिखी लघु कृति है। इसकी हस्त प्रति भांडारकर प्राच्य अनुसंधान संस्थान पूना में मिली थी, जिसके आधार पर डॉ. दशरथ शर्मा ने इसका सम्पादन कर शार्दुल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर से इसको प्रकाशित करवाया था। इसमें पंवारों (परमारों) की वंशावली दी है। बीकानेर के तत्कालीन पंवार सामन्तों पर और उनकी जागीरी के सम्बन्ध में इससे अच्छा परिचय मिलता है।

सिंढायच की अन्य काव्य और साहित्य सम्बन्धी रचनाएं भी मिलती हैं। परन्तु उसकी सब रचनाओं में उसका "ख्यातकार" का रूप विशेष मुखर हुआ है। 19वीं शती का वह अन्तिम पारंपरिक ख्यातकार था।[1]

1– दयालदास की कृतियों के विस्तृत विवेचन हेतु देखें–ख्यातकार दयालदास सिंढायच, डॉ. घनश्याम देवड़ा, परम्परा (सं. डॉ. नारायणसिंह भाटी), भाग 74-75। राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी से प्रकाशित 1985।

सूर्यमल्ल मीसण

स्व. डॉ. हरिसिंह राठौड़
शोध सहायक
राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर

इतिहास अतीत है तो साहित्य समाज की अनुभूति है, अतः अतीत् की अनुभूति ही साहित्य का इतिहास कहलाता है, इतिहास अतीत् का दर्पण, वर्तमान की कुंजी और मंगल भविष्य के लिए निर्देश है। कोई राष्ट्र इतिहास लिखने की ओर कब और कैसे अग्रसर होता है ? इसके सन्दर्भ में रूसी लेखक वैलेस्कि का कथन है कि "कोई राष्ट्र इतिहास लेखन की ओर तब प्रवृत होता है, जब वह इतिहास निर्माण में सक्रिय होता है।" इतिहास में एक वे पुरूष होते हैं जो इतिहास को बनाते हैं और दूसरे पुरूष वे होते हैं, जो इन इतिहास निर्माताओं एवं युग पुरूषों को इतिहास में चित्रित करते हैं, वे इतिहासकार या इतिहास लेखक होते हैं, एवं विद्वान होते हैं जो बौद्धिक प्रक्रिया से घटनाओं का कारण जानते हैं, परिणामों को परख करके इतिहास को लिखते हैं, तथा इतिहास की सामग्री को बटोर कर इतिहास का लेखन करते हैं, वे इतिहास वेत्ता या इतिहासकार कहलाते हैं।

राजस्थान के सूर्यमल्ल मीसण भी इसी कोटि में एक इतिहासकार माने जाते है। उनका युग सन् 1815 से लेकर सन् 1865 तक माना जाता है, वे मीसण शाखा के षड़भाषाविद् थे, चारणों की 120 शाखाओं में एक मीसण जाति की शाखा होती है, जबकि विद्वानों ने उसे 'मिश्रण' माना है[1] अतः मिश्रण चारणों में कोई जाति नहीं होती है, चारण स्वयं मीसण शब्द का प्रयोग कर मीसण शाखा पुकारते हैं। इस प्रकार सूर्यमल्ल मीसण थे न कि मिश्रण। उनका जन्म संवत् 1872 में कार्तिक कृष्णा 1 को बूंदी नगर में हुआ था।[2] उनके दादा बदनदान जी हरणा गांव के मूल निवासी थे। उनकी माता का नाम भावन बाई और पिता का नाम चण्डीदान था, चण्डीदान बूंदी दरबार के प्रधान कवियों में से थे। सूर्यमल्ल ने अपने जीवन काल में छः विवाह किये थे, प्रथम विवाह में बूंदी के महाराव राजा रामसिंह भी आये थे, वे बचपन से ही

1– वीर सतसई, डॉ. कन्हैयालाल सहल, भूमिका दृष्टव्य।

2– महाकवि सूर्यमल्ल मीसण : 'व्यक्तित्व और कृतित्व' टंकित डॉ. हरिसिंह राठौड़ पृष्ठ 12।

विरोधी स्वभाव के थे, मगर कुशाग्र बुद्धि के थे, स्मरण शक्ति उनकी तेज थी, बचपन से ही इतिहास और कविता के प्रति विशेषानुराग था, कहा जाता है कि पांच वर्ष की अवस्था में जब इनको पाठशाला भेजा गया तो पहले दिन ही लिखने-पढ़ने का ज्ञान सीख गये थे, तीन दिन में ही अमरकोश के तीनों काण्ड कण्ठस्थ कर अर्थ सहित सुना दिये थे, सात वर्ष की अवस्था में ही डिंगल गीत लिखकर अपने पिता को सुना दिया था। दस वर्ष की अवस्था में ही 'राम रंजाट' ग्रन्थ की रचना कर दी थी, उनका भाषा ज्ञान काफी बढ़ा-चढ़ा था। उन्होंने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, डिंगल-पिंगल आदि अनेक भाषाओं का ज्ञान अर्जित किया था। दर्शन का उन पर विशेष प्रभाव था, मनोवैज्ञानिकता की भाव-भूमि पर वे बड़े दार्शनिक भी थे, उनका अन्तिम जीवन बड़े कष्टों में व्यतीत हुआ था। वैसे उन्हें साधनों की सुविधा थी परन्तु वे सदा उदास रहते थे, क्योंकि उनकी कोई सन्तान नहीं थी, ब्रिटिश सत्ता से उनका दम घुट रहा था, और उनकी अपने आश्रयदाता से अनबन हो गयी थी, वे अपने आत्म-गौरव और आत्म-सम्मान की रक्षा करना चाहते थे, इसलिए उनके जीवन के अन्तिम दिन बड़े संकट से निकले। अतः वे अपनी पुरानी स्मृति को भावनाओं का रूप देकर संगीत की तान में खो जाया करते थे, रात-दिन वे शराब के नशे में निमग्न रहते थे, और शराब ने उन्हें रोगग्रस्त बना दिया था, धीरे-धीरे उनका शरीर पतला पड़ता गया और वे मौत के शिकार हो गये। इस प्रकार इनकी मृत्यु बूंदी में आषाढ़ वदी 11 संवत् 1925 को हो गई। जब इनका स्वर्गवास हुआ तब राजस्थान और मालवा के समस्त जन-वासी तथा राजे-महाराजे शोक संतप्त हो गये, अनेक मित्रों ने उन पर कविताएं लिखकर उन्हें अपने हृदय से श्रद्धांजलि दी थी। उनके समकालीन मधुसूदन, टैगोर, माईकल, रामनाथ कविया आदि माने जाते हैं। वे वाग्देवी के परम भक्त थे, यह उनका जीवन व्यक्तित्व था, ठीक उसी तरह उनका कृतित्व भी बड़ा निराला था, उन्होंने अपने जीवन काल में केवल चार ग्रन्थों की रचना की थी, जो प्रमाणित माने जाते हैं, जिनमें 'वंश-भास्कर' एक इतिहास ग्रन्थ है, 'रामरंजाट' लोक संस्कृति का दर्पण है, और 'बलवन्त-विलास' इतिहास और उनकी प्रतिभा की निशानी है तो 'वीर सतसई' स्वाधीनता संग्राम कालीन युग की गरिमा है, जिसमें देश युगीन वातावरण का चित्रण है। इसके अलावा उन्होंने अनेक डिंगल गीत और पत्र साहित्य भी लिखे थे, स्वाधीनता के लिए राजस्थान के राजे-महाराजे, ठाकुर, कुंवर, भंवर और शैल भंवरों तक को उन्होंने व्यक्तिगत पत्र लिखकर अंग्रेजी कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का डटकर विरोध किया था। जैसा कि डॉ. रामधारीसिंह 'दिनकर' का कथन है "सूर्यमल्लजी की महिमा यह है कि वे बड़े भारी राष्ट्रीय कवि थे, सन् 57 के स्वाधीनता के समय राजाओं और राज-पुरूषों को उन्होंने जो ढेर पत्र लिखे, उनसे स्पष्ट विदित होता है कि उनकी छाती में देश के लिए दर्द था, आजादी के लिए तड़प थी, और वे चाहते थे कि सभी राजे-मिलकर अंग्रेजों को देश से खदेड़ दे। राष्ट्रीयता की दृष्टि से वे उन्नीसवीं सदी के बेजोड़ कवि थे, और उन सभी कवियों से आगे थे, जो उनके समय में कविताएं लिख रहे थे।" "इला न देणी आपणी" वाला दोहा कहावत की भांति सम्पूर्ण

राजस्थान के घर-घर में गुंजायमान हुआ था। एक गरीब की झोंपड़ी से लेकर राजमहलों तक इस दोहे ने जननी जन्मभूमि की रक्षा के लिए महान् संदेश दिया, जो उनके कृतित्व के रूप में आज भी हमें प्रेरणा देता है।

इतिहासकारों में सूर्यमल्ल मीसण के विषय में दो प्रकार की अवधारणाएं प्रचलित हैं। चारण लोग विशेषकर उन्हें 'शपथपूर्वक' 'सत्यवक्ता' इतिहासवेत्ता मानते हैं कि सूर्यमल्ल जैसा इतिहासकार अद्यावधि नहीं हुआ और अब होना भी कठिन है।[1] दूसरी तरफ उन इतिहासकारों की मान्यता है कि वह कवि और अच्छा विद्वान था, इतिहासकार नहीं ? जैसा कि डॉ. ओझा का कथन है कि "वंश भास्कर कार ने उस समय तक इतिहास लिखने में विशेष खोज की हो, ऐसा पाया नहीं जाता, कवि का लक्ष्य कविता की ओर ही रहा है, प्राचीन इतिहास की शुद्धि की ओर नहीं।[2] इन दोनों अवधारणाओं में पुरानी और नई पीढ़ियों के साथ ही नये और पुराने दृष्टिकोणों का अन्तर है, जहां पौराणिक मान्यताएं, धार्मिक विश्वास, अन्ध धारणाएँ की अधिकता थी, यह सब होना भी चाहिये था या नहीं, इतिहासकार का क्या कर्त्तव्य होना चाहिए अथवा इतिहास के प्रति उन्होंने सच्चाई रखी या नहीं ? यह तथ्य विशेष महत्त्व के नहीं है। डॉ. ओझा जी ने इतिहासकार सूर्यमल्ल मीसण की ऐतिहासिक लेखन कला को भ्रान्तिमूलक माना है, किन्तु आज कितने इतिहासकार हैं जो डॉ. ओझाजी के इतिहास-लेखन से सन्तुष्ट हैं। उन दोनों के बीच में और हमारे और ओझाजी के बीच में कितनी ही नवीन मान्यताएं बदल गई हैं, यदि हम इतिहास लेखन की इस काल-सापेक्ष मान्यता को अपनी दृष्टि से हटा देंगे तो कभी भी और किसी भी इतिहासकार का सही मूल्यांकन नहीं कर सकेंगे।

अतः जहां तक तथ्य-कथ्य और सत्य प्रतिपादन का प्रश्न है, वहां सूर्यमल्ल पर हम असंगत दृष्टिकोण नहीं अपना सकते। इसके लिए प्रमाण प्रत्यक्ष है कि उन्होंने निष्पक्ष भाव से अपने महाराव राजा रामसिंह हाड़ा के राजवंश का दोष प्रकट किया है, यहां तक कि उन्होंने सत्य निष्ठा का पक्ष लेकर अपने आश्रयदाता को ठुकराया और अंग्रेजों से लोहा लिया तथा वंश-भास्कर अपूर्ण ही रह गया। अतः वे स्तुतिकार इतिहासवेत्ता नहीं थे. यह अलग बात है कि इतिहास को अपने काव्य की विषयवस्तु बनाने में उनका दृष्टिकोण परंपरागत है। सूर्यमल्ल विद्वान ही नहीं, बहुश्रुत भी थे, इसलिए उन्होंने अनेक चारण-साहित्य के स्रोतों से इतिहास के तथ्यों को लेकर वंश-भास्कर में एक स्थान पर संवार कर रखा है, जो इतिहास प्रेमियों के लिए उपयोगी है। इस प्रकार वे अपने युग की इतिहास लेखन परम्परा की दृष्टि से यथार्थ में इतिहासकार थे, जिन्होंने पूर्णतः सत्यता का पालन अपने वंश भास्कर इतिहास ग्रन्थ में किया है, जहां तक विशुद्ध

1– वंश-भास्कर प्रथम खण्ड : कृष्णसिंह बारहठ, पूर्व पीठिका।

2– राजपूताने का इतिहास, दूसरी जिल्द : डॉ. ओझा पृ. 558।

इतिहास और वैज्ञानिकता की कमी का प्रश्न है, वहां तो यह कहा जा सकता है कि यह कमी सूर्यमल्ल की कमी न होकर उनके युग की इतिहास-लेखन कला की कमी है।

वंश-भास्कर में सूर्यमल्ल मीसरण का उद्देश्य इतिहास की ओर रहा है। वह क्रमानुसार ऐतिहासिक वृतान्तों को प्रस्तुत करता है. तथ्य, प्रतिपादन, घटना-लेख, तत्सम्बन्धी विवरण, वस्तु विधान आदि निर्देश उनके इस ग्रंथ में मौजूद हैं। उनकी लेखन कला विशिष्ट रही है, जिसमें युद्ध वर्णनों में काव्यत्व का अवसर मिला है, इस प्रकार वे तथ्यों में इतिहासवेत्ता और वर्णनों में कवि हैं, इस मान्यता का आधार वंश-भास्कर की वह व्यापक इतिहास की सम्पत्ति है, किसकी कड़ियां सम्पूर्ण भारतीय इतिहास की घटनाओं के साथ जुड़ी हुई हैं, तिथि और संवतों में वे आगे-पीछे जरूर हैं, किन्तु इतिहास की जानकारी देने में वे किसी इतिहासकार से पीछे नहीं हैं, उसकी तो उन्होंने बहुत कुछ विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की है जो वंश-भास्कर में दृष्टव्य है।

'वंश-भास्कर' में सूर्यमल्ल इतिहासकार ने अग्विवंश राजवंशों की उत्पत्ति, चौहान का उत्पत्तिकाल और अन्य विवरण तथा तीन अग्निवंशी राजघरानों का संक्षिप्त वंश वर्णन मुख्यतः बड़वाभाटों की पौथियों तथा ग्रंथों और नाटकों आदि के आधार पर लिखा है, चालुक्य वंश वर्णन में उनके गुजरात में शासनकाल तक का सारा ही विवरण तथा वंशावली सर्वथा इतिहासकार के लिए बड़ी उपयोगी है।

गुजरात में चालुक्य राज-घराने की समाप्ति के बाद उनके राजवंश राजस्थान और मालवा में कैसे फैले, तथा वे कहां-कहां जाकर बसे और उनके वंशजों का क्या हुआ, आदि उपयोगी वृतांत वंश-भास्कर में अंकित है, जो स्थानीय इतिहास के लिए बड़ा लाभप्रद है, परमार वंश-वर्णन में दी गई उनकी पीढ़ियों तथा उनकी विभिन्न शाखाओं का उल्लेख भी हुआ है, ग्वालियर राज्य के पूर्व मराठा राज-घराने का आदि पुरूष मन्ड़ोर के प्रतिहार राणा हमीर का छोटा भाई दीपसिंह था, उसका भी विवरण दिया है। उन्होंने पृथ्वीराज रासो ग्रन्थ को कपोल कल्पित माना है, हाड़ा राज-घराने का विस्तार, संघर्षों, उतार चढावों आदि का विवरण देकर उन प्रारम्भिक वर्षों में मेवाड़ से वह किस तरह शक्तिशाली था, तथा मेवाड़ के साथ हाड़ों का क्या सम्बन्ध रहा था उसका भी वृतान्त उन्होंने दिया है।

प्रसंगानुसार उन सभी सन्दर्भों में इन सब के सम्बन्धों और घटनाओं का विवरण अन्य पडौसी राजपूत या मुसलमान राज्यों के परिवेश में दिया है। तीसरी शताब्दियों से चल रहे सम्बन्धों, राजनैतिक महत्व और प्रभाव आदि के परिप्रेक्ष्य में सूर्यमल्ल ने दिल्ली में स्थित साम्राज्य का आवश्यक वृतान्त लिखा हैं, वह प्रमाणित कहा जा सकता है। अतः भारत की महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट घटनाओं का भी उल्लेख उन्होंने वंश-भास्कर में किया है, जिसमें कोई हमें भ्रान्ति नहीं हो सकती है। ये सब इतिहासकार के लिए सही और प्रमाणित है।

'वंश-भास्कर' में मार्मिक स्थलों की पहचान सूर्यमल्ल ने की है, जो इतिहास की सामग्री के आधार पर सत्यता का गुण प्रकट करती है। उदाहरण के लिए विदेशी जातियों का भारत में आना और उनका संघर्ष जिन-जिन जातियों से हुआ, उसका सही विवरण इतिहासकार सूर्यमल्ल ने दिया है, इसी तरह प्रत्येक राजवंश का विस्तार, उनके संघर्ष-सम्बन्धों और प्रसंगानुसार दिल्ली के सुल्तानों से जो युद्ध हुआ, उन सबका सही हाल उन्होंने दिया है, तथा चौहान वंश के परिवेश में अन्य राजवंशों के इतिहास को विशुद्ध रूप देकर वंश भास्कर को एक इतिहास का प्रतीक ग्रंथ बना दिया है।

दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन का दक्षिण को विजय करना,[1] गयासुद्दीन का दिल्ली के तख्त पर बैठना,[2] मल्लीनाथ के पुत्र जगमाल का अपने काका वीरमदेव से रवेड़ लेना,[3] महाराणा लाखा का कृत्रिम बूंदी को नष्ट करना,[4] वीरमदेव राटौड़ का जोइगा यवनों के हाथों मारा जाना,[5] राठौड़ चूंडा का हम्मीर पडिहार से मंडोर का राज्य लेना,[6] मंडोर के राठौड़ रणमल्ल और उसके भतीजे नरबद में युद्ध होकर नरबद का अंधा होकर भागना और रणमल्ल का अपने बड़े भाई शत्रुशाल को मारकर मंडोर, लेना,[7] बरसिंह का दहिया और तोमरों से युद्ध होना,[8] फीरोज शाह के मरे पीछे दिल्ली पर चार बादशाहों का तख्त पर बैठना,[9] चित्तौड़ के राणा लाखा के बड़े पुत्र चूंडा का राज्य छोड़ना,[10] राव रिडमल्ल का मारा जाना और जोधा का राजा होना,[11] मंडोर के राव राठौड़ जोधा के पुत्रों का जांगलू में जाना,[12] जोधपुर बसाना,[13] कोटड़ा के राठौड़ बाघा का राजा मालदेव से विरूद्ध होकर भारमली दासी को पासवान करना और बाघा का मरना,[14] मांडू और गुजरात के बादशाहों का महाराणा सांगा से चित्तौड़ में युद्ध करना तथा बादशाह को कैद करना,[15] डूंगरपुर से बांसवाड़े राज्य का अलग होना,[16] दिल्ली के बादशाह बाबर का मरना और हुमांयू का पाट बैठकर शत्रु पर चढ़ाई करना,[17] चित्तौड़ और बूंदी में वैर बढ़ने का कारण और सूर्यमल्ल को मारने के अर्थ महाराणा रत्नसिंह का जनाना सहित बूंदी जाना,[18] धोलपुर के समीप दारा और औरंगजेब का मुराद से युद्ध होना,[19] शत्रुशाल के बनाये हुए स्थानों की गणना और उनके जनम मरण के संवत,[20] औरंगजेब और मुराद का आगरे में आकर शाहजहां को कैद करना,[21] राठौड़ दुर्गादास की वीरता और रघुनाथ भाटी का मारा जाना,[22] हाड़ा समरसिंह का भीलों को विजय करके पुत्रों को भूमि देना और कोटा नगर को बसाना,[23] अलाउद्दीन का चित्तौड़ को घेरना और उस संवत् में भ्रम होना,[24] शेरगढ़ के डोडिया हरराज का बूंदी की गणगोर को ले जाना,[25] आदि मार्मिक स्थलों को काव्य-मय इतिहास का रूप देकर सूर्यमल्ल ने वंश-भास्कर को इतिहास निर्माण के लिए

1 से 25 तक – वंश-भास्कर, कृष्णसिंह बारहठ पृ. 1742, 1744, 1766, 1769, 1838, 1841, 1844, 1854, 1857, 1861, 1866, 1915, 2099, 2120, 2122, 2123, 2125, 2127 से 2192।

साधन बना दिया है जो राजस्थान के विभिन्न ऐतिहासिक लेखों और बड़वा भाटों की बहियों के विभिन्न तथ्यों पर आधारित है।

सूर्यमल्ल ने इनके विषय में स्वयं लिखा है कि "उन्हें जहां-जहां पूर्ण निश्चित हुआ, वहां-वहां संवत् लिख दिये हैं, शेष वृतान्त पूर्वों का अनुसंधान न होने से जहां याद आया वहां वैसा 'लिख दिया है, जहां-जहां जैसा संभव होवे वैसा वहां जान लेना है। अतः इस कथन के आधार पर हम कह सकते हैं कि इतिहासकार सूर्यमल्ल मीसरण ने इतिहास के प्रति पैनी दृष्टि थी, जिन्होंने एक शोध प्रज्ञ की भांति फुटनोट देकर वंश-भास्कर जैसे विशाल ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना की है, जो विशुद्ध इतिहास का प्रतिपादन करता है तथा एक अनुसन्धानकर्ता के लिए भी प्रेरणा का विषय है।

इतिहासकार सूर्यमल्ल मीसण कृत वंश-भास्कर में वर्णित इतिहास की रूप रेखा विस्तृत और व्यापक रही है, इसमें सन्देह नहीं कि चौहान वंश और उसमें भी बूंदी के हाड़ा वंश का इतिहास लिखना वंश-भास्कर का लक्ष्य है, फिर भी इसके ऐतिहासिक कलेवर में राजस्थान का ही नहीं, अपितु समस्त भारत वर्ष के इतिहास को भी एक विस्तृत रूप दिया है, इसमें इतिहास एक क्रमानुसार चलता है, बूंदी के किसी रावराजा का वर्णन चल रहा है, उसके साथ ही जो अन्य महत्त्वपूर्ण समसामयिक राजा, बादशाह हैं, उनका इतिहास भी वर्णित होता हुआ दृष्टिगत होता है, एक के बाद फिर बूंदी नरेश का वर्णन आता है और फिर यही क्रम आगे जारी रहता है, यह विशेषता सिर्फ इतिहासकार सूर्यमल्ल मीसण में ही दिखाई देती है और किसी में नहीं।

पाटली पुत्र के राजा महानन्द के पुत्र घनानन्द को चाणक्य की सहायता से मारकर चन्द्रगुप्त मौर्य के राजा बनने की कथा भी दी है उन्हीं के साथ चौहान वंश वर्णन भी चलता रहता है, और उसी के अन्तर्गत कर्नाटक, नाग, शालिवाहन तथा अन्त में प्रतिष्ठानपुर में शातकर्णी सातवाहन राजाओं का वृतान्त भी मौजूद है, इसी के अन्त में यूनानी विश्वविजेता सम्राट सिकन्दर के भारत आक्रमण का वर्णन और पुनः चौहान वंशानुक्रम में यथास्थान राजस्थान के प्रसिद्ध सर्व पूजनीय लोकदेवता गोगादेव चौहान और उसके युद्धों का भी वर्णन दृष्टिगत है, जिसमें गोगा चौहान की बीरता, राष्ट्रीय प्रेम और जन्मभूमि के प्रति अनुराग, का चित्रण सूर्यमल्ल ने किया है, इसी परिवेश में सुर्जन- अर्जुन गौड़ों द्वारा ईरान के बादशाह अबूफर को भारत पर आक्रमण करने का बुलावा देने पर अबूफर का भारत पर आक्रमण करने व गोगाजी का देश के अन्य क्षत्रिय राजाओं के साथ उसका सामना कर उसे रण-भूमि में धराशायी कर विजय प्राप्त करने का बहुत रोचक विवरण दिया गया है।

देश व धर्म की रक्षार्थ अनेकानेक पीढ़ियों तक निरन्तर अरबों और ईरानियों से लोहा लेने वाले चौहान क्षत्रियों का वृतान्त देते समय सूर्यमल्ल भावुक जरुर हो जाता है

मगर इतिहास की सच्चाई को नहीं छोड़ता है, तत्कालीन भारतवर्ष की राजधानी अजमेर को बसाने वाले महाराज अजयपाल का अरबों से लोहा लेने का हाल भी बड़ा रोचक है, चौहान शाखा के विभिन्न राजाओं द्वारा पौण्डू, कर्नाटक, साम्भर, चन्द्रावती, जालोर, पाटलीपुत्र, सिरोही, रणथम्भौर, नाडोल, मैनपुरी, आमेर आदि बसाने का विवरण दिया गया है, इसी प्रकार पंजाब, सिन्ध, गुजरात, कन्नौज, उज्जैन, अहिलपट्टन व बेगु का भी सविस्तार विवरण दिया गया है, अतः सूर्यमल्ल ने दिल्ली के चौहान राजवंश के साथ ही हाड़ा चौहान् के आदि पुरुष अग्निपाल से लेकर देवसिंह अर्थात् देवाहाड़ा तक की भी पीढ़ियों का सविस्तार वर्तान्त दियां है । ये समस्त सामग्री उन्होंने भोज-चरित्र से उद्‌धृत की है ।[1]

कांगड़ा के राजा अल्हन व लाहोर के राजा केदार का आपसी झगड़ा व यूनान के सिकन्दर की भारत पर चढ़ाई का वर्णन और उस समय माणिक्य-राज चौहान का अन्य राजाओं के साथ सिकन्दर से युद्ध का वर्णन अपने इतिहास 'वंश भास्कर' में अंकित है, उज्जैन के महाराजा भरथरी का राजपाट छोड़कर सन्यास लेने तथा उनकी बहिन के पुत्र गोपीचंद का अंगदेश का राज्य छोड़कर गुरु गोरखनाथ का चेला हो जाने का बृतान्त भी वंश-प्रकाशक काव्य में चित्रांकित है । अनहिलपटन पर विसल देव और अन्तल देव द्वारा आक्रमणों का तथा कुमार पाल का अजमेर पर आक्रमण का सविस्तार भी उद्‌घाटित है ।

पृथ्वीराज चौहान का महौवा का युद्ध उसमें अल्हाऊदल का विवरण तथा कन्नौज के राजा जयचन्द राठौड़ की पुत्री संयोगिता के स्वयंवर का विवरण भी दिया गया है, पृथ्वीराज चौहान तथा मोहम्मद गौरी के कई युद्ध स्थलों का वर्णन भी कम रोचक नहीं है। तराईन के युद्ध में पृथ्वीराज चौहान की पूर्ण पराजय तथा अजमेर पर भी मुसलमानी आधिपत्य हो जाने के परिणाम स्वरूप उत्तरी भारत के इस प्रबल चौहान साम्राज्य का अन्त हो गया तब चौहानों को भीलों, मीणों आदि से युद्ध करना पड़ा था, उसका भी वृतान्त वंश भास्कारकार ने दिया है ।

सन् 1301 ई. में रणथम्भोर और सन् 1303 ई. में चित्तौड़ के पतन के साथ ही दिल्ली-अजमेर के प्रतापी चौहान राज्य तथा मेवाड़ के प्राचीन रावल घराने की परंपराओं का भी अन्त हो गया था, तथा 13 वीं शताब्दी में हाड़ा और सोलंकी इधर उधर किस तरह भटकने लगे उसका भी हाल सत्यनिष्ठा के रूप में मौजूद है । सन् 1326 ई. में सिसोदिया राणा हमीर ने चित्तौड़पर अधिकार कर मेवाड़ राज्य की पुनः स्थापना किस प्रकार की उसका भी वर्णन कवि ने काव्य-मय रोचकता में किया है, उस समय राजस्थान में नये नये राजघरानों का उदय और नये राज्यों की स्थापना आदि का क्रमानुसार बड़ी

1– वंश-भास्कर कृष्ण सिंह बारहठ, पृ., 205-2057

महत्वपूर्ण घटनाएँ वंश भास्करकार ने दी है। सन् 1341 ई. के आसपास देवा हाड़ा का बूंदी पर अधिकार कर उसकी स्थापना करना आदि का वर्णन इतिहासकार सूर्यमल्ल मीसण ने दिया है, जो बूंदी राज्य के इतिहास के लिए बड़ा उपयोगी है।

सूर्यमल्ल मीसण ने 'वंश-भास्कर' में बूंदी राज्य की स्थापना से लेकर राव नारायणदास हाड़ा की मृत्यु तक का वर्णन किया है, दिल्ली के प्रथम सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक और अन्य राजाओं के हाल का विवरण देकर अनिरुद्ध चरित्र तक दास वंश के सुल्तानों का भी वर्णन किया है। इसी तरह खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैयद वंश, अफगान वंश और मुगल वंश का वर्णन भी अन्य राजाओं के परिवेश में किया है, जो मध्य कालीन इतिहास निर्माण में बड़े महत्त्व की सामग्री है, सन् 1527 ई, में बाबर और राणा सांगा और जोधपुर के राव गांगा ने सांगा की किस तरह सहायता की थी, पराजित होकर बाबर हताश् किस तरह हुआ फिर बूंदी नगर को किस तरह लूटा आदि का वर्णन इतिहास सापेक्ष है, अतः इतिहासकार सूर्यमल्ल मीसण ने बूंदी राज्य के मध्य कालीन इतिहास को बड़े अनूठे ढंग से अंकित किया है, जिस में राव सुर्जन हाड़ा के जीवन की घटनाएँ, उनके कार्य और वीरता सम्बन्धी अनेक वृतान्त को नाना रूपों में अभिव्यक्त किया है, उन्होंने राजस्थान के राजपूत राजाओं के प्रति जो नीति अपनाई, उसमें मुगल-राजपूत सम्बन्धों में एक नया दौर आया, अकबर ने स्वयं राजपूत कन्याओं के साथ विवाह किये और अकबर द्वारा बनाया गया साम्राज्य तथा सन्धियों आदि का उल्लेख भी वंश-भास्कर में द्रष्टव्य है।

राणा प्रताप और उसके साथी हिन्दू धर्म के कैसे कट्टर बने, तथा चन्द्रसेन ने नागौर का दरबार किस तरह ठुकराया और अकबर से लोहा लिया, शिवाजी के राज्यारोहण के समय उसके क्षत्रि-वंशीय होने के प्रमाण सूर्य मल्ल ने मेवाड़ के सिसोदिया वंश के सन्दर्भ में बताया है औरंगजेब की धार्मिक नीति और उसके द्वारा किये गये अत्याचार आदि को इतिहासकार मीसण नहीं भूला है, गुजरात विजय के बाद राजा भगवान दास कछवाह और उनके पुत्र मानसिंह के मेवाड़ के राणा उदयसिंह के पास चित्तौड़ जाने तथा वहाँ उन दोनों के साथ बैठकर राणा के भोजन नहीं करने से उनकी घटना को मीसण ने विवरण के रूप में दिया है, राठौड़ राव नागौर पति अमरसिंह के शाही दरबार में कटार चलाने पर उसके मारे जाने और उसी प्रसंग में उनके मित्र बल्लू जी चांपावत के युद्ध में काम आने की घटनाओं को भी निराला रूप दिया है।

शाहजहाँ के पुत्रों का विद्रोह, जोधपुर के महाराजा जसवन्त सिंह, दुर्गादास व शत्रुशाल के नेतृत्व में उज्जैन के संघर्ष का वर्णन, मेवाड़ के राजा अमरसिंह के छोटे भाई भीमसिंह ने शाहजहाँ को शरण दी, शाहजहाँ का उदयपुर जाना, जहाँ उसे राणा कर्णसिंह ने कई महीने तक अपने पास रखा, उत्तर भारत पर चढ़ाई की योजना बनाई और बुराहानपुर को सेना से घेरा, उस युद्ध में बूंदी के राव रतन

हाड़ा ने विजय ही नहीं प्राप्त की बल्कि शाहजहाँ और उसके बख्शी मुहम्मद तक को भी कैद कर लिया था, मुगल साम्राज्य के साथ निकट सम्बन्ध रखने वाले तथा उसको पूर्ण सहयोग देने वाले राजपूत नरेशों के विरुद्ध भी राजपूत शासक-वर्ग और हिन्दू जन-साधारण में क्या प्रतिक्रिया होने लगी थी तथा अटक नदी को पार करने में उन्हें क्या प्रतिक्रिया होने लगी थी, उसका वर्णन भी सूर्यमल्ल ने किया है, शत्रुशाल हाड़ा के साथ अटक पार नहीं जाने वाले राजपूत नरेशों में मिर्जा जयसिंह आमेर का नाम भी उल्लेखनीय है, नादिर शाह ने दिल्ली पर आक्रमण किया, उसके युद्ध की विकरालता का वर्णन भी अंकित है।

'वंश-भास्कर' में बुधसिंह हाड़ा का चरित्र भी बड़ा रोचक बन पड़ा है जिसमें बुध सिंह का सालमसिंह के साथ युद्ध का वर्णन महत्त्वपूर्ण हुआ है, बुधसिंह हाड़ा ने शाहआलम के साथ काबुल में दिन कैसे बिताये थे, इसका उल्लेख भी है। जब फर्रु ख सियर मुगल सम्राट बना तब बुध सिंह का दुर्भाग्य काल हो गया, उसे पदच्युत कर बूंदी को कोटा के महाराव भीमसिंह को प्रदान कर दी उसका वर्णन भी वंश-भास्कर में दृष्टिगत है।

बुध सिंह का चरित्र सविस्तार से दिया है जो उस समय की राजनीति की विषमता को प्रस्तुत करता है, वैसे बुध सिंह वीर व्यक्ति था, जिसने कई बादशाहों को अपनी सेवा से प्रसन्न किया था, उस समय अन्य राजस्थान के राज्यों में क्या प्रतिक्रिया हो रही थी, उसका वर्णन भी वंश-भास्कर में मौजूद है, जैसे बड़े भाई अभयसिंह के कहने पर बखत सिंह ने अपने पिता अजीत सिंह का वध किया, कोटा के महाराव अर्जुन सिंह के मरने पर शत्रुशाल अपने बड़े भाई श्यामसिंह को मारकर गद्दी का स्वामी बन गया, जयसिंह ने अपने भाई विजय सिंह को मारा और अपने जामाता अभयसिंह से दण्ड वसूल किया, प्रभुत्व की दौड़-धूप में बुध सिंह के स्थान पर उसने दलेल सिंह को बूंदी का स्वामी बनाया, यह वचन देकर कि वह अपनी मेवाड़ी रानी के पुत्र को जयपुर का राज्य देगा और मराठों को राजस्थान में हस्तक्षेप करने का पूरा अवसर दिया। इस प्रकार सूर्य मल्ल मीसरण ने बड़ी निष्पक्षता के साथ इन सभी-घटनाओं का वर्णन किया है, जय सिंह की कहीं प्रशंसा है तो कहीं निन्दा भी की है, तो बूंदी महाराव बुधसिंह के आलसी और कामी आचरण का वर्णन है।

सूर्यमल्ल मीसण ने वंश-भास्कर में 'उम्मेदसिंह का वर्णन इतना नहीं जितना दूसरों का किया है।' मराठों ने कभी जयसिंह की मेवाड़ी रानी के पुत्र माधवसिंह का और कभी उसके प्रतिद्वन्द्वियों का पक्ष लेकर राजस्थान को खूब लूटा, उस समय राजस्थान के प्रमुख व्यक्ति कौन-कौन थे, सूर्यमल्ल वृतान्त देते हुए लिखते हैं कि बूंदी का वास्तविक अधिकारी उम्मेदसिंह, उसका प्रतिद्वन्द्वी दलेलसिंह, आमेर की गद्दी का हकदार जयपुर महाराजा ईश्वरसिंह और उसका प्रतिद्वन्द्वी माधवसिंह, जोधपुर महाराजा अभयसिंह और उसका छोटा भाई बखतसिंह, कोटा का दुर्जनशाल, मराठा राजा मल्हार

राव होल्कर आदि के वृतान्त को इतिहासकार मीसरा ने सत्य रूप दिया है, जो इतिहास के लिए उपयोगी है। ईश्वरसिंह ने अपने मंत्री केशवदास को विष दिया और मल्हार राव के जयपुर पर आक्रमरा करने पर स्वयं ने विष खाकर प्रारा खोये, माधवसिंह ने उसका स्थान ग्रहरा किया, बखतसिंह के बाद विजयसिंह जोधपुर का राजा बना तथा उसने मराठों से लोहा लिया, उसका वर्णन भी वंश-भास्कर में अंकित है।

उदयपुर में इसी बीच में जगतसिंह द्वितीय, प्रतापसिंह द्वितीय और राजसिंह द्वितीय व अरिसिंह द्वितीय ने राज्य किया, बूंदी के महाराव उम्मेदसिंह ने सन् 1771 में सन्यास लिया, उसके पुत्र अजीतसिंह ने केवल दो वर्ष तक और उसके उत्तराधिकारी विष्णुसिंह ने लगभग अड़तालीस वर्ष तक राज्य किया, वंश-भास्कर में सूर्यमल्ल ने जो प्रसंगानुकूल वृत्तान्त दिये हैं उनमें प्रपंच आत्मघात और मराठों के हस्तक्षेप का विवरण आदि सब वर्तमान है, जोधपुर महाराजा मानसिंह का अपने सामन्तों से संघर्ष, धोकलसिंह की प्रतिद्वन्द्विता और उसका जयपुर और मेवाड़ द्वारा समर्थन, जोधपुर का घेरा कृष्णकुमारी का विषपान, पोकरण ठाकुर सवाईसिंह का छल से वध और अंग्रेजों से संधि आदि का वर्णन सत्य है। जयपुर के महाराजा जगतसिंह के मद्यपी होने का निन्दात्मक निर्देश सूर्यमल्ल मीसरा ने किया है, अंग्रेजों की प्रशंसा में कुछ अच्छी बात भी कही है और उन संधियों का भी उल्लेख किया है, जिनके परिणामस्वरूप अंग्रेजों का समग्र शासन राजस्थान में स्थापित हुआ, कोटा में झाला जालमसिंह के कृत्यों का उल्लेख आदि का वृत्तान्त 'वंश-भास्कर' में चित्रित है।

वंश-भास्कर में दिये गये बूंदी राज्य के इतिहास विवरण की अनेक असंगतियों. भ्रान्तियों के होते हुए भी तत्कालीन इतिहास सम्बन्धी बहुत कुछ महत्त्वपूर्ण उपयोगी सामग्री है जो बूंदी पर शासन करने वाले सब ही नरेशों, उनके भाई बेटा और उनकी पुत्रियों के विवाह सम्बन्धों के बारे में इतनी भरपूर जानकारी इतिहासकार सूर्यमल्ल ने दी है, जिसकी सहायता से तत्कालीन कई प्रसिद्ध राजपूत राज-घरानों के इतिहास तथा उनकी वंशावलियों पर नया प्रकाश पड़ता है, जैसा कि आधुनिक भारतीय इतिहासकार डॉ. रघुवीरसिंह का कथन कि "सूर्यमल्ल मीसरा ने वंश-भास्कर में उन युगों सम्बन्धी अपने विवरण में समूचे राजस्थान की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का सटीक उल्लेख किया है, जिससे इस बात का कुछ पता लगता है कि उन घटनाओं को लेकर राजस्थान के दरबारों में क्या कुछ प्रतिक्रियाएँ हुई थी, उस युगान्तर काल में मराठों के आक्रमणों, उनके व्यवहार तथा उनकी अनेकानेक कार्यवाहियों आदि के बारे में राजस्थान का राजपूत शासक-वर्ग और जन साधारण क्या सोचता था, इसका भी थोड़ा बहुत आभास वंश-भास्कर में यत्र-तत्र देखने को मिलता है।" इस प्रकार राजस्थान की अनेकानेक प्रवृत्तियों को ठीक तरह से समझने तथा वहां के जन-मानस की कई उलझी हुई गुत्थियों के आंतरिक सूत्रों को सफलता पूर्वक खोज निकालने में यह सब जानकारी अवश्य ही सहायक होगी। वंश भास्कर के इन ऐतिहासिक वृतों से आज भी सर यदुनाथ सरकार, डॉ. ओझा, डॉ. रघुवीरसिंह जी, डॉ. मथुरालाल शर्मा, आसोपाजी,

मुंशी देवी प्रसाद, जगदीशसिंह गहलोत, विश्वेश्वर नाथ रेऊ, डॉ. गोपीनाथ शर्मा आदि इतिहासकारों ने अपने इतिहास ग्रन्थों के निर्माण हेतु बहुत कुछ सामग्री का आधार लेकर मध्यकालीन राजपूत इतिहास का इतिहास लेखन किया है जो उनकी उपेक्षा नहीं कर सके।

अतः 'वंश-भास्कर' एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है जिसमें इतिहासकार सूर्यमल्ल मीसण ने इतिहास को एक विस्तृत और सविस्तार वृतान्त के रूप में पिरोया है, जहां तक उनको ज्ञात था, वहां उसने घटनाओं को शुद्ध रूप में प्रस्तुत किया है, यद्यपि तत्कालीन वर्णन परिपाटी में कुछ अतिशयोक्ति का पुट रहा है किन्तु यह अतिशयोक्ति इतिहास के झरोखे में रही है। डॉ. दशरथ शर्मा ने ठीक ही कहा है कि "वंश-भास्कर" की सभी घटनाओं को क्रमानुसार जमा लिया जाय तो शोधार्थी विशुद्ध इतिहास का निर्माण कर सकता है, क्योंकि सूर्यमल्ल का एकाकी वैदुष्य नहीं था, और न एकाकी विद्वानों के लिए यह ग्रन्थ लिखा गया है।[1] जैसा कि सूर्यमल्ल ने वंश-भास्कर में स्वयं कहा है–

जो विद्यागुन बोध बिनु, रहत दंभधरि चित्त।
तिनसों विनती ग्रन्थ यह, न पढ़ि बिगारहु भित्त॥
प्रथम समासरू व्यास करि, कही अनल कुल भव्य।
पुनि सब वर विद्या विषय, जे अवश्य पठितव्य॥[2]

इस प्रकार वंश-भास्कर स्तुतिपरक ग्रन्थ नहीं है, न कपोल-कल्पित है, विद्वानों ने जो यह धारणा बना रखी है, वे इस काव्य से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। वास्तव में उन्हें इस इतिहास ग्रन्थ का अध्ययन करना चाहिए। इतिहासकारों ने इसके शुद्ध इतिहास को निर्मित किया है, जबकि हिन्दी के विद्वान तो इसे देखते ही कतराते हैं अतः उन्होंने इस चम्पू ग्रन्थ को सदा दबाया रखा है, यह विद्वानों की सबसे बड़ी भूल है।

1– कवि सूर्यमल्ल स्मृति ग्रन्थ, डॉ. दशरथ शर्मा का लेख, पृ. 77।

2– वंश-भास्कर, कृष्णसिंह बारहठ, पृ. 87।

श्यामलदास दधवाड़िया

डॉ. लक्ष्मणप्रसाद माथुर

भू. पू. विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग
सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

भारत में काफी समय से प्रान्तों अथवा राज्यों का इतिहास लिखने की परम्परा चली आ रही थी। बारहवीं शताब्दी में कल्हण ने राजतरंगिणी में काश्मीर राज्य का क्रमबद्ध इतिहास लिखा। सल्तनत काल में भी मालवा, गुजरात, जौनपुर तथा अन्य राज्यों का इतिहास लिखा गया। मुगलकाल के इतिहासों में भी प्रान्तों एवं अधीनस्थ राज्यों की हलचलों पर प्रकाश डाला गया। अंग्रेज प्रशासकों ने आरम्भ से ही कुछ प्रान्तों का इतिहास लिखा। क्लाईव के एक समकालीन अधिकारी राबर्ट ओर्म ने अंग्रेजों की मद्रास व बंगाल विजय का वृतान्त लिखा। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में ग्रांट डफ ने मराठों, जेम्स टॉड ने राजस्थान, कनिंघम ने सिक्खों, मार्क्स विल्क्स ने मैसूर, मेलकाम ने मालवा, हेमिल्टन ने आसाम, मार्शमेन ने बंगाल तथा स्टर्लिंग ने उड़ीसा का इतिहास लिखा। यद्यपि इनमें से अधिकांश इतिहासकारों का प्राथमिक उद्देश्य अंग्रेजों की सफलताओं को प्रदर्शित करना था किन्तु उनकी कृतियों ने भारत के देशी राज्यों के शासकों को पुन: अपने राज्यों का इतिहास लिखाने के लिये प्रेरणा दी। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने जोधपुर राज्य की ख्यात की रचना कराई। इस ग्रन्थ को मुद्रित नहीं कराया गया अपितु इसकी हस्तलिखित प्रतियां ही वितरित होती रही। इसी प्रकार एक विशिष्ट आयोजन उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ।[1] मेवाड़ के महाराणा सज्जनसिंह ने ईस्वी सन् 1877 में मेवाड़ का एक ब्रहद ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखने का कार्य श्यामलदास को सौंपा। यह ग्रन्थ पन्द्रह वर्ष में तैयार हुआ। इसका नाम वीर-विनोद है।

श्यामलदास ने वीर विनोद में अपने जीवन का संक्षिप्त परिचय दिया है।[2] उसके पूर्वज कच्छ के रन के परमारों की सांखला शाखा के शासकों के यहां वंशागत पोळ-पाट का कार्य करते थे। वे दरवाजों पर दुल्हों से परम्परागत नेग और उपहार लेने के

1– डॉ. रघुवीरसिंह : राजस्थान के प्रमुख इतिहासकार और उनका कृतित्व; श्यामलदास दधवाड़िया।

2– वीर-विनोद, प्रथम जिल्द, पृष्ठ 180-84 ।

अधिकारी थे । क्योंकि इस परिवार को शासन के रूप में दधवाड़िया ग्राम मिला हुआ था इसलिये ये दधवाड़िया कहलाये । पन्द्रहवीं शताब्दी में रणमल और जोधा द्वारा इन प्रदेशों पर अधिकार करने के बाद कुछ सांखला व चारण परिवार मेवाड़ चले आये । कुम्भा ने दधवाड़िया परिवार के मुखिया जैतसिंह की विद्वता से प्रभावित होकर उसे धरता और गोपिता ग्राम निर्वाह के लिये दिये । कुंभा के उत्तराधिकारियों की कृपा दृष्टि इस परिवार पर बनी रही । कालान्तर में इस परिवार को धोकलिया, शावर, नयागांव, जैतसिंहपुरा और भातृ नामक गांव दिये गये । इनमें से धोकलिया ग्राम दधवाड़िया चारण शाखा परिवार की मुख्य शाखा का निवास स्थान था । इस परिवार में कायम शाह के चार पुत्र हुए । दूसरे पुत्र का नाम श्यामलदास था । इनका जन्म 5 जुलाई, 1836 ई. को धोकलिया ग्राम में हुआ । अपने पिता की देख-रेख में इनकी आरंभिक शिक्षा हुई । नौ बर्ष की आयु में श्यामलदास ने सरस्वत व अमरकोष का अध्ययन आरंभ किया तथा काव्य, तर्कशास्त्र, गणित, ज्योतिष शास्त्र, खगोल शास्त्र, तंत्र, चिकित्सा शास्त्र एवं महाकाव्यों का अध्ययन किया । वह डिंगल भाषा में भी पारंगत हो गया । प्रारंभ से ही इतिहास के अध्ययन में उसे रूचि थी । उसने महा-काव्यों के अतिरिक्त पुराणों तथा फारसी में लिखे ऐतिहासिक ग्रन्थों का भी अध्ययन किया ।

ग्यारह बर्ष की आयु में उसके पिता ने उसे महाराणा स्वरूपसिंह के सामने प्रस्तुत किया । श्यामलदास की प्रतिभा से प्रभावित होकर महाराणा ने 1871 ई. में उसे पदमनाथ पुरोहित के साथ मेवाड़ का एक बृहद इतिहास लिखने का कार्य सौंपा । इसके लिए एक इतिहास विभाग खोला गया । श्यामलदास ने इस ग्रन्थ को लिखने के लिये सामग्री का संकलन आरंभ किया । 1874 ई. में शंभुसिंह की मृत्यु होने पर यह विभाग टूट गया लेकिन तीन बर्ष पश्चात महाराणा शंभुसिंह के उत्तराधिकारी महाराणा सज्जनसिंह ने पुनः श्यामलदास को इस कार्य का भार सौंपा । तथा इसके लिये एक लाख रुपया अनुदान दिया । उसकी सहायता के लिये इतिहास कार्यालय में अनेक सुयोग्य विद्वानों को नियुक्त किया गया । उसकी योग्यता से प्रभावित होकर महाराणा सज्जनसिंह ने राजस्व के निर्धारण, न्यायालयों की स्थापना, उदयपुर शहर के विकास के लिये निर्माण सम्बन्धी कार्यों तथा महाद्राज सभा का अधिकारी नियुक्त किया । विद्वानों तथा प्रतिभाशाली व्यक्तियों को अनुदान व भेंट देने के सम्बन्ध में भी उनको मुख्य परामर्शदाता बनाया । उन्हें मेवाड़ राज्य के पुस्तकालय का अध्यक्ष भी बनाया गया । श्यामलदास को प्रशासनिक कार्यों के साथ-साथ सैनिक अभियानों की कमान का भार सौंपा गया । 1881 ई. के भील विद्रोह में उन्हें भीलों के साथ समझौता करने तथा किसी भी प्रकार अंग्रेजों का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप रोकने के लिये भेजा गया । ऋषभदेव में उन्होंने भीलों के साथ समझौता करने में सफलता प्राप्त की ।[1]

1– ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2 ।

अत्यन्त परिश्रम व लगन के साथ श्यामलदास व उनके सहयोगियों ने, जिनमें गौरीशंकर हीराचंद ओझा भी थे, विविध प्रकार के स्त्रोतों से ऐतिहासिक सामग्री का संकलन किया। इस समय मेवाड़ के पोलिटिकल एजेण्ट कर्नल इम्पी ने उन्हें आधुनिक पद्धतियों के आधार पर इतिहास लिखने की सलाह दी। 1879 ई. में महाराणा ने श्यामलदास को कविराज की उपाधि से विभूषित किया। उन्हें रायल एशियाटिक सोसायटी, बंगाल का सदस्य भी बनाया गया। इस संस्था के सदस्यों ने उन्हें पुरातत्व व इतिहास का सदस्य चुना। उसके बाद वे रायल ऐशियाटिक सोसायटी, लंदन व बम्बई के फेलो चुने गये। उन्हें हिस्टोरिकल सोसायटी, लंदन का भी फेलो चुना गया।

ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ गलतफहमी अथवा वृद्धावस्था के कारण दरबार में अपना प्रभाव बनाये रखने में असमर्थ होने से श्यामलदास के जीवन के अंतिम वर्ष सुखद नहीं रहे।[1] अतएव वीर-विनोद को वहीं समाप्त कर दिया गया जहाँ तक श्यामलदास ने उसे लिखा था फलस्वरूप इसमें 1884 ई. में सज्जनसिंह की मृत्यु तक का ही इतिहास है तथा किसी भी प्रकार का उपसंहार नहीं है। महाराणा फतहसिंह ने वीर-विनोद की एक हजार मुद्रित प्रतियों को उदयपुर के राजमहलों के एक कमरे में बंद करवाकर कर सील करवा दिया। 1893 ई. में श्यामलदास की मृत्यु हो गयी।

लगभग चालीस वर्षों तक वीर-विनोद के अध्ययन की सुविधा शोधार्थियों को सुलभ नहीं हो सकी। डाक्टर रघुवीर सिंह ने 1933 ई. में महाराणा भूपाल सिंह से इसकी एक अजिल्द प्रति भेंट स्वरूप प्राप्त कर अपने पुस्तकालय में रखी तथा इस ग्रंथ के अध्ययन की सुविधा प्रदान की।[2] 1945 ई. में वीर-विनोद की प्रतियों को मुहरबन्द कमरे से निकालने की आज्ञा देकर महाराणा भूपालसिंह ने इसे सबके लिये सुलभ कराया। 1986 में इसका एक संस्करण महाराणा मेवाड़ हिस्टोरिकल पब्लिकेशन ट्रस्ट के सहयोग से प्रकाशित हुआ। श्री नटनागर शोध संस्थान ने इसके संपादन का कार्य हाथ में लिया है। एक भाग प्रकाशित हो चुका है।

मूल रूप में वीर-विनोद पांच बड़ी जिल्दों में उपलब्ध है। लेकिन इसके विभागों की व्यवस्था संकेत करती है कि इसे दो भागों में विभाजित किया जाना था। इसमें कुल मिलाकर बीस प्रकरण हैं।

1–अ हिस्टोरियन्स एण्ड हिस्टोरियोग्राफी इन मोर्डन इण्डिया, संपादक एस. पी. सेन, कविराज श्यामलदास पर डा. जी. एन. शर्मा का लेख पृष्ठ 281-290।

ब कानूनगो - स्टडीज इन राजपूत हिस्ट्री, पृष्ठ 108।

2– डॉ. रघुवीर सिंह : राजस्थान के प्रमुख इतिहासकार और उनका कृतित्व : श्यामलदास दधवाड़िया, पृष्ठ 32 पाद.।

वीर-विनोद की प्रथम जिल्द में यूरोप, एशिया, अमेरिका, एशिया के कुछ देशों तथा भारत का भौगोलिक वर्णन है।[1] इसके पश्चात प्रारंभिक काल से लार्डलैंसडाउन के शासन काल तक का संक्षिप्त इतिहास है।[2] तत्पश्चात राजपूताना और मेवाड़ की भौगोलिक अवस्था, मेवाड़ में रहने वाले निवासियों के रीति-रिवाज, त्यौहार, सिक्के, तोल के बाट, प्रशासन के विभिन्न विभाग, न्यायिक व्यवस्था आदि का परिचय दिया गया है।[3] इसके बाद गुहिलोत वंश के संस्थापकों से लेकर राणा सांगा तक की वंशावली व इतिहास वर्णित है।[4] प्रथम जिल्द के अंत के पृष्ठों में अनेक शिलालेखों, ताम्रपत्रों आदि को मूल रूप में उद्धृत किया गया है। इनमें से विक्रम संवत 447 का वल्लभी का ताम्रपत्र, सांडेश्वर का लेख, विक्रम संवत 1226 का बिजोलिया का शिलालेख, विक्रम संवत 1330 चिरवा का शिलालेख, विक्रम संवत 1342 का अचलेश्वर का शिलालेख, विक्रम संवत 1485 का समिधेश्वर का शिलालेख, विक्रम संवत 1517 का मामदेव का शिलालेख, विक्रम संवत 1545 की दक्षिणेश्वर प्रशस्ति तथा विक्रम संवत 1557 का आदिनाथ का शिलालेख उल्लेखनीय हैं।[5] दूसरी जिल्द में राणा रतन सिंह से लेकर अमर सिंह प्रथम के मेवाड़ का इतिहास वर्णित है। यथोचित संदर्भ में मुगल सम्राटों, मांडू व गुजरात के सुल्तानों, भावनगर, पटियाला, एवं बूंदी के शासकों के इतिहास को रेखांकित किया गया है। इसके बाद महत्वपूर्ण फरमानों, निशानों तथा शिलालेखों को हिन्दी में उद्धृत किया गया है। जहांगीर के समय के कुछ फरमान हैं। शिलालेखों में विक्रम संवत 1589 का जाला शिलालेख व जावर शिलालेख महत्वपूर्ण है।

तृतीय जिल्द में महाराणा कर्णसिंह से लेकर अमरसिंह द्वितीय के शासनकाल तक का मेवाड़ का इतिहास है। बीच-बीच में मुगलों, बीकानेर, किशनगढ़, रीवा व अन्य राजाओं का इतिहास वर्णित है। अंत में राजप्रशस्ति महाकाव्य तथा शाहजहां व औरंगजेब के समय के कुछ शिलालेख व फरमान उद्धृत हैं। शाहजहां के समय के मनसबदारों की सूची भी दी गई है। शिलालेखों में विक्रम संवत 1678 का चित्तौड़ के किले में रामपोल, बड़ीपोल, विक्रम संवत 1725 का बेड़वास, विक्रम संवत 1704 का जगन्नाथ राय तथा राज प्रशस्ति उल्लेखनीय है।[6]

चतुर्थ जिल्द में अमरसिंह द्वितीय से जगतसिंह द्वितीय तक के काल का मेवाड़ का इतिहास वर्णित है। इसके साथ जोधपुर, रामपुरा, ईडर, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, प्रतापगढ़,

---

1– वीर-विनोद, प्रथम जिल्द, पृष्ठ 1–31।

2– वही, पृष्ठ 32–94।

3– वही, पृष्ठ 94–221,

4– वही, पृष्ठ 219–372।

5– वही, पृष्ठ 373–426।

6– वीर-विनोद, जिल्द तीन, पृष्ठ 769–727।

सिरोही, जयपुर, अलवर, कोटा, करोली की व झालारापाटन की ऐतिहासिक घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन है तथा मराठों की गतिविधियों पर प्रकाश डाला गया है। पहले की जिल्दों के समान इस जिल्द के अंत में भी कुछ शिलालेखों व राजकीय पत्रों को हिन्दी में उद्धृत किया गया है।[1]

पांचवी जिल्द का मुख्य विषय जवानसिंह के शासनकाल से लेकर सज्जनसिंह के शासनकाल तक मेवाड़ का इतिहास है। इस जिल्द में श्यामलदास जी ने अपने कुछ समकालीन प्रमुख दरबारियों का परिचय दिया है अंत में मेवाड़ व ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बीच हुई संधि तथा कुछ और समझौतों एवं अंग्रेज अधिकारियों के पत्र उद्धृत हैं। इनमें विलियम बैंटिक, सदरलैंड, रोबर्टसन, और हेनरी लारेंस के खरीते उल्लेखनीय हैं।[2]

देवनागरी लिपि के मोटे अक्षरों में छपे वीर-विनोद के कुल पृष्ठों की संख्या 2685 है। इनमें प्रथम जिल्द के 426 तथा शेष चार जिल्दों के 2259 पृष्ठ हैं। इसके पृष्ठों का आकार अन्य पुस्तकों के पृष्ठों के सामान्य आकार से काफी बड़ा है।

रायल एशियाटिक सोसायटी की पत्रिका में कविराज के कुछ शोधपत्र प्रकाशित हुए। वीर-विनोद में पृथ्वीराज- रासो सम्बन्धित विचारों पर उनका अंग्रेजी में एक शोध पत्र 1886 ई. में प्रकाशित हुआ। खेरख्वाह-ए-आलम नामक एक पत्रिका में भी उनके शोध-पत्र प्रकाशित हुए। अकबर के जन्म पर भी उनका एक लेख प्रकाशित हुआ।

वीर-विनोद में इस ग्रंथ के लिखने के उद्धेश्य और पद्धति पर प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं "महाराणा शंभुसिंह साहिब और सज्जनसिंह साहिब ने मुझको आज्ञा दी थी कि तवारीख में तारीफ नहीं चाहिये, उसी तरह वर्तमान महाराणा साहिब (फतहसिंह) की भी अभिरुचि है .....।[3] उसने स्पष्ट रूप से लिखा है कि एक इतिहासकार को प्रशंसा और पूर्वाग्रहों से ग्रस्त नहीं होना चाहिये। एक इतिहासकार को पुराणिक शैली का अनुसरण करते हुए अतिशयोक्ति से काम नहीं लेना चाहिये। वे ऐसे इतिहासकारों की आलोचना करते हैं जिन्होंने अपने ग्रंथों में मजहब व करामाती बातों को महत्व दिया। वे किसी भी घटना की तिथि को सही निर्धारित करना भी आवश्यक मानते हैं। किसी भी देश अथवा राज्य का इतिहास लिखने के लिये पर्याप्त अनुभव और सामग्री का होना जरुरी समझते हैं।

1– वही, जिल्द चार, पृष्ठ 729–1534।

2– वही, जिल्द पांच, पृष्ठ 1535–2259।

3– वीर-विनोद, जिल्द-1, पृष्ठ 183–185।

वीर-विनोद के लिखने में श्यामलदास ने फारसी इतिहासकारों, ख्यातों के लेखकों और कर्नल टॉड की घटनाओं का वर्णन लिखने की पद्धति का अनुसरण किया।[1] नैणसी के समान उन्होंने भी राजपूताने के अनेक राज्यों का संक्षिप्त इतिहास मेवाड़ के इतिहास के साथ लिखा तथा प्रत्येक राज्य की भौगोलिक अवस्थाओं पर प्रकाश डाला। दयालदास के समान मूल शिलालेखों, पट्टों, पत्रों व अन्य समकालीन सामग्री को उद्धृत किया। बांकीदास की भांति किसी भी समय के इतिहास से सम्बन्धित व्यक्तियों और रीति-रिवाजों का वर्णन किया। सूर्यमल्ल मीसण का अनुकरण करते हुए अध्यायों के अंत में कहीं-कहीं प्रमुख शासकों की प्रशंसा में कवित्त का प्रयोग किया। फारसी इतिहासकारों के समान विश्व के इतिहास तथा नक्षत्रों आदि का संक्षिप्त परिचय दिया है। मिन्हाज व बरनी की भांति अपने राज्य के शासकों के लिए सूचक शब्दों का प्रयोग किया। टॉड से प्रेरणा लेते हुए जागीर व्यवस्था तथा अन्य संस्थाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का प्रयत्न किया[2]। अंग्रेजों के गजेटियरों का अनुसरण करते हुए उन्होंने मेवाड़ की सामाजिक दशा पर प्रकाश डाला।

वीर-विनोद में वर्णित घटनाओं को यथासाध्य प्रामाणिक बनाने के लिए श्यामलदास ने तब ज्ञात और प्राप्य सब ही समकालीन तथा समीपकालीन फारसी इतिहास-ग्रन्थों की गहराई तक जांच-पड़ताल करवाई, उनके गुण-दोषों को समझा-बूझा और उनसे प्राप्त जानकारी का भरसक समुचित उपयोग किया। मेवाड़ राज-घराने के निजी पुरालेखागार में संग्रहीत सैंकड़ों फारसी व हिन्दी सनदों, फरमानों, परवानों, पत्रों, अंग्रेजों के साथ हुए पत्र व्यवहारों आदि का उपयोग किया तथा इनमें से अनेकों के मूल पाठ अथवा हिन्दी अनुवादों को अध्यायों के अंत में छापा[3]। मेवाड़ के एक प्रमुख अधिकारी तथा इतिहास लिखने के लिये विशेष रूप से नियुक्त होने के कारण श्यामलदास को इस प्रकार की सामग्री को एकत्रित करने की पूर्ण सुविधा थी। उनके साथ कुछ ऐसे विद्वान भी कार्य कर रहे थे, जिन्हें इतिहास के अध्ययन व लेखन में अत्यन्त रुचि थी।

श्यामलदास ने टॉड के अनेक निष्कर्षों को नहीं माना तथा उसके द्वारा की गई भूलों को सुधारने का प्रयत्न किया। वल्लभी के ताम्रपत्र तथा कुंडा एवं एठपुर

1– वीर-विनोद, प्रथम जिल्द, पृष्ठ 183-185।

2– हिस्टोरियन्स एण्ड हिस्टोरियोग्राफी इन मोडर्न इण्डिया, संपादक एस. पी. सेन, कविराज श्यामलदास पर डॉ. जी. एन. शर्मा का लेख पृष्ठ 281–290।

3– डॉ. रघुवीर सिंह : राजस्थान के प्रमुख इतिहासकार और उनका कृतित्व, श्यामलदास दधवाड़िया, पृष्ठ 229।

के शिलालेखों के आधार पर उन्होंने यह सिद्ध किया कि टॉड ने शिलादित्य को गुहिल का पिता मानकर भूल की थी। इसी प्रकार बापा रावल को अपरजीत के पिता शिला को एक व्यक्ति मानने के टॉड के निष्कर्ष को गलत बताया। टॉड ने लिखा था कि बापा रावल ने छब्बीस वर्ष तक राज्य किया किंतु एकलिंग महात्म्य के आधार पर श्यामलदास ने उसका शासन-काल उन्नीस वर्ष माना है।

टॉड ने पृथ्वीराज और मुहम्मद गौरी के तराई के युद्ध की तिथि नहीं दी है किंतु श्यामलदास ने पृथ्वीराजरासो में दी गई तिथि पर विचार प्रकट करते हुए बताया है कि समरसिंह पृथ्वीराज का समकालीन नहीं था। टॉड की धारणाओं को कि मीरां कुंभा की पत्नी थी तथा सलीम हल्दीघाटी के युद्ध में मौजूद था, श्यामलदास ने भ्रांतिपूर्ण बताया है।[1] इसमें कोई संदेह नहीं कि टॉड की भ्रांतियों को दूर करने में श्यामलदास ने उल्लेखनीय कार्य किया।

इसी प्रकार वीर-विनोद में सर्वप्रथम सविस्तार विवेचन कर श्यामलदास ने इतिहास आधार ग्रन्थ के रूप में चन्द बरदाई के पृथ्वीराज-रासो को सर्वथा अप्रामाणिक और भ्रांतिकारक घोषित किया।[2] इसके आधार पर अन्य राजपूत राजघरानों के इतिहासों में जो भ्रांतियाँ मान्य होती रही थी, उनको भी सप्रमाण दूर करने में उन्होंने यत्र-तत्र यथा-साध्य प्रयत्न किया था।[3]

श्यामलदास ने अपने ग्रंथ में अपने संरक्षकों के शासनकाल का इतिहास लिखने में पक्षपात से काम नहीं लिया है। यद्यपि उसने शंभूसिंह और सज्जनसिंह की अनेक कार्यों के लिये प्रशंसा की है किंतु उनकी विलासिता की निन्दा भी की है। इससे स्पष्ट होता है कि कविराज ने यथासंभव निष्पक्षता को अपनाया था।

एक ऐसे युग में जबकि राजस्थान के सब ही शासक अपने-अपने राज्य के महत्व तथा निजी गरिमा से अभिभूत थे तथा वे राजस्थान के राज्यों के संदर्भ में किसी भी प्रकार की सामूहिकता की कल्पना भी नहीं कर सकते थे, श्यामलदास ने राजस्थान को विभिन्न इतिहास को अलग-अलग लिखकर भी उदयपुर राज्य के इतिहास के साथ ही उन्हें गूंथ कर राजस्थान के इतिहास के अंतर्गत उनकी आंतरिक अन्योन्याश्रयता को सुस्पष्ट कर एक सराहनीय कार्य किया।[4]

1– हिस्टोरियन्स एण्ड हिस्टोरियोग्राफी इन मोडर्न इण्डिया, सम्पादक एस. पी. सेन, कविराज श्यामलदास पर डॉ जी. एन. शर्मा का लेख पृ. 281-290।

2– डॉ. रघुवीरसिंह : राजस्थान के प्रमुख इतिहासकार पृ. 28।

3– वही पृ. 29।

4– वही पृ. 27-28।

वीर-विनोद के शेष संग्रहों में प्रकाशित सामग्री का अपना विशिष्ट महत्व है। इस प्रकार की समकालीन आधार सामग्री आज विद्यार्थियों को सुलभ नहीं हैं। उन्हें वीर-विनोद का ही आश्रय लेना पड़ता है।[1]

वीर-विनोद में दिये गये भौगोलिक वर्णनों के आधार पर हम सत्रहवीं व अठारहवीं शताब्दी में मेवाड़ राज्य के ऐतिहासिक भूगोल को निर्धारित कर सकते हैं। मेवाड़ के निवासियों के विभिन्न धार्मिक त्यौहार, मेले, जातियां, रहन-सहन और सामाजिक दशा के अन्य पहलुओं पर प्रकाश डालकर श्यामलदास ने हमें इस क्षेत्र के अध्ययन के लिये बहुमूल्य सामग्री प्रदान की। किंतु उन्होंने आर्थिक और सांस्कृतिक पहलुओं की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। इसी प्रकार उन्होंने राज्य शासन व्यवस्था और न्यायालयों आदि की रूपरेखाएं दी किंतु राजकीय करों तथा राजस्व प्रशासन के बारे में जानकारी नहीं दी। आरंभ में प्रस्तावित योजना के अनुसार सविस्तार वर्णन लिया जाना था।[2] किंतु केवल कुछ समकालीन दरबारियों का सामान्य परिचय देने के अतिरिक्त इस योजना को कार्यान्वित नहीं किया गया।

विभिन्न जातियों का वर्णन करते समय श्यामलदास ने चारणों की अतिरंजित प्रशंसा और ब्राह्मणों की निन्दा की है। उसने अपने समकालीन ब्राह्मण विद्वानों का उल्लेख नहीं किया है। चारणों की प्रशंसा करने के पीछे शायद उसका उद्देश्य अंग्रजों द्वारा नेक की प्रथा को समाप्त करने के सुझाव के विरुद्ध प्रतिक्रिया उत्पन्न करना रहा होगा।

श्यामलदास ने ख्यातों का प्रयोग अवश्य किया किन्तु उन्होंने दयालदास और बांकीदास का कहीं पर उल्लेख नहीं किया। नैणसी की ख्यात और वंशभास्कर का उल्लेख एक या दो बार ही किया। इसके विपरीत उन्होंने अंग्रेज लेखकों-कनिंघम, ऐचीसन, हन्टर, मिल, फ्लीट, टेलर और अन्य के मतों की विवेचना करते हुए उनका उल्लेख किया।

यद्यपि श्यामलदास ने शोधार्थियों को राजपूताने के राज्यों का एक एकीकृत इतिहास लिखने की प्रेरणा दी किंतु उन्होंने मेवाड़ के इतिहास के बीच-बीच में अन्य राज्यों का संक्षिप्त इतिहास देकर मेवाड़ के इतिहास की तिरन्तरता के क्रम में बाधा पहुंचाई। लेकिन इस कमी से राजपूताने के राज्यों के इतिहास का एक तुलनात्मक अध्ययन करने की सुविधा में कोई व्यवधान नहीं पहुंचता।[3]

2– डॉ. रघुवीरसिंह : राजस्थान के प्रमुख इतिहासकार और उनका कृतित्व, पृ. 29।

1– वही पृ. 31।

3– हिस्टोरियन्स एण्ड हिस्टोरियोग्राफी इन मोडर्न इण्डिया, सम्पादक एस. पी. सेन, कविराज श्यामलदास पर डॉ. जी. एन. शर्मा का लेख, पृ. 281-290।

अधिकांशतः विवरणात्मक होने के कारण वीर-विनोद में समीक्षात्मक विवेचनों का अभाव पाया जाता है। इस दृष्टि में यह इतिहास लेखन की वर्तमान वैज्ञानिक पद्धति पर खरा नहीं उतरता लेकिन फिर भी उस काल में इतिहास लिखने की पद्धति के अनुसार इसकी जांच करने पर हम यह कह सकते हैं कि उनका प्रयास अत्यंत सराहनीय था। इसकी विशिष्टताओं के कारण ही राजस्थान के इतिहास का अध्ययन करने वाले विद्वानों- डॉ. त्रिपाठी, डा. कानूनगो, डॉ. मथुरालाल शर्मा, डॉ. गोपीनाथ शर्मा व अन्य ने इस ग्रंथ में दिये गये निष्कर्षों को मान्यता प्रदान की है। इसमें कोई संदेह नहीं कि पिछले साठ-सत्तर वर्षों में हुई गहन खोजों के बाद भी श्यामलदास की अनेकों स्थापनाएं और विवेचन यथावत मान्य हैं।[1] यद्यपि भविष्य में नवीन स्त्रोत व सामग्री के आधार पर उनके कुछ निष्कर्षों का खण्डन किया जाना संभव है लेकिन इससे श्यामलदास की इतिहासकार के रूप में कीर्ति के धूमिल होने की तनिक भी संभावना नहीं है क्योंकि उन्होंने सभी साधनों से सामग्री प्राप्त करने का यथासंभव प्रयत्न किया तथा प्राप्त सामग्री के आधार पर निष्पक्ष मत दिये।

1– डॉ. रघुवीरसिंह । राजस्थान के प्रमुख इतिहासकार और उनका कृतित्व; श्यामलदास दधवाड़िया, पृ. 32-33।

नोट : प्रताप शोध प्रतिष्ठान में संग्रहीत वीर-विनोद की प्रति काम में लाई गई है।

मुंशी देवीप्रसाद

डॉ. जमनेशकुमार ओझा
व्याख्याता, इतिहास विभाग,
उदय जैन महाविद्यालय, कानोड़

राजस्थान के लब्ध प्रतिष्ठित इतिहासकार मुंशी देवीप्रसाद के पूर्वज दिल्ली में रहते थे किन्तु मुगल साम्राज्य के पतन को देख मुंशी नरसिंहदास तब दिल्ली छोड़ भोपाल आ गया और राज्य की सेवा करने लगा। उसका पौत्र तथा मुंशी आलमचंद का पुत्र, मुंशी घासीराम योग्य मुंशी तथा उल्लेखनीय खुशनवीस था। मुंशी घासीराम के पुत्र किशनचंद का विवाह टोंक नबाब अमीरखाँ पिण्डारी के बख्शी दौलतराम की पुत्री के साथ सम्पन्न हो गया। अतः नवाब ने मुंशी घासीराम को अपने परगने सिरोंज (भोपाल से 60 मील उ. पू. उ. में स्थित) में नियुक्त कर दिया। वहीं रहते हुए किशनचंद को दि. शनि., अगस्त 14, 1819 ई. के दिन पुत्र की प्राप्ति हुई जिसका नाम नत्थनलाल रखा गया। उधर अंग्रेजों के बढ़ते प्रभाव से टोंक भी अछूता नहीं रहा और नवम्बर 1817 ई. तक अमीरखाँ ने भी अंग्रेजों से संधि कर टोंक में ही रहने लगा। नवाब के आदेश से मुंशी किशनचंद भी सपरिवार टोंक आ गया। मुंशी नत्थनलाल ने शिक्षा प्राप्त कर अमीरखाँ के छोटे पुत्र अब्दुलकरीमखाँ की सेवा करना स्वीकार किया। अपने ज्येष्ठ भ्राता नवाब वजीरूद्दोला के साथ अब्दुलकरीमखाँ की अनबन हो जाने से 1843 ई. में अब्दुलकरीमखां अजमेर आ गया तब उसके साथ मुंशी नत्थनलाल भी अजमेर ही रहने लगा। इधर मुंशी नत्थनलाल की शादी जयपुर राज्य के चौकी-नवीस भैया हीरालाल के पुत्र हकीम शंकरलाल की पुत्री से हुई थी। नत्थनलाल के प्रथम पुत्र मदनलाल की मृत्यु के चार महिने बाद दूसरे पुत्र देवीप्रसाद का जन्म अपने ननिहाल जयपुर में दि. शुक्र., फरवरी 18, 1848 ई. (माघ सुदि 14, वि. सं. 1904) को हुआ था।[1] सिर पर बालों की अधिकता के कारण ननिहाल में उसका नाम झूंतालाल रखा गया तो अजमेर में परदादी व दादी ने देवीबख्शू रखा। किन्तु अब्दुलकरीमखां का कामदार उसे देवीप्रसाद कहा करता था। देवीप्रसाद को अपने परिजनों के अलावा चांदनी गूजरी का वात्सल्य भी अत्यधिक मिला था। दो वर्ष का होने पर बालक का मुंडन संस्कार किया गया और तब विभिन्न देवी-देवताओं की

1– शाहजहांनामा, सं. ठा. रघुवीरसिंह व डॉ. मनोहरसिंह राणावत, (प्रस्तावना) पृष्ठ 7-8।

मिन्नत के अनुरूप उसके सिर पर चार चोटियां क्रमशः मदार की, बिज्यासनी की, सिल्लादेवी की और घाट के हनुमान की रखी गई थी। मुंशी देवीप्रसाद ने 'मेरा-बचपन' लेख में लिखा कि प्रायः ऐसा कहा जाता है कि देवी और मदार का साथ नहीं होता है किन्तु मेरे सिर पर तो दोनों ही दो वर्ष तक रहे थे। बड़ा होने पर अपने परिजनों वाले नाम में मुंशी देवीप्रसाद को अटपटापन लगा और कहा कि "16 बरस की उम्र के पीछे मैंने भी उस आधे तीतर आधे बटेर नाम को बदल दिया।"

मुंशी देवीप्रसाद को विभिन्न भाषाएँ, गीत, कहावतें आदि घरेलू वातावरण में सीखने को मिली थी। जैसे उसकी परदादी ब्रज भाषा बोलती थी तो दादी मालवी और मां हिन्दी तो भुआ उर्दू बोलती थी। यों शैक्षणिक वातावरण में पल रहे मुंशी देवीप्रसाद को उसके पिता ने अरबी, फारसी व उर्दू की अच्छी शिक्षा दी। 16 वर्ष की अल्पायु में कुछ समय के लिए अजमेर तहसील कार्यालय में काम किया था। जब वह 19 वर्ष का हुआ तो 1865 ई. से 1878 ई. तक अब्दुलकरीमखां की नौकरी स्वीकार कर ली। अतः वह टोंक व अजमेर में रहा। निर्भीक व स्वतंत्र प्रकृति के मुंशी देवीप्रसाद टोंक में हिन्दुओं पर ज्यादती होते देख अपने विचार अखबारों में प्रकाशित कराने लगा जिससे 13 वर्ष नौकरी करने के उपरान्त नौकरी व टोंक दोनों ही छूट गये। फिर भी उसने लिखना बंद नहीं किया। फलतः टोंक में हिन्दुओं पर अत्याचार बंद हो गये। वह धर्म के क्षेत्र में कट्टर नहीं था अपितु सभी धर्मों की अच्छी बातों को अपनाता था। उधर जोधपुर के अंग्रेज रेजीडेन्ट के कार्यालय में कार्यरत मुंशी देवीप्रसाद के अनुज बाबू बिहारीलाल के प्रयत्नों से वह जून 6, 1879 ई. को सर प्रतापसिंह की पेशी में महकमा अपील का नायब सरिश्तेदार नियुक्त कर दिया गया। तब से मुंशी देवीप्रसाद ने जोधपुर को अपना स्थायी निवास बना लिया। मुंशी देवीप्रसाद ने विभिन्न पदों पर रहते हुए जोधपुर राज्य की विशिष्ट सेवा की थी। हिन्दी भाषा व देवनागरी लिपि के हिमायती सर प्रताप को जब मुंशी देवीप्रसाद जैसा सुज्ञात हिन्दी प्रेमी मिल गया तब तो कई दिक्कतों को झेलने के बाद भी वहां की अदालतों में प्रचलित उर्दू भाषा का स्थान शीघ्र ही हिन्दी ने ले लिया था।[1]

मुंशी देवीप्रसाद ने जोधपुर राज्य के विभिन्न पदों को सुशोभित किया तथा अपनी लगन एवं कर्तव्य निष्ठा के कारण उत्तरोत्तर उन्नति करता गया। 1883 ई. में वह महकमा खास में सरदफ्तर पद पर, 1885 ई. में मुंसिफ बनाया गया। सबसे पहले उसने मारवाड़ राज्य के कानून बनाये तथा कानून विषयक 13 पुस्तकें लिखी। लोग उसे कानून की माता व 'कानूनी' नाम से पुकारते थे। जनवरी 1888 ई. में मारवाड़-राज्य का इतिहास लेखन हेतु स्थापित 'तवारीख महकमा' का मुंशी देवीप्रसाद

1– डा. मनोहरसिंह राणावत, इतिहासकार मुंशी देवीप्रसाद, परम्परा, भाग 79-80 पृष्ठ 15।

आजीवन सदस्य रहा था। "सन् 1891 ई. की जन-गणना के समय मुंशी देवीप्रसाद मारवाड़ राज्य में तदर्थ सहायक अधीक्षक नियुक्त हुआ। तब उक्त जन-गणना की उसने जो रिपोर्ट लिखी थी, उसके तीसरे भाग में जोधपुर राज्य की प्रजा का विवरण लिख कर मारबाड़ में बसने वाली सब ही प्रमुख जातियों का हाल, उनके व्यवसाय और उनके जीवन आदि की आवश्यक बातों की महत्त्वपूर्ण जानकारी कितने ही विशिष्ट चित्रों सहित प्रस्तुत की है।" इस ग्रन्थ पर तब मारवाड़ राज्य ने मुंशी देवीप्रसाद को प्रशंसा पत्र एवं 500/- रु. का नकद पुरस्कार दिया। 1898 ई. में उसे 250/- रु. मासिक वेतन पर महकमा वाकियात और खासी दुकानात के अधीक्षक पद पर नियुक्त किया गया। कुछ समय तक वह अकाल राहत विभाग में भी रहा। तब उसने मारवाड़ियों की उल्लेखनीय सेवा की थी।[1]

निःसंदेह मुंशी देवी प्रसाद उर्दू में कविता करता था। उसने हिन्दी में कविता नहीं की किन्तु उसने 'महिला मृदुवाणी' (काशी नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस द्वारा प्रकाशित 1905 ई.), 'राजरसनामृत' (97, नुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता, 'भारत मित्र' प्रेस से पं. कृष्णानन्द शर्मा द्वारा प्रकाशित 1906 ई.) और 'कवि रत्नमाला' आदि संग्रह प्रकाशित करके प्राचीन हिन्दी कविता का उद्धार किया था। महिला मृदुवाणी में "कुल 35 स्त्रियों की कविताओं और उनकी जीवनियों का संग्रह है। यह ग्रन्थ भारतीय महिलाओं की काव्य प्रतिभा का जीवन्त प्रमाण है। ऐसा वृहत संग्रह अब तक दूसरा प्रकाशित नहीं हुआ है।"[2]

इसी तरह का एक अनूठा ग्रन्थ 'राज रसनामृत' है जिसमें राजाओं की कविताएं व जीवनियां हैं। डॉ. मनोहर सिंह राणावत के अनुसार, राजरसनामृत राजस्थान के शासकों के काव्य प्रेम के प्रदर्शन के साथ ही उन राज्यों के शासकों के व्यक्तित्व की झलक भी प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत पुस्तक में जैसलमेर के रावल देवराज, रावल भोज देव, रावल मूलराज, महारावल बैरीसाल, उदयपुर राज्य की अति संक्षिप्त जानकारी के बाद महाराणा कुंभा से महाराणा फतहसिंह तक की पीढ़ियां और कवि महाराणा कुंभा, प्रतापसिंह, अमरसिंह, राजसिंह, अरिसिंह, जवानसिंह, और सज्जनसिंह का संक्षिप्त जीवन वृत्त और उनकी कविताओं की जानकारी दी है। आम्बेर-जयपुर के महाराजा मानसिंह से माधवसिंह द्वितीय तक की पीढ़ियां, राजा मानसिंह और सवाई प्रतापसिंह की कविताएं और संक्षिप्त जीवनियां दी हैं। बीकानेर के राव बीका से गंगासिंह तक की पीढ़ियां और रायसिंह, पृथ्वीराज करणसिंह, अनूपसिंह, जोरावरसिंह और गजसिंह का जीवन वृत्त और कवित्त का विवरण है। किशनगढ़ के कृष्णसिंह से महाराजा मदनसिंह तक की पीढ़ियां और महाराजा रूपसिंह

1– इतिहासकार मुंशी देवी प्रसाद, परम्परा भाग 79-80 पृष्ठ 19, 20।

2– वही पृष्ठ 21।

मानसिंह, राजसिंह, सावन्तसिंह, बहादुर सिंह, बिड़दसिंह, कल्याणसिंह और पृथ्वीसिंह की कविताएं और संक्षिप्त जीवनियां दी गई हैं। बूंदी के राव देवा से राजा रघुवीरसिंह, तक की पीढ़ियां और राव बूधसिंह, रामसिंह और विष्णुसिंह की कविताएं और संक्षिप्त जीवनियां दी हैं।" मुंशी देवीप्रसाद ने अपने लेखन में प्रामाणिकता का पूरा ध्यान रखा।

1902-3 ई. में काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अनुरोध पर मुंशी ने मारवाड़ में छानबीन करके हजार हस्त लिखित ग्रन्थों का विवरण भेजा, इससे साहित्य एवं इतिहास के प्रति उसका रूझान स्पष्ट होता है। "मुंशी देवीप्रसाद का स्वभाव सरल और मिलनसार था, और उसका जीवन सादगीपूर्ण था।..... वह अभिमान से परे था और अत्यधिक परिश्रमी भी। वृद्धावस्था में भी 13-14 घंटे कार्यरत रहता था।" उसने शिक्षा-साहित्य व औषधालय हेतु पर्याप्त आर्थिक अनुदान दिया। वह सामाजिक बुराइयों का भी अन्तर मन से विरोधी था। तत्कालीन शिक्षा पर उर्दू में 'ताली मुन्निसवां' पुस्तक प्रकाशित कराई जिस पर अंग्रेज सरकार ने उसे 100/– बतौर इनाम के दिये थे।[1]

मुंशी देवी प्रसाद की बचपन से ही इतिहास में दिलचस्पी थी। टोंक में 1870 ई. में उसने 'मआसिर -इ- आलमगिरी' की पांडुलिपि का अध्ययन कर हिन्दुओं से संबन्धित सामग्री का संकलन कर लिया था। उसके ऐतिहासिक ज्ञान से प्रभावित होकर हाड़ोती व टोंक के पालिटिकल एजेन्ट डबल्यू. जे. डबल्यू. म्यूर ने बूंदी राज्य का गजेटियर तैयार करते समय मुंशी देवी प्रसाद को हिन्दी पांडुलिपियों के संकलन एवं उनके अंग्रेजी अनुवाद का काम सौंपा जिसे उसने गंभीरता से पूरा किया। निःसंदेह मुंशी देवी प्रसाद को संस्कृत का पूरा ज्ञान नहीं था जिसका पछतावा उसे आजीवन रहा था। मुंशी देवीप्रसाद ने कई ऐतिहासिक ग्रन्थों, शिलालेखों, दान-पत्रों, पट्टों, ताम्र पत्रों, मूल दस्तावेजों परवानों, सनदों, वि.सं. 1605-1990 तक के पंचांगों, प्राचीन तस्वीरों, जन्म पत्रियों, चारण, भाट, सेवगों, ढाढी आदि डिंगल भाषा के कवियों का पूर्ण इतिहास, कविताओं के संग्रह आदि इतिहास-विषयक कृत्यों की खोज कर अपने संग्रह को विशाल किया। यों ऐतिहासिक खोज व संग्रह में मुंशी देवीप्रसाद को एक ओर कष्ट सहने पड़े तो दूसरी ओर अत्यधिक धन भी व्यय करना पड़ा था फिर भी शौक व अनुराग जो था उसे पूर्ण परिश्रम के साथ पूरा कर रहा था कि रविवार, जुलाई 15, 1923 ई. (आषाढ़ सुदि 2, 1980 वि) को उसका जोधपुर में ही देहान्त होगया।[2]

1– शाहजहांनामा वही पृष्ठ 11।

2– शाहजहांनामा वही पृष्ठ 9-10।

"स्वभाव से ही मुंशी देवीप्रसाद की प्रवृत्ति इतिहास की ओर अनुसंधानात्मक थी। उसकी दृष्टि पैनी तथा सत्यासत्य विवेचन की शक्ति प्रबल थी।" मुंशी देवीप्रसाद ने 1888 ई. से 1905 ई. तक मारवाड़ राज्य की वार्षिक जन्त्रियां तैयार की थी। इनमें मारवाड़ के तत्कालीन शासक, महाराजकुमार, चंडू पंचांग, ताजीमी सरदार, ठिकाने की रेख, प्रमुख अधिकारियों, परगने के हाकिम आदि का वर्णन है। अगस्त 1890 ई. में उसकी 'मारवाड़ का भूगोल' पुस्तक प्रकाशित हुई थी। मुंशी देवी प्रसाद ने उर्दू में कुछ इतिहास, नीति तथा स्त्री शिक्षा से सम्बद्ध पुस्तकें लिखनी शुरु की किन्तु हिन्दी के व्यापक क्षेत्र का अनुभव कर, हिन्दी में ही लिखने का संकल्प कर लिया था। और तब इस क्षेत्र में उसने मेवाड़, आम्बेर, बीकानेर व वारवाड़ राज्यों के सुप्रसिद्ध वीर नरेशों की जीवनियां लिखकर प्रकाशित करवाई।

1889 ई. से 'चित्रमाला' के अंतर्गत प्रत्येक शासक की अलग-अलग छोटी पुस्तिका के रूप में जीवनियाँ, उनके रेखाचित्रों के साथ छपने लगी। 1890 ई. से ये जीवनियाँ 'प्रसिद्ध चित्रावली' नामक मासिक में छपने लगी। प्रत्येक अंक में 32 से 40 पृष्ठ होते थे। यों यह क्रम 1894 ई. तक चलता रहा। 1890 ई. की जन्त्री में जयचंद से राव तीड़ा तक के प्रारंभिक शासकों के विवरण संकलित कर दिये थे। "इसके अतिरिक्त 'मारवाड़ के राव मालदेव' और जोधपुर के बड़े महाराजा जसवंतसिंह के जीवन–चरित्र उसने प्रकाशित करवाये। आम्बेर (जयपुर) के राजा पृथ्वीराज से भगवंत दास तक का इतिहास और आम्बेर के महाराजा मानसिंह का जीवन-चरित्र भी तब छपवाए थे। मेवाड़ के महाराणा सांगा से लेकर महाराणा प्रताप तक के सब ही शासकों की जीवनियाँ भी इसी क्रम में प्रकाशित की गई। बीकानेर राजघराने के भी राव बीका से लेकर राव कल्याणमल तक के सब ही शासकों के जीवन-चरित्र छपवाए गये। राजस्थान के अन्य किसी राज्य के शासकों के और भी कोई जीवन-चरित्र मुंशी देवीप्रसाद ने प्रकाशित किये हों तो उनके बारे में कोई जानकारी सुलभ नहीं लई है।[1] इन जीवन-चरित्रों में मुंशी देवीप्रसाद को खूब परिश्रम करना पड़ा था जिसे उसने स्वयं स्वीकार किया कि ये जीवन चरित्र "बड़ी मेहनत और तहकीकात से हिन्दी, फारसी ओर अंग्रेजी इतिहास ग्रन्थों की मदद लेकर लिखे गये थे।" इसमें कोई संदेह नहीं है कि ये ऐतिहासिक चरित्र काफी महत्वपूर्ण हैं। डॉ. रघुवीर सिंह के मतानुसार डॉ. गौरीशंकर हीराचंद ओझा के लेख 'कछवाहों के इतिहास में एक उलझन' को पढ़ने से अनुमान होता है कि मुंशी देवीप्रसाद कृत "राजा भारभल" में दी गई जानकारी तथा जहाँगीरनामा की ओर उनका ध्यान नहीं गया था। मुंशी देवीप्रसाद ने इन जीवनियों को यथासम्भव प्रामाणिक बनाने का सुयत्न किया था किन्तु तत्कालीन परिस्थितियों की अपनी सीमा के कारण मुंशी देवीप्रसाद ने यदा–कदा अमान्य और अप्रामाणिक घटनाओं का उल्लेख भी कर दिया था जिसे डॉ० मनोहरसिंह राणावत ने

1– परम्परा, वही पृ. 40–41

अपनी पुस्तक 'सोलहवीं सदी में राजस्थान'[1] अथवा मुंशी देवीप्रसाद कृत 'ऐतिहासिक चरित्रमाला" में सुस्पष्ट किया है।

मुंशी देवीप्रशाद ने काफी ऐतिहासिक सामग्री का संकलन करने के बाद प्रत्येक राजपूत जाति या राजवंश का इतिहास लिखने की सोची और उस क्रम में 1908 ई. में 'प्रतिहार वंश प्रकाश' (खड्ग विलास प्रेस, बांकीपुर से 1911 ई. में प्रकाशित) ग्रन्थ लिखा। इसमें ईदा कर्णसिंह द्वारा दी गई निम्नांकित जानकारी— ईदा पड़िहारों का संक्षिप्त इतिहास, प्राचीन मकान, मंदिर, विवाह के रीति-रिवाज, खानपान आदि को भी संकलित कर दिया। इस भाँति यह ग्रन्थ पड़िहारों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास को लिखने में काफी उपादेय है। मुंशी देवीप्रसाद ने मीरांबाई का जीवन चरित्र लिख कर कई अज्ञात तथ्यों को प्रकट किया है। हालाँकि मीरांबाई के जन्म, जन्म स्थान एवं मृत्यु के बारे में विवाद है जिन्हें डॉ० हुकमसिंह भाटी ने अपनी पुस्तक में ठीक करने का सुयत्न किया है।[2]

मुंशी देवीप्रसाद ने वीर विनोद, कर्नल जेम्स टॉड व 'मारवाड़ के इतिहास में कृष्णाबाई' (मारवाड़ की ख्यातों के आधार पर लिखा कृष्णाबाई का वृतान्त) के आधार पर मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह की सुपुत्री राजकुमारी कृष्णा कुमारी बाई की दुःखद घटना का 'कृष्णाकुमारी बाई' शीर्षक पुस्तक में वर्णन किया है। विद्वान इतिहासकार ने पोकरण के ठाकुर सवाईसिंह को इस घटना के लिये जिम्मेदार ठहराया था। उसने कृष्णाकुमारी से संबंधित कई किंवदंतियों, फुटकर रोचक कविताओं को भी पुस्तक के अन्त में लिया है।

मुंशी देवीप्रसाद ने राजस्थान-इतिहास से संबंधित कई फुटकर लेख भी प्रकाशित करवाये थे जैसे— अजमेर की प्राचीनता, राजपूताने में हिन्दी की दशा, बाजबहादुर और रूपमती का चित्र, महात्मा सूरदास के नाम शेख अबुल फजल का पत्र, कहलूर राज्य के धर्मवीर राजा और रानी, डिंगल कविता, नागरीदासजी की भक्ति, राठोड़ों के राज-चिन्ह, महाराजा पृथ्वीराज चौहान, हिन्दुओं के इतिहास का एक नमूना, मुसलमान बादशाहों के सिक्कों में हिन्दी लिपि, मारवाड़ के प्राचीन शिल्प, राजा टोडरमल कायस्थ नहीं खत्री थे, मेवाड़ में राजतिलक का दस्तूर, मुसलमानी राजत्व में हिन्दी, अकबर के राज्य में राजपूतों की संख्या, फलोदी का शिलालेख, शिवाजी का शासन पत्र आदि उल्लेखनीय हैं।[3]

1– देखें पृ. 20, 35, 40, 44, 53, 58, 62–63, 70–72, 75, 77, 84, 85, 125, 129, 133, 140 की पाद टिप्पणियां।

2– देखें – मीरांबाई : ऐतिहासिक व सामाजिक विवेचन (1986 ई.) पृ. 10, 14

3– विशेष विवरण के लिये देखें– इतिहासकार मुंशी देवीप्रसाद, परम्परा भाग 79–80.

मुग़ल इतिहास :

राजस्थान–इतिहास लेखन में मुस्लिम एवं मुग़ल शासकों के समय में लिखे गये तुर्की, फारसी, अरबी एवं उर्दू–इतिहास ग्रन्थों का महत्व भी कोई कम नहीं है। मुंशी देवीप्रसाद ने बाबरनामा, हुमायूँनामा, अकबरनामा, शेरशाहनामा, शाहजहाँनामा आदि ग्रन्थ हिन्दी व उर्दू भाषा में साथ-साथ ही छपवाये थे जैसे प्रत्येक पृष्ठ के बाएँ आधे हिस्से पर हिन्दी तो आधे दाहिने हिस्से पर उसी का उर्दू रूपान्तर। "उर्दू पाठ में केवल मूल ग्रन्थ में दिये गये हिजरी तारीख, माह, सन् और यदा–कदा इलाही तारीख, माह, सन् भी साथ में दिये हैं। किन्तु हिन्दी पाठ में केवल हिन्दी (विक्रमी) तिथि, माह और वर्ष दिये हैं, जिन्हें मुंशी देवीप्रसाद ने स्वयं चण्डू पंचांग से गणित करके अपने इन इतिहास ग्रन्थों के लिये निकाले थे और यों उसने कोई साढ़े तीन सौ वर्ष की अपनी इतिहास–सहायक जंत्री बना ली थी, जिससे उसे बहुत सहायता मिली थी। मुंशी देवीप्रसाद ने 1906 ई. से प्रकाशित इतिहास ग्रन्थों में केवल हिन्दी पाठ ही दिया है। साथ ही उनमें सर्वत्र हिजरी तारीख, माह और सन् का उल्लेख कर दिया और उनके मुताबिक निकाली गई हिन्दी तिथि, महीने और वर्ष उसके आगे कोष्ठक में ही दे दिये हैं साथ ही विभिन्न हिजरी सनों के प्रारम्भ और अन्त के दिनों के हिन्दी तिथि, माह और वर्ष के उल्लेखों के साथ ही उनके मुताबिक ईस्वी तारीखें, माह और सन् दिये गये हैं। विचार योग्य बात यह है कि केवल 'औरंगजेबनामा (तीनों भाग) में कोष्ठक में हिन्दी तारीखों और माह के साथ ही ईस्वी तारीख और माह का उल्लेख भी कर दिया है।"[1]

मुंशी देवीप्रसाद की भाषा सरल सी थी किन्तु उर्दू के प्रभाव एवं वाक्य विन्यास में उर्दू–फारसी के प्रभाव से वे अपने आपको बचा नहीं पाये। अनुवाद में कहीं–कहीं पूरा अनुवाद किया है वरन् अधिकांशतः सारांश ही लिया, केवल हिन्दुओं से संबंधित किसी बात को छोड़ा नहीं था।

मुंशी देवीप्रसाद ने 'शाहजहाँ-नामा' में बादशाह जहाँगीर के मरने के बाद का वृत्तांत लिखना शुरू कर बुधवार, जून 9, 1658 ई. को शाहजहाँ के बंदी बनाये जाने तक का विवरण देकर उसे समाप्त कर दिया। मुंशी देवीप्रसाद ने भी फारसी इतिहासकारों की परिपाटी का अनुसरण करते हुये शाहजहाँ के शासनकाल के 10–10 जुलूसी वर्षों के प्रत्येक दौर के इतिहास को लेकर 'शाहजहाँनामा' को भी तीन भागों में बांटा है। पहले भाग में शुरूवाद के ढंग से मुंशी देवीप्रसाद ने जहाँगीर की मृत्यु से लेकर शाहजहाँ के गद्दीनशीन होने तक का विवरण दिया है। इसी भांति तीसरे भाग में भी तीसरे दौर की समाप्ति के बाद के शाहजहाँ के कोई सवा वर्षीय शासनकाल का इतिहास लिखकर इसे पूर्ण किया गया। प्रत्येक भाग के अन्त में परिशिष्ट एवं

1– शाहजहांनामा, प्रस्तावना पृ. 12–13.

सहायक सूचियाँ दी हैं। तृतीय भाग के अन्त में 'शेष संग्रह' जोड़ कर शाहजहाँ के व्यक्तित्व, दैनिक जीवन एवं आचार-विचार के साथ-साथ उस समय के मुग़ल साम्राज्य, उसकी शासन व्यवस्था आदि की जानकारी भी उपलब्ध कराई है। मुंशी देवीप्रसाद ने 'शाहजहाँनामा' को 'मुग़ल सम्राट् शाहजहाँ बादशाह का जीवन चरित्र' उप-शीर्षक देकर प्रमुख शीर्षक को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उसने यह ग्रन्थ "बादशाह-नामे वगैरह की फारसी तवारीख की किताबों का सार लेकर हिन्दी में बनाया।" स्वयं मुंशी देवीप्रसाद ने लिखा है कि, "पहिले दो भागों में तो मुल्ला अब्दुल हमीद के बनाए हुए 'बादशाह-नामों' की दोनों जिल्दों का सारांश लिखा है और इस तीसरे भाग में मुल्ला जाहिद (ताहीर) के लिखे हुए पिछले दस वर्षों के हाल का खुलासा दर्ज किया है। और (इस तीसरे भाग में) कहीं-कहीं खाफीखां की किताब से कुछ हाल ले लिया है।"[1]

"अब्दुल हमीद लाहौरीं ने उसके शासन काल के जुलूसी सनों की गणना शाहजहाँ के आदेशानुसार 1 जमादि-उस-सानी से ही की थी, और मुहम्मद ताहिर ने भी अपने ग्रन्थ में इसी क्रम को अपनाया था। परन्तु मुंशी देवीप्रसाद ने अपने 'शाहजहां-नामा' में वर्षों की गणना हिजरी सनों के हिसाब से, अर्थात् 1 मुहर्रम से ही रखी थी। अतः हिजरी माह आदि से अनभिज्ञ अधिकतर संशोधकों को उसकी इस वर्ष गणना का उक्त फारसी इतिहासकारों द्वारा प्रयुक्त जुलूसी सनों के साथ ताल-मेल बैठाने में काफी असुविधा होती रही है।"

मुंशी देवीप्रसाद ने अब्दुल हमीद लाहोरी कृत 'पादशाह-नामा' का शीर्षक 'बादशाह-नामा' लिखा है किन्तु उसकी यह मान्यता ठीक नहीं है, क्योंकि स्वयं शाहजहाँ ने इसका शीर्षक 'पादशाह-नामा' लिखा है, अतएव वही सही एवं मान्य होना चाहिए। अब्दुल हमीद लाहोरी के इस ग्रन्थ की दोनों जिल्दों का प्रकाशन 1866-72 ई. में एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता ने अपनी 'बिबलोथिका इण्डिका' ग्रंथमाला में करा दिया था। फलतः मुंशी देवीप्रसाद ने अपने 'शाहजहाँ-नामा' के प्रथम दो भागों में लाहोरी के 'पादशाहनामा' की सभी महत्वपूर्ण बातों को लेकर संकलित कर दिया। साथ ही 'पादशाह-नामा' के दोनों भागों के अंत में दी गई शाहजहाँ के शासनकाल के दोनों दौरों के शाही मनसबदारों की सूचियों में से केवल हिन्दू मनसबदारों कौ सूचियाँ लेकर उन्हें 'शाहजहाँ-नामा' के दूसरे भाग के अन्त में दे दी गई है।[2]

1- शाहजहाँनामा (प्रस्तावना) पृ. 12-14

2- शाहजहाँ नामा (प्रस्तावना) पृ. 14

मुंशी देवीप्रसाद को मुहम्मद ताहिर विरचित 'मुलख्खस' अर्थात् 'शाहजहाँ-नामा' को पांडुलिपि मिल गई थी अतएव उसने शाहजहाँ के शासनकाल के तीसरे दौर के इतिहास हेतु इसका उपयोग किया था। "शासकीय इतिहास-ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया होने के कारण 'मुलख्खस' में दिया गया शाहजहाँ के शासन-काल के तीस वर्षों का विवरण प्रामाणिक तो अवश्य ही है, परन्तु अपने इस संक्षिप्त 'शाहजहाँ-नामा' के संकलनार्थ विभिन्न घटनाओं अथवा विविध जानकारी का चयन करने में मुहम्मद ताहिर ने अपना विशिष्ट निजी दृष्टिकोण अपनाया था, जिससे उसमें ऐसे अनेकों वृत्तों का समावेश नहीं हो सका, जिन्हें जानकर अपने 'शाहजहाँ-नामा' में समाविष्ट करने को मुंशी देवीप्रसाद स्वयं विशेष समुत्सुक था।"[1]

मुंशी देवीप्रसाद ने 1864 ई. में प्रकाशित एवं सर सैयद अहमद द्वारा सम्पादित तुजुक-इ-जहांगीरी का कोई चार वर्ष परिश्रम करके हिन्दी अनुवाद किया है। 'जहांगीरनामा' को मुंशी देवीप्रसाद ने दो भागों में विभक्त कर, प्रथम भाग में जन्म से लेकर 14वें वर्ष तक (12वें जुलूसी सन) और दूसरे भाग में 14वें वर्ष के शेष वृत्तान्त से लेकर 24वें वर्ष (22वें वर्ष) में उसकी मृत्यु तक का वृत्तान्त दिया है। मुंशी देवीप्रसाद ने मूल तुजुक-इ-जहांगीरी में वर्णित शासनकाल की गणना जुलूसी सनों के आधार पर न कर अपने जहांगीरनामा में हिजरी सनों, 1 मुहर्रम के हिसाब से की थी। अतएव यह अन्तर रह गया है। मुंशी देवीप्रसाद ने जहांगीरनामा की भूमिका में ही इसके अनुवाद एवं सम्पादन का उद्देश्य स्पष्ट किया है कि, "अकबर और शाहजहां के इतिहास उनके नौकरों के लिखे हुए हैं। उनमें कुछ-कुछ खुशांमद और अत्युक्ति भी है। पर जहांगीर ने अपना इतिहास आप लिखा और ठीक लिखा है क्योंकि नौकर लोग कभी-कभी बादशाह के घर, दरबार, राज्य कार्य, स्वभाव आदि की बातें वैसी खुलकर नहीं लिख सकते जैसी जहांगीर ने अपने आप लिखी है। लिखी भी ऐसी कि पढ़ कर आनन्द आता है। क्योंकि केवल इतिहास ही नहीं किन्तु न्याय, नीति, लौकिक रीति, विद्या विनोद और नये संस्कारों की कितनी ही बातें भी इसमें आ गई हैं।" इसी में उसने जहांगीर के चरित्र का उल्लेख भी किया है कि "आश्चर्य है कि जो बादशाह आज तक लोगों में मौजी, विलासी, शराबी, शिकारी आदि कहलाता है, वह ऐसा विद्वान, बुद्धिमान और लिखने-पढ़ने में सावधान हो कि उसकी लेखनी का एक-एक अक्षर ध्यान देने योग्य हो।" मुंशी देवीप्रसाद ने जहांगीरनामा के सम्पादन में मोहम्मद शरीफ मोतमिद खां (जहांगीर के समय बक्षी-पद पर नियुक्त था) के 'इकबालनामा-इ-जहांगीरी' का खूब उपयोग करते हुए कई स्थलों पर पाठान्तर भी दिया है और अपने सम्पादित ग्रन्थ में आई भूलों को भी सुधारा है।[2]

1– वही पृ. 16–17, 101–20.

2– जहांगीरनामा पृ. 1.

मुंशी देवीप्रसाद ने मोहम्मद साकी मुस्ताइद कृत 'मश्रासिर-इ-आलमगीरी' का अनुवाद (उलथा) कर औरंगजेब पर हिन्दी में 'औरंगजेब नामा' लिखा जो तीन भागों में खेमराज कृष्णदास बम्बई द्वारा 1909 ई., 1910 ई. एवं 1913 ई. में प्रकाशित हुआ। इसके प्रथम भाग में शुरू से 10 वर्ष तक, दूसरे में 11 से 26 वर्ष और तीसरे में 27 से 43वें जुलूसी वर्ष तक का जिक्र है। 'औरंगजेबनामा' के प्रारम्भ में मुगलों की पीढ़ियाँ और तैमूरिया बादशाहों का इतिहास (अमीर तैमूर से शेख उमर मिर्जा तक) संक्षेप में दिया गया है। यह विवरण डॉ० राणावत के अनुसार मुस्ताद साकी कृत मश्रासिर-इ-आलमगीरी में नही है। तदपश्चात बादशाह शाहजहाँ की बीमारी से विवरण 'मश्रासिर-इ-आलमगीरी' से ही अनुवादित किया गया है।

यों तो मुंशी देवीप्रसाद ने 'मश्रासिर-इ-आलमगीरी' को ही अनुवाद हेतु अपना प्रमुख ग्रन्थ रखा किन्तु इस ग्रन्थ के विवरणों की जाँच–पड़ताल हेतु कई अन्य ग्रन्थों का सहारा भी लिया था जिनमें फारसी–उर्दू के आकिल खां कृत वाकयात-इ-आलमगीरी, मौहम्मद सालेह नियामत खां कृत वाकियात-इ-नियामत खान-इ-अली, मुहम्मद हाशिम खाफी खां कृत मुन्तखब-उल-लुबाब, सुजानराय खत्री विरचित खुलासात-उत-तवारीख, बख्तावर खां कृत मितातुल–आलम, न्यामत खां अली कृत जंगनामा, मुंशी जीवनराम कृत तवारीख मोहम्मदशाही, गुलाम हुसैन तावतबाई कृत सियारूल मुताखिरीन, तवारीख-इ-मुजफ्फरी, मुंशी जुकाउल्लाह खां का बादशाहनामा, औरंगजेब के समय के कागज–पत्रों, फ्रैन्काइस बर्नियर, मनूची, जान ओवेंकटन एवं डाक्टर जमीली क्रीरी के यात्रा वर्णनों आदि का अध्ययन विशेष उल्लेखनीय है। अनुवाद करते समय उसने जुलूसी सन, माह व तारीखों के साथ विक्रमी संवत्, महीने, तिथियाँ, ईस्वी सन् एवं उसकी तारीखें भी जोड़ी हैं। मुंशी देवीप्रसाद ने 'मश्रासिर-इ-आलमगीरी' में आये गलत वारों, तिथियों को भी सुधार कर यथास्थान पाद टिप्पणी में दे दिया है। इस प्रकार से 'औरंगजेब नामा, मुंशी देवींप्रसाद के 6 महिनों के कठोर परिश्रम का फल है जिसमें 1700 ई. तक का विवरण मिलता है।[1]

मुंशी देवीप्रसाद ने 'खानखाना नामा' भाग एक–दो, अकबर के वजीर अब्दुल रहीम खानखाना के जीवन चरित्र के रूप में पहले उर्दू में प्रकाशित करवाया तदनन्तर हिन्दी में। प्रथम भाग में खानखाना के वंशजों का कुछ वर्णन करके बैराम खां का विस्तृत विवरण दिया गया है। दूसरे भाग में अब्दुर्रहीम खां के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सविस्तार वर्णन है। अन्त में खानखाना तथा उसके पुत्रों की जन्म पत्रियाँ, खानखाना की प्रशंसा के कवित्त, खानखाना के नाम आये अकबर के फरमान आदि जोड़ कर ग्रन्थ को उपादेय बना दिया है।

1– परम्परा, वही पृ. 59

इस ग्रन्थ को तैयार करने में मुंशी देवीप्रसाद ने कई अन्य ग्रन्थों का उपयोग भी किया है जैसे– रोजेतुलसफा, हबीब-उल-सियर, तुजुक-इ-बाबरी, मआसिर-उल्-उमरा, तजकीर-इ-खावानीन, अकबरनामा, तुजुक-इ-जहांगीरी आदि विशेष उल्लेखनीय है।[1]

मुंशी देवीप्रसाद की विभिन्न कृतियों की छानबीन कर डॉ. राणावत ने अब तक प्राप्त उर्दू की तवारीख मेवाड़, तुजुक-ई-हिन्द, मीजाने अदालत, ख्वाब राजस्थान, तवारीख मारवाड़ आदि 27 पुस्तकों; हिन्दी भाषा में लिखे मारवाड़ के राव मालदेव का चरित, राव लूणकरणजी की जीवनी, विद्यार्थी विनोद, मुगल राजवंश, बाजबहादुर और रूपमती आदि 66 विभिन्न ग्रन्थों एवं शोध–लेखों के साथ ही 62 स्फुट लेखों व समीक्षा की सूची दी है।

यों 'राजस्थान का उज्जवल रत्न', 'भारती का सपूत एवं सच्चा सेवक' "मुंशी देवीप्रसाद की ज्ञान–पिपासा असीम और उसका उत्साह अदम्य था। वह बहुत ही परिश्रमी और अपनी धुन का बड़ा पक्का था। जिस काम को हाथ में ले लेता था, उसे पूरा करके ही छोड़ता था। यही कारण था कि अपने सीमित साधनों तथा तत्कालीन परिस्थितिजन्य अनेकानेक क्षेत्रीय कठिनाइयों के होते हुए भी राजस्थान में अपने इतिहास के प्रति अनोखी नई जागरूकता उत्पन्न करने में वह सर्वथा अनपेक्षित योगदान दे सका था। साथ ही इस प्रकार राजस्थान के इतिहास, संस्कृति और साहित्य विषयक आधार–सामग्री के संकलन तथा हिन्दी में महत्वपूर्ण उपयोगी ऐतिहासिक ग्रन्थों के प्रकाशन के द्वारा मुंशी देवीप्रसाद ने अनुपम साहित्य–सेवा ही नहीं की, परन्तु राजस्थान के इतिहास, संस्कृति और साहित्य के गम्भीर अध्येताओं तथा चिन्तनशील जिज्ञासु संशोधकों को विशेष प्रेरणा और नया दिशा बोध भी दिया।"[2]

1– वही पृ. 61–62.

2– वही पृ. 62–63, शाहजहांनामा (प्रस्तावना) पृ. 11–12

डॉ. गौरीशंकर हीराचंद ओझा

डॉ. हुकमसिंह भाटी

निदेशक,

प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर

भारतीय पुरातत्व के प्रकाण्ड विद्वान और राजपूताने के इतिहास के यशस्वी लेखक गौरीशंकर ओझा का जन्म मंगलवार, 15 सितम्बर, 1863 ई. (भाद्रपद सुदि 5, 1920) को भूतपूर्व सिरोही राज्य के रोहेड़ा ग्राम में हीराचंद के घर में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही प्राप्त करने के पश्चात् उच्च शिक्षा के लिये 1877 ई. में ओझा को बम्बई भेजा गया। 1885 ई. में उन्होंने एलफिस्टन हाई स्कूल से मेट्रिकुलेशन परीक्षा पास की परन्तु अगले वर्ष रोग ग्रस्त हो जाने से इण्टरमिडियेट की परीक्षा देने से वे वंचित ही रहे। एशियाटिक सोसायटी बम्बई के पुस्तकालय में रहकर भारत के प्राचीन इतिहास और प्राचीन लिपि के बारे में काफी जानकारी प्राप्त करने के बाद वे अपने गांव रोहेड़ा लौट आये। टॉड के ग्रन्थ पढ़ कर उन्हें मेवाड़ के दर्शन करने और उसके इतिहास का गम्भीर अध्ययन और मनन करने की उत्कट अभिलाषा हुई। फलत: 1888 ई. में वे गोगूंदे के रास्ते पैदल चलते हुए उदयपुर पहुंचे। कविराज श्यामलदास उनकी विद्वता और लगन से इतने प्रभावित हुए कि उन्हें अपने इतिहास कार्यालय में सहायक मंत्री का कार्य-भार सौंप दिया।[1] उस समय वीर-विनोद सारा लिखा जा चुका था और दो-तिहाई छप भी गया था। कुछ समय बाद ही उन्हें कार्यालय का मंत्री बना दिया गया। यों मेवाड़ के भिन्न-भिन्न ऐतिहासिक स्थलों को देखने और ऐतिहासिक सामग्री संकलित करने का बहुत अच्छा अवसर उन्हें मिल गया।[2]

उदयपुर में जब विक्टोरिया हाल के पुस्तकालय और म्यूजियम खोले गये तो वहां अध्यक्ष नियुक्त हुए। वहां पुरातत्व विभाग के लिए उन्हें शिलालेखों, सिक्कों, मूर्तियों आदि ऐतिहासिक सामग्री संग्रह करने का अवसर प्राप्त हुआ तथा सत्रह साल की अवधि में उन्होंने इस संग्रहालय को सुसमृद्ध बना दिया। यहां रहते हुए 31 वर्ष

1– डॉ. रघुवीरसिंह : राजस्थान के प्रमुख इतिहासकार, पृ. 34

2– डॉ. गौरीशंकर हीराचंद ओझा : राजपूताने का इतिहास, पहली जिल्द, पृ. 44

की आयु में ही उन्होंने प्राचीन लिपिमाला नामक ग्रन्थ लिख कर पुरातत्व जगत में विशिष्ट ख्याति अर्जित कर ली ।[1]

उदयपुर में रहते हुए अवकाश के समय शोध सामग्री के संकलन हेतु उन्होंने कई यात्राएं कर अपार कष्ट सहे । 1898 ई. में काठियावाड़ के जामनगर राज्य में तो काबों ने उन्हें लूट लिया परन्तु उन्होंने तनिक भी साहस नहीं खोया । शोध की तरफ उनकी प्रवृत्ति बढ़ती गई और उन्होंने भारतीय ऐतिहासिक ग्रंथमाला प्रकाशित करने का निश्चय कर कर लिया । इसके अन्तर्गत सोलंकियों का प्राचीन इतिहास 1907 ई. में लिखा परन्तु वे कुछ कारणों से उक्त ग्रन्थमाला के अन्य भाग प्रकाशित नहीं कर सके । टॉड राजस्थान का उन्होंने अध्ययन ही नहीं किया अपितु कुछ प्रकरणों का सम्पादन कर ऐतिहासिक भूलों का सुधार किया ।

उदयपुर में वे लार्ड कर्जन के संपर्क में आये । ओझा के पांडित्य से कर्जन इतने प्रभावित हुए कि अजमेर में म्यूजियम खोलकर उन्हें अध्यक्ष बना दिया और पूरे तीस वर्ष तक उसी पद पर कार्यरत रहे । उस समय राजपूतों के अनेक राज्यों में भ्रमण करने का सुअवसर मिला और काफी सामग्री उन्होंने वहां इकट्ठी कर ली । वहीं रहते हुए उन्होंने 1911 ई. में सिरोही राज्य का इतिहास लिखा । इसके बाद राजपूताने के राज्यों का इतिहास लेखन हेतु सामग्री बटोरनी प्रारंभ कर दी और जीवन भर वे निरंतर अध्ययन व लेखन कार्य में लगे रहे ' उन्हे 1914 ई. में रायबहादुर का खिताब मिला तथा 1927 ई. में भरतपुर अधिवेशन तथा नडियाद में हुंई गुजरात साहित्य सभा के सभापति मनोनीत किये गये । 1928 ई. में उन्होंने हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद में मध्यकालीन भारतीय संस्कृतियों पर तीन भाषण दिये । 1933 ई. में ओरियण्टल कान्फ्रेंस, बडोदा में इतिहास विभाग के अध्यक्ष बने । 1937 ई. में साहित्य वाचस्पति और वाचस्पति की पदवी से उन्हें विभूषित किया गया । 1937 ई. में ही काशी विश्वविद्यालय से डी. लिट. की उपाधि मिली गुरुवार 17 अप्रेल, 1947 ई. को अपनी जन्म भूमि रोहेडा में ही ओझा का देहावसान हो गया ।

ओझा को इतिहास लिखने की प्रेरणा टाड राजस्थान से मिली जैसा कि वे लिखते है टॉड के राजस्थान के इतिहास को पढने से मेरे हृदय पर बडा प्रभाव पडा । राजपूतों की स्वदेश भक्ति आत्मत्याग, तथा आदर्श वीरता के अनेक उदाहरण पढकर में मुग्ध हो गया और राजपूताने का निवासी होने के कारण यहां का विस्तृत इतिहास जानने के लिये मैं उत्सुक हुंआ और उत्कंठा इतनी बढी कि मैंने राजपूताने के राजाओं के दरबार, प्राचीन दुर्ग, रणक्षेत्रादि सब ऐतिहासिक स्थान देखने तथा शिलालेख ताम्रपत्र आदि संग्रह करने का निश्चय करलिया ।[2] यों इतिहास उनका प्रिय विषय बन गया

1– राजपूताने का इतिहास, पहली जिल्द, पृ. 44-45

2– राजपूताने का इतिहास, पहली जिल्द, भूमिका, पृ. 44

श्रौर इतिहास के महत्व को वे भलीभांति जानने लग गये। उनके शब्दों में इतिहास के द्वारा हमे किसी देश अथवा जाति की अतीत कालीन संस्कृति और उसके उत्थान एवं पतन के क्रमिक विकास का ज्ञान होता है। इतिहास सभ्यता व उन्नति का द्योतक तथा पूर्वजों की कीर्ति का अमर स्तम्भ है। वह अतीत का आभास देकर वर्तमान का निर्माण और भविष्य का पथ प्रदर्शन करता है। ....इतिहास जीवन और जागृति का प्रभाव है।[1]

आधार स्त्रोत व लेखन पद्धति

शिलालेख, दानपत्र, सिक्के, हस्तलिखित ख्यातें, बातें, रावभाटों की बहियें, राजस्थानी व संस्कृत के काव्य, गुजराती व मराठी भाषाओं के ग्रन्थ, फारसी ग्रन्थों का अनुवाद और विदेशी यात्रियों के विवरण उनके इतिहाह लेखन के आधार स्त्रोत रहे हैं। इतिहास विषयक प्रकाशिक पुस्तकों का भी उन्होंने पूरा अध्ययन किया था। प्रत्येक घटना के वर्णन में प्राप्त सभी आधार स्त्रोतों का उपयोग करते हुए अपनी सूझ-बूझ से उसकी सत्यता को प्रमाणित करने का यथासम्भव प्रयास ही नहीं किया बल्कि संदर्भ सामग्री का सुस्पष्ट उल्लेख पाद टिप्पण में दिया है। यों राजपूताने के इतिहास में आधार स्त्रोतों का इसप्रकार पाद टिप्पण में उल्लेख करने की परम्परा ओझा ने ही डाली थी। संदर्भ सामग्री का मात्र उल्लेख करके ही उन्होंने संतोष नहीं किया बल्कि उसके बारे में यत्र तत्र आवश्यक जानकारी भी दे दी है। इस प्रकार की सूचनाएं संदर्भ खोजने व ऐतिहासिक तथ्यों तक पहुंचने में मार्ग दर्शन करने वाली हैं। उन्होंने राज्यों के इतिहास लखन का एक प्रारूप बना लिया था। उसी के अनुरूप अपनी लेखनी चलाई। प्रत्येक राज्य के इतिहास में सबसे पहले राज्य का नामकरण, क्षेत्रफल, नदी-नाले, पशु-पक्षी, दुर्ग, सड़कें, जनसंख्या, धर्म, जाति, त्यौहार आदि का संक्षिप्त विवरण दिया है। इसके बाद प्राचीन व प्रसिद्ध स्थलों का वर्णन है। फिर राजवंश की स्थापना के बाद उस राज्य का क्रमबद्ध राजनैतिक इतिहास दिया है। कला व साहित्य के प्रति यहां के शासकों के अनुराग को दर्शाने का जहां प्रयास किया है वहां उनकी रानियो, कुंवर-कुंवरियों का उल्लेख भी है। अन्त में उस राज्य के सामन्तों व प्रसिद्ध घरानों के बारे में आवश्यक सामग्री का समावेश किया है।

भारतीय प्राचीन लिपिमाला (1894 ई.)

1893 ई. तक कोई ऐसी पुस्तक नहीं थी जिसकी सहायता से प्राचीन लिपियों को पढ़ने का अभ्यास किया जा सके। इसकी पूर्ति हेतु ओझा ने यह ग्रन्थ कड़ी मेहनत करके तैयार किया। इस ग्रन्थ की न केवल भारत के विद्वानों ने सराहना की बल्कि यूरोप के विद्वानों ने इसे बड़ा उपयोगी बतलाया। ओझा ने भारत की प्राचीन लिपि के महत्व को दर्शाते हुए लिखा है—"मनुष्य की बुद्धि के सबसे बड़े महत्व के दो

1— बीकानेर राज्य का इतिहास भाग- 1, भूमिका पृ. 1

कार्य भारतीय ब्राह्मी लिपि और वर्तमान शैली के अंकों की कल्पना है। इस बीसवीं शताब्दी में भी हम संसार की बड़ी उन्नतिशील जातियों की लिपियों की तरफ देखते हैं तो उनमें उन्नति की गंध भी नहीं पाई जाती। नहीं तो ध्वनि और उसके सूचक चिन्हों में साम्य ही नहीं है। जिससे एक ही चिन्ह से एक से अधिक ध्वनियां प्रकट होती हैं और कहीं एक ही ध्वनि के लिये एक से अधिक चिन्हों का व्यवहार होता है और अक्षरों के लिये कोई शास्त्रीय क्रम ही नहीं। कहीं लिपि वर्णात्मक नहीं किंतु चित्रात्मक ही है। ये लिपियां मनुष्य जाति के ज्ञान की प्रारम्भिक दशा की निर्माण स्थिति से अब तक कुछ भी आगे नहीं बढ़ सकी परन्तु भारतवर्ष की लिपि हजारों वर्षों पहिले भी इतनी उच्च कोटि को पहुंच गई थी कि उसकी उत्तमता की कुछ भी समानता संसार भर की कोई दूसरी लिपि अब तक नहीं कर सकती। इसमें ध्वनि और लिखित वर्ण का संबंध ठीक वैसा ही है जैसा कि फोनोग्राफ की ध्वनि और उसकी चूड़ियों पर के चिन्हों के बीच है। इसमें प्रत्येक आर्य ध्वनि के लिये अलग-अलग चिन्ह होने से जैसा बोला जावे वैसा ही लिखा जाता है और जैसा लिखा जावे वैसा ही पढ़ा जाता है तथा वर्णक्रम वैज्ञानिक रीति से स्थिर किया गया है। यह उत्तमता किसी अन्य लिपि में नहीं है।"[1]

ओझा की यह मान्यता है कि ब्राह्मी लिपि के समझने के बाद दूसरी लिपियों को आसानी से पढ़ा जा सकता है क्योंकि दूसरी लिपियों में थोड़ा बहुत अन्तर पड़ता जाता है जिसे सीखने में अधिक श्रम नहीं करना पड़ता। ओझा ने पहले ब्राह्मी व खरोष्ठी लिपि की उत्पत्ति के बारे में प्रकाश डाला है। बाद में शिलालेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों, दान-पत्रों पर उत्कीर्ण ब्राह्मी, गुप्त, कुटिल, नागरी, शारदा, बंगला, पश्चिमी, मध्यप्रदेशी, तेलगु, कनड़ी, कलिंग, तामिल, खरोष्ठी आदि लिपियों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी दी है। इसके लिये ओझा ने विविध 84 लिपि पत्र तैयार कर अलग-अलग भाषाओं के अक्षरों की आकृति का बोध कराया। फिर भारतवर्ष की प्रमुख लिपियों व अंकों की उत्पत्ति के बारे में उल्लेखनीय जानकारी दी है। लेखन सामग्री के बारे में भी ज्ञान कराया है। भारत में प्रचलित 34 सन् संवतों के बारे में भी अनेक आवश्यक बातें दी हैं।

कलकत्ता विश्वविद्यालय ने इस पुस्तक को उक्त विषय की पाठ्य पुस्तक स्थिर किया, फलस्वरूप कुछ वर्षों में ही उसकी सब प्रतियां बिक गई तब इसका परिवर्द्धित परिशोधित दूसरा संस्करण 1918 ई. में निकाला गया। इस महत्वपूर्ण ग्रंथ के लिये 1924 ई. के दिल्ली अधिवेशन में हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने ओझा को मंगला प्रसाद पुरस्कार प्रदान किया।[2] 1971 ई. में लिपमाला का तीसरा संस्करण निकाला गया।

1– भारतीय प्राचीन लिपिमाला (1971 ई.) भूमिका, पृ. 7.

2– राजस्थान के प्रमुख इतिहासकार, पृ. 35.

सोलंकियों का प्राचीन इतिहास (प्रथम भाग) (1907 ई.)

एपिग्राफिका इण्डिका, बम्बई की एशियाटिक सोसायटी के जर्नल व अन्य पत्र-पत्रिकाओं में छपे शिलालेखों व ताम्रपत्रों के आधार पर सोलंकियों का प्राचीन इतिहास उजागर करने का प्रयास किया है। इसमें कुल 12 प्रकरण हैं। पृथ्वीराज रासो आदि ग्रन्थों में सोलंकियों को अग्नि वंशी होना बताया है परन्तु ओझा ने कई प्राचीन शिलालेखों व ताम्रपत्रों के उद्धरण प्रस्तुत कर सोलंकियों को चंद्रवंशी होना प्रमाणित किया है।[1]

ओझा के मतानुसार सोलंकी पहले अयोध्या में रहे फिर दक्षिण में आये तथा वहां से गुजरात, राजपूताना, बुंदेलखण्ड में फैल गये। इस प्रकार उन्होंने अपनी सुविधानुसार सोलंकियों के इतिहास को तीन भागों में विभक्त किया है— दक्षिण, पश्चिम व पूर्व। दक्षिण के सोलंकियों की मुख्य उपलब्धियों का विवरण प्रस्तुत करने के बाद बदामी व कल्यांण के पश्चिमी सोलंकियों का वर्णन है। तदन्तर पिठ्ठापुर, श्री कुर्मम्, विशाखापट्टनम आदि के पूर्वी सोलंकियों का विवेचन दिया है। प्रामाणिक सामग्री के आधार पर सोलंकियों के वंश–वृक्ष भी यथा-स्थान दिये हैं। यों सोलंकियों के प्राचीन इतिहास के अध्ययन हेतु 208 पृष्ठों में बहुत ही महत्वपूर्ण सामग्री समाहित कर दी है।

सिरोही राज्य का इतिहास (1911 ई.)

जोधपुर के महाराजा मानसिंह द्वारा 1817 ई. में आक्रमण करने पर सिरोही राज्य की इतिहास सामग्री प्रायः नष्ट हो गई थी इसलिये ओझा को वहां से कोई ख्यात अथवा पुराने इतिहास की सामग्री राजघराने से प्राप्त नहीं हुई। फिर भी ओझा ने तीन मास कठोर परिश्रम कर बड़वों की बहियों, ताम्रपत्रों, शिलालेखों के आवश्यक टिप्पण संकलित किये और कई–एक महत्वपूर्ण हस्तलिखित बहियों की नकलें की। इस प्रकार संग्रह की गई सामग्री की पूर्ण-रूपेण जांच–पड़ताल करने के बाद 1899 ई. में उन्होंने सिरोही राज्य का इतिहास लिखना प्रारम्भ किया। 1904 ई. तक 6 प्रकरण लिखे तथा पीछे के 100 वर्ष के करीब का वृत्तान्त लिखने में सिरोही के दफ्तर से आवश्यक सामग्री मंगवाई और अनुसंधान कर सिरोही राज्य का इतिहास तत्कालीन महाराव केसरीसिंह तक लिखा।

प्रारम्भ में भौगोलिक स्थिति की जानकारी देते हुए प्रसिद्ध व प्राचीन स्थानों के बारे में कई महत्वपूर्ण सूचनाएं दी हैं। प्राचीन स्थानों के नाम इस प्रकार हैं– सिरोही, सारणेश्वर, बामणवारजी, झाड़ोली, पीडवाडा, अजरी, वसंतगढ़, नांदिया, कोजरा, रोहेड़ा, वासा, नीतोरा, कायद्रां, ओर, ऋषीकेश, खराडी, चन्द्रावती, मूंगथला, गिरवर,

---

1– सोलंकियों का प्राचीन इतिहास, पृ. 12

दतानी, नीबोरा, वर्माण, कुसमा, हणाद्रा, धांधपुर, हाथल, असावा, टोकरा, सणपुर, एरनपुर, शिवगंज, आबू, अर्बुदादेवी, देलवाड़ा, अचलगढ़, ओरिआ, गुरूशिखर, गौमुख, गौतम, बास्थानजी। इसके बाद सिरोही के प्राचीन राजवंशों यथा मौर्य, क्षत्रप, गुप्त, हूंण, वैस, चावड़ा, गुहिल, पडिहार, सोलंकी, परमार वंश का वर्णन है। चौहानों की उत्पत्ति के बारे में विवेचन देते हुए उन्होंने पृथ्वीराज रासो व टॉड राजस्थान के कथनों का खण्डन किया है। चौहानों के मूल पुरुष चाहमान से वाकपातिराज तक के सांभर के चौहान का विवरण दिया है, बाद में लक्ष्मण से केलण तक के नाडोल के चौहानों एवं जालोर के कीर्तिपाल, समरसिंह व उदयसिंह की जीवन घटनाओं व उनकी मुख्य उपलब्धियों पर प्रकाश डाला है। समरसिंह के पुत्र उदयसिंह के भाई मानसिंह से सिरोही के देवड़ा चौहानों का प्रादुर्भाव होना स्वीकारा है।[1] इसके बाद महाराव मानसिंह तक संक्षिप्त विवरण देकर आगे राव सुरताण से महाराव केशरीसिंह तक के नरेशों का विस्तार से इतिहास लिखा है।

सिरोही राज्य के इतिहास संबंधी नैणसी की ख्यात के संवतों व घटनाओं की पूरी जांच कर अशुद्धियों को शुद्ध करने का प्रयास किया है।[2] "मिराते सिकंदरी" में दिये गये सिरोही शासकों के नामों को संदिग्ध ठहराया है।[3] राव सुरताण के बारे में अबुल फजल के विवरणों को शंका की दृष्टि से देखा है।[4] भीलों की लूटमार, सामंतों के बखेड़े, सिरोही राज्य का दूसरे राज्यों से संबंध आदि कई पहलुओं को दर्शाया गया है। यत्र-तत्र लखावत, डूंगरावत व बजावत आदि देवड़ों की उपशाखाओं का भी विवरण मिलता है। अंग्रेजों के साथ हुए अहदनामों का उल्लेख करते हुए सिरोही राज्य में शान्ति स्थापित करने का श्रेय अंग्रेजों को ही दिया है।

राजपूताने का प्राचीन इतिहास (1925 ई.)

यह पुस्तक 1925 ई. में प्रकाशित हुई और 1937 में इसका दूसरा संस्करण निकला। इसकी विशद भूमिका में ओझा ने इतिहास का महत्व और इसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए राजपूताना के इतिहास विषयक प्रकाशित पुस्तकों, शिलालेखों, ताम्रपत्रों, हस्तलिखित ग्रन्थों का विवेचन दिया है। पहले इसमें राजपूताने की भौगोलिक स्थिति के बारे में जानकारी दी है फिर विन्सेंट स्मिथ आदि विदेशी विद्वानों की राजपूतों के शक, कुशाण, हूण, गोड़, भड़ तथा गुर्जर जातियों से उत्पन्न होने की निर्मूल कल्पना की जांच-पड़ताल की है। इसी प्रकार चौहान, सोलंकी, प्रतिहार और परमार वंशियों को अग्निवंशी मानने के मत का खण्डन किया है। प्राचीन राजपूतों

1- सिरोही राज्य का इतिहास, पृ. 183.

2- सिरोही राज्य का इतिहास, पृ. 187.

3- सिरोही राज्य का इतिहास, पृ. 197.

4- सिरोही राज्य का इतिहास, पृ. 237.

के रीति-रिवाज, उनका सैन्य प्रबंध, राज्य-व्यवस्था आदि सामाजिक व प्रशासनिक पहलुओं को उजागर करने का प्रयास किया है। राजपूताने से संबंध रखने वाले प्राचीन राजवंशों में मौर्य, क्षत्रप (शक), कुशाण, गुप्त, हूण, गुर्जर, बैस, चावड़ा, प्रतिहार, परमार, नाग, तंवर, दहिया, दाहिमा, निकुंप, डोडिया और गौड़ आदि वंशों का ताम्रपत्रों व शिलालेखों के आधार पर प्रामाणिक विवरण दिया है। तत्पश्चात् मुसलमानों, मराठों और अंग्रेजों का राजपूताने से संबंध के बारे में जानकारी दी है जो कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। परिशिष्ट में क्षत्रियों के गोत्र तथा इनके नामान्त में सिंह पद का प्रचार कैसे हुआ, इस विषय पर अपने विचार प्रकट किये हैं।

उदयपुर राज्य का इतिहास

ओझा ने उदयपुर प्रवास के समय सील किये नये वीर-विनोद की प्रति चतुराई से अपने पठन हेतु रखली थी। इस ग्रन्थ को मूल आधार बना कर उन्होंने इस राज्य का इतिहास वर्तमान ढंग से लिखा। इतिहास दो भागों में प्रकाशित हुआ।[1]

प्रथम जिल्द (1928 ई.)

प्रारम्भ में भौगोलिक स्थिति का बोध कराते हुए उदयपुर, आहाड़, एकलिंगजी, नागदा, श्रीनाथजी, कांकड़ोली चारभुजा, रूपनारायण, कुम्भलगढ़, जावर, चावण्ड, ऋषभदेव, चित्तौड़गढ़, नगरी, मांडलगढ़, बीजोल्या, मैनाल, बाड़ोली, देलवाड़ा, करेडा आदि प्रसिद्ध व प्राचीन स्थानों के बारे में उपयोगी सामग्री जुटाई गई है। इसके बाद उदयपुर राजवंश की प्राचीनता के बारे में विवेचन प्रस्तुत करते हुए इस वंश के बारे में विद्वानों की भ्रांत धारणाओं का निराकरण करने का सुप्रयास किया है। इस राजवंश से अंकुरित होने वाली शाखाओं के बारे में भी जानकारी दी गई है। प्राचीन शिलालेखों व ताम्रपत्रों के संदर्भ उद्धृत कर गुहिल से रत्नसिंह तक के शासकों की महत्वपूर्ण उपलब्धियों को उजागर करने का जहां प्रयास किया है वहां उनके जीवन घटनाओं के बारे में भी यथासाध्य प्रकाश डाला है। ख्यातों, बड़वों व भाटों की बहियां, टॉड राजस्थान, और वीर-विनोद में दी हुई अनेक त्रुटित वंशावलियों, अशुद्ध संवतों, संदिग्ध विवरणों को ठीक कर गुहिलों के अंधकारमय इतिहास को प्रकाश में लाने का यत्न किया है। भण्डारकर ने गुहिलों को ब्राह्मण होना बतलाया परन्तु ओझा ने पुष्ट प्रमाण देकर उन्हें सूर्यवंशी होना सिद्ध किया है। सुविख्यात बापा रावल के नामकरण को लेकर उन्होंने अपना मत प्रस्तुत किया है। राणपुर की प्रशस्ति (वि. सं. 1496) में बापा को गुहिल का पिता माना है। कुम्भलगढ़ के मामादेव के मंदिर की बड़ी प्रशस्ति (वि.सं. 1517) में गुहिल के पांचवें वंशधर शील (शीलादित्य) के स्थान पर

1– उदयपुर राज्य का इतिहास प्रथम जिल्द व दूसरी जिल्द के अलावा राजपूताना का इतिहास खण्ड दूसरे, तीसरे व चौथे में क्रमशः 1927, 1928 व 1932 ई. में उदयपुर राज्य का इतिहास प्रकाशित किया गया।

बापा का नाम उत्कीर्ण है। इसे टॉड ने भी स्वीकार किया है। श्यामलदास ने अनेक तर्क देकर महेन्द्र का ही खिताब बापा होना स्वीकारा है। किन्तु ओझा ने इन सभी मान्यताओं का खण्डन करते हुए आहड़ की प्रशस्ति व राजप्रशस्ति महाकाव्य के आधार पर यह सुस्पष्ट करने का प्रयास किया है कि कालभोज का उपनाम ही बापा है।[1] इतना ही नहीं, नैणसी की ख्यात, टॉड कृत एनाल्ड में दी गई बापा रावल सम्बन्धी कथाओं को काल्पनिक होना सिद्ध किया है।[2] टॉड ने खुमाण द्वितीय को खुमाण प्रथम मानने की भूल की। इस प्रकार की अनेक भूलों की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट कराया है। उन्होंने प्रशस्तियों व फारसी ग्रन्थों का अध्ययन कर कुंभा के युद्ध अभियानों व उसकी मुख्य उपलब्धियों का दिग्दर्शन कराया है। "कर्नल टॉड और महाराणा कुम्भा" शीर्षक देकर उन्होंने टॉड की अनेक भूलों को सुधारने का प्रयास किया है।[3] महाराणा सांगा व प्रताप की जीवन घटनाओं का विवरण विस्तार से दिया है। इस प्रकार महाराणा अमरसिंह प्रथम तक का इतिहास इसमें है।

दूसरी जिल्द (1932 ई.)

इसमें महाराणा कर्णसिंह से महाराणा भूपालसिंह के राज्याभिषेक तक का वर्णन है। महाराणा राजसिंह का विवरण राज-प्रशस्ति महाकाव्य व राजविलास के आधार पर लिखा है। मराठा शासकों तथा उनके सेना नायकों के सम्बन्धों का विवरण बहुत संक्षेप में दिया है। अहदनामों आदि प्रामाणिक सामग्री के आधार पर समझौतों का वृत्तांत दिया है।[4] परन्तु कहीं-कहीं पर पक्षपात किया है। यह सर्वविदित है कि अंग्रेजों ने मेवाड़ राज्य में हस्तक्षेप कर महाराणा फतेसिंह के जीतेजी महाराज कुमार भूपालसिंह को गद्दी पर बैठा दिया था परन्तु ओझा ने इस पर लीपा-पोती करते हुए लिखा है कि महाराणा ने वृद्धावस्था के कारण राज्य-भार अपने महाराज कुमार को सौंपने का प्रस्ताव किया, जिसको सरकार हिन्द ने भी स्वीकार किया।[5] मेवाड़ के महाराणाओं की मुख्य उपलब्धियों को दर्शाने का जहां प्रयास किया है वहां यहां के योद्धाओं की भूमिका का चित्रण दिया है। मेवाड़ के महाराणाओं के बाद सरदारों का वृत्तांत है। यहां के सरदारों को तीन श्रेणियों में बांटा है। प्रथम श्रेणी के सरदार उमराव कहलाए, जिनकी संख्या 21 थी। द्वितीय श्रेणी

1– उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ. 409.

2– उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ. 417–18.

3– उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ. 628.

4– डॉ० एल.पी. माथुर, हिस्टोरीग्राफी एण्ड हिस्टोरियन्स ऑफ मॉडर्न इण्डिया, पृ. 169.

5– उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ. 1163.

के सरदारों की संख्या 32 होने से उनको बत्तीसा कहा गया तथा तीसरी श्रेणी के सरदार "गोलके सरदार" कहलाये। इस प्रकार करीब 96 छोटे-मोटे ठिकानों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी दी है। "मेवाड़ के प्रसिद्ध घराने" शीर्षक में स्वामिभक्त भामाशाह, संघवी दयालदास, पंचोली बिहारीदास, बड़वा अमरचंद, मेहता अमरचंद, सेठ जोरावरमल, कोठारी केसरीसिंह, कविराज श्यामलदास तथा सहीवाले अर्जुनसिंह आदि प्रतिष्ठित अधिकारियों का विवरण है। इसके बाद काठियावाड़, गुजरात, मध्य भारत, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, मद्रास तथा नेपाल के गुहिल (सिसोदिया) वंश के राज्यों का संक्षिप्त विवरण दिया है। अन्तिम अध्याय में मेवाड़ की संस्कृति पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। परिशिष्ट में मेवाड़ के राजाओं की वंशावली, गौर नामक अज्ञात क्षत्रिय वंश, पद्मावत का सिंहलद्वीप और उदयपुर राज्य के इतिहास का कालक्रम प्रस्तुत कर शोध विषयक महत्वपूर्ण सामग्री का समावेश किया है।

डूंगरपुर राज्य का इतिहास (1936 ई.)

यों तो टॉड राजस्थान, राजपूताना गेजेटियर, (1879 ई.) बकाये राजपूताना, वीर-विनोद, इम्पीरियल गेजेटियर, ट्रीटीज एंगेजमेंट्स ऐंड सनदज आदि पुस्तकों में डूंगरपुर राज्य का कुछ वर्णन मिलता है परन्तु इस राज्य का कोई अलग से इतिहास नहीं लिखा गया। ओझा ने इस कमी को पूर्ण ही नहीं किया बल्कि पूर्ववर्ती ग्रन्थों में दी गई अनेक भ्रांतियों का निराकरण करने का भी प्रयास किया। इस राज्य के इतिहास लेखन हेतु उन्होंने अनेकों बार शोध यात्राएं की और तीन सौ शिलालेखों व दानपत्रों का पता लगाया। बड़वों व राणीमंगों की वहियों से भी आवश्यक टिप्पण लिये और उनकी जांच-पड़ताल करने का श्रम किया।

प्रारम्भ में डूंगरपुर की भौगोलिक स्थिति की जानकारी देते हुए डूंगरपुर, सागवाड़ा, गलियाकोट, बड़ोदा, देवसोमनाथ, पूंजपुर, बोडीगांमा, वसूंदर, वेणेश्वर, बोरेश्वर आदि प्राचीन व प्रसिद्ध स्थलों का विवरण दिया है। टॉड ने रावल समरसी (समरसिंह) के पौत्र और करण के पुत्र माहप को डूंगरपुर (वागड़) राज्य का संस्थापक माना है जबकि श्यामलदास ने रतनसिंह के बड़े पुत्र करणसिंह के बड़े माहप का डूंगरपुर राज्य का लेना बतलाया है। ओझा ने शिलालेखों की खोजबीन कर दोनों विद्वानों की मान्यताओं का खण्डन कर यह सुस्पष्ट किया कि कर्णसिंह जिसको रणसिंह भी कहते थे, रत्नसिंह के पीछे नहीं किन्तु उससे नौ पुश्त पहले हुआ। कर्णसिंह का पुत्र क्षेमसिंह हुआ जिसके ज्येष्ठ पुत्र सामंतसिंह से वागड़ की शाखा प्रारम्भ हुई और छोटा पुत्र कुमारसिंह के वंशज मेवाड़ के शासक रहे[1]। सामन्तसिंह के उत्तराधिकारी जयतसिंह का नाम डूंगरपुर के बड़वों और अर्स्किन ने छोड़ दिया था परन्तु जगत ग्राम से प्राप्त अभिलेख के अनुसार ओझा ने जयसिंह का नाम वंशक्रम में

1- डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. 31-32.

सम्मिलित किया और भचुंड के उत्तराधिकारी डूंगरसिंह द्वारा 1358 ई. के लगभग डूंगरपुर राज्य स्थापित करने के बारे में अपनी सहमति दी।[1] डूंगरपुर का उदयपुर तथा राजपूताने के अन्य राजाओं से सम्बन्ध तथा यहां के शासकों की मुख्य उपलब्धियों का वर्णन महारावल लक्ष्मणसिंह तक दिया है।

यहां के सामन्तों की भूमिका पर भी काफी प्रकाश डाला गया है। महारावल के निकट सम्बन्धी (पूंजपुर, करोली) हवेली वाले (सावली, ओडो, नांदली) तथा तमीजी सरदारों (बनकोड, पीठ, बीछीवाड़ा, मांडव, ठाकरडा, सोलज, बसासा, नोडावस, रामगढ़, चीतरी, सैमलवाड़ा) का वृत्तांत है। परिशिष्ट में वागड़ के शासकों की वंशावली और इस राज्य के इतिहास का कालक्रम दिया है।

बांसवाड़ा राज्य का इतिहास (1936 ई.)

ओझा ने बांसवाड़ा राज्य का इतिहास 1933 ई. में ही लिख दिया था परन्तु इसका प्रकाशन 1936 ई. में हुआ। इसमें महारावल जगमाल से पृथ्वीसिंह तक का इतिहास है। ओझा द्वारा भरसक प्रयत्न किये जाने के बावजूद भी यहां से राजकीय पत्र, बही, खाते, पुरानी सनदें, ख्यातें व बड़ी प्रशस्तियां सुलभ नहीं हुई हैं। सिक्के प्रचुर मात्रा में मिले। खोज करने पर उन्हें राजाओं के 2393 चांदी के सिक्के प्राप्त हुए। छोटे-मोटे लेख अवश्य मिले परन्तु उनमें कोई उल्लेखनीय सामग्री नहीं मिली इसलिये ओझा ने यह स्वीकार किया है कि बाँसवाड़ा का इतिहास सर्वांगीण नहीं लिखा जा सका।

प्रारम्भ में बांसवाड़ा की भौगोलिक स्थिति के बारे में आवश्यक जानकारी दी है। इसके बाद बांसवाड़ा, तलवाड़ा, गढ़ी, पाणाहेड़ा, अर्थूणा, चींच, नौगामां, बागीदौरा, कलिंजरा, कुशलगढ़ आदि प्रसिद्ध स्थानों का विवरण दिया है। तदन्तर बांसवाड़ा के प्राचीन राजवंशों के वृत्तांत के बाद गुहिलवंश पर प्रकाश डाला है। डूंगरपुर के महारावल उदयसिंह ने अपनी जीवित अवस्था में ही वागड़ का पूर्वी भाग अपने पुत्र जगमाल को देकर उसे पृथक कर दिया और इस प्रकार बांसवाड़ा राज्य की स्थापना हुई।

ओझा ने जगमाल के जीवनवृत्त में नैणसी की ख्यात के अलावा तारीख, फिरिश्ता, मिराते, सिकंदरी, तबाकते अकबरी, तारीखे अलामी के उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। शिलालेखों के अनुसार जगमाल की मृत्यु वि. सं. 1601 के बाद होना स्वीकारा है।[2] इसी प्रकार बांसवाड़ा राज्य व बड़वों की ख्यातों, वीर-विनोद में दिये गये संवतों, तिथियों को सुधारने का प्रयास ही नहीं किया बल्कि खोजबीन कर

1- डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. 54.

2- बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ. 71.

शासकों के वंशक्रम को भी ठीक कर दिया है। उन्होंने महारावल समरसिंह, कुशलसिंह, अजबसिंह, विष्णुसिंह, उदयसिंह, पृथ्वीसिंह, विजयसिंह, उम्मेदसिंह व भवानीसिंह के क्रमश: 13, 12, 6, 12, 3, 22, 12, 4,4, शिलालेख व ताम्रपत्र ढूंढ निकाले हैं।[1] ओझा की इस साधना से बांसवाड़ा का उदयपुर राज्य से सम्बन्ध, कला व साहित्य के क्षेत्र में यहां के नरेशों का योगदान, उनके लोकोपयोगी कार्य आदि कई पहलुओं पर नया प्रकाश पड़ा है।

यहां के सामन्तों पर एक अलग अध्याय दिया है, जिसमें बांसवाड़ा राज्य के सरदारों के चार दर्जे बताये हैं— भाई, सोलह, बतीस, और गुड़ाबन्दी। इस प्रकार पहले महारावल के निकट सम्बन्धी (चंदूजी का गुड़ा, पीपलदा, सरवन, गोडी, तेजपुर, दौलतपुरा, सागरोद, खांदू, तेजपुर, सुरपुर) इसके बाद प्रथम वर्ग के तजीमी सरदारों (मोलां, मतेवाला, अर्थूणा, गढ़ी, गनोडा, खेडा, रोहनिया, नयागांव, मौर, कुशलगढ़, गोपीनाथ का गुढा, ओरीवाड़ा, कुशलपुरा) का वर्णन है। द्वितीय वर्ग के सरदारों की केवल सूची दी है जिसमें 16 ठिकानों के नाम हैं। परिशिष्ट में वंशावलियाँ और इतिहास का कालक्रम दिया है।

बीकानेर राज्य का इतिहास

बीकानेर राज्य के इतिहास लेखन हेतु शिलालेखों में अधिकांश मृत्यु स्मारक लेख मिले हैं। प्रशस्तियां बहुत कम मिली हैं। ओझा ने इसका कारण बीकानेर में पत्थरों की कमी होना बताया है। ताम्रपत्र व सिक्के भी अल्पमात्रा में मिले हैं परन्तु शाही फरमान और निशान प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुए हैं। बीकानेर राज्य का इतिहास दो भागों में विभक्त है।

प्रथम भाग (1937 ई.)

प्रारम्भ में भौगोलिक स्थिति का वर्णन है। बीकानेर, नाल, कोड़मदेसर, गजनेर, श्रीकोलायतजी, देशणोक, पलाणा, वासी–वरसिंहसर, रासी (रायसी) सर, जेगला, पारवा, जांगलू, मोरखाणा, कंवलीसर, पांचू, भादला, सारूंडा, अणखीसर, सारंगसर, छापर, सुजानगढ़, चरलू, सालासर, रतनगढ़, चूरू सरदारशहर, रिणी, राजगढ़, दद्रेवा, नौहर, हनुमानगढ़, गंगानगर, लाखासर, सूरतगढ़ आदि प्रसिद्ध प्राचीन स्थानों के बारे में उल्लेखनीय सामग्री दी है। इसके बाद राठौड़ों से पूर्व का इतिहास दिया है जिसमें जोहियों, चौहानों, सांखलों, भाटियों, जाटों का यहां अधिकार होना स्वीकारा है। बीकानेर से पूर्व के राठौड़ों के संक्षिप्त परिचय के बाद इस राज्य के संस्थापक राव बीका से महाराणा प्रतापसिंह तक का विस्तृत इतिहास मुख्य रूप से

1– बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ. 100–102, 108–11, 114–15, 123–26, 128–29, 137–40, 146–48, 155–56, 166–67.

वीठू, सूजा, रचित "जैतसी रो छन्द" कर्मचन्द्र वंशोत्कीर्तनकं काव्यम् (संस्कृत), नैणसी री ख्यात और दयालदास री ख्यात के आधार पर दिया है। बीकानेर के विभिन्न नरेशों के मृत्यु स्मारक लेखों से ख्यात ग्रन्थों में दिये गये संवतों को ठीक ही नहीं किया है[1] बल्कि पूर्ववर्ती इतिहास ग्रन्थों की अनेक भूलों को सप्रमाण सुधारने का भी प्रयत्न किया है।

टॉड ने महाराजा रायसिंह के बाद कर्णसिंह को उत्तराधिकारी स्वीकार कर उसने दलपतसिंह व सूरसिंह के नामों का उल्लेख नहीं किया। ओझा ने इस ओर भी विद्वानों का ध्यान आकृष्ट कराया है।[2] राव जैतसिंह का कामराँ के युद्ध का विवरण राव जैतसी रो छन्द के अनुसार लिखा हैं परन्तु साथ में यह भी सुस्पष्ट कर दिया है कि इसमें अतिशयोक्तिपूर्ण बातें पाई जाती है फिर भी मूल कथन विश्वसनीय है। मुंशी देवीप्रसाद द्वारा दी गई महाराजा अनूपसिंह के रचे ग्रंथों की सूची के बारे में शंका व्यक्त की है।[3] बीकानेर नरेशों की महत्वपूर्ण शाही सेनाओं, उनके मनसब, खिताब, व सम्मान उनकी विशिष्ट उपलब्धियों आदि के विवरण के साथ पड़ोसी राज्यों से सम्बन्ध और यहां के सामंतों की भूमिका का चित्रण प्रस्तुत किया है। परन्तु ओझा ने कहीं-कहीं पर जानबूझ कर घटनाओं का सही निरूपण नहीं किया है। बीकानेर घराने के चारित्रिक दोषों को छिपाने का प्रयास किया है। उदाहरणार्थ बीकानेर का महाराजा अपने भाई सूरतसिंह के षड़यंत्र से मारा गया था, इसकी पुष्टि कृष्णजी के आषाढ़ वदि 4, 1844 के पत्र से होती है तथा टॉड ने भी इसे स्वीकार किया है लेकिन ओझा ने राज्य आश्रय में लिखी दयालदास की ख्यात का संदर्भ देते हुए उसका क्षय रोग से मृत्यु होना बतलाकर कथित हत्याकाण्ड पर लिपापोती करने का प्रयास किया है।[4]

ओझा ने इस तथ्य की ओर विशेष रूपेण ध्यान आकृष्ट कराया कि मराठों के आतंक से राजपूताने के राज्य परेशान थे। उन्हें मराठों के आक्रमणों से बचने के लिए

1– कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं —

दयालदास री ख्यात में उद्धृत मृत्यु संवत व तिथियां	मृत्यु स्मारक लेख में उत्कीर्ण तिथियां
बीका 1561 अश्विन सुदि 3	1561, आषाढ़ सुदि, 5
लूणकर्ण 1583 श्रावण वदि, 4	1583, वैशाख वदि, 2
कल्याणमल, 1628 वैशाख वदि, 5	1630, माघसुदि, 2

2– बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग–1

3– बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 132.

4– बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग 1. पृ.363

धन आदि की उनकी मांगें पूरी करनी पड़ती थी परन्तु अपनी अनुकूल प्राकृतिक बनावट के कारण बीकानेर राज्य उनके आक्रमणों से सदा बचा रहा और यहां के शासकों को कभी चौथ (खिराज) आदि कर देना न पडा न ही उन्होंने मुगल बादशाहों को कभी राज दिया तथा अंग्रेज सरकार ने भी उनसे किसी प्रकार का राज नहीं लिया।

दूसरा भाग (1940 ई.)

इसमें महाराजा सूरतसिंह से गंगासिंह तक का इतिहास है। बीकानेर की जोधपुर जैसलमेर व भटनेर के बीच हुई लड़ाइयों का वृतांत देते हुए बीकानेर आदि यहां के उपद्रवी ठाकुरों को दबाने हेतु किये गये प्रयासों में अमरचन्द सुराणा व अबीरचन्द्र मेहता आदि ओसवाल लोगों की महत्वपूर्ण सेवाओं का वर्णन है। 1857 ई. के सिपाही विद्रोह में बीकानेर ने अंग्रेज सरकार की सहायता कर किस प्रकार उल्लेखनीय सेवाएं की इसका चित्रण भी है।

बीकानेर राज्य के इतिहास प्रणयन में तत्कालीन महाराजा गंगासिंह ने अपने संग्रहालय में से सामग्री सुलभ कराके ओझा की पूर्णरूपेण सहायता की थी फलतः ओझा ने उक्त महाराजा के जीवनकाल का विवरण 223 पृष्ठों में लिखा है लेकिन इसमें संदर्भ सामग्री का यत्किंचित भी उल्लेख नहीं हुआ है। अन्त में सामन्तों प्रतिष्ठित घरानों का वृतांत है। यहां के जागीरदारों को तीन श्रेणियों में बांटा गया है। (1) राजवी सरदार (2) सिरायत उमराव व (3) ताजीम सरदार सागैर ताजीमी जागीरदार, भोमिये, आदि। इस प्रकार कोई 140 छोटे मोटे ठिकानों के बारे में जानकारी प्रस्तुत करते हुए उनकी महत्वपूर्ण उपलब्धियों का वर्णन दिया है। तथा साथ ही प्रमुख ठिकानों के वंशक्रम भी पाद टिप्पण में अंकित कर दिये हैं। प्रसिद्ध व प्राचीन घरानों में वैद मेहता कविराजा विभूतिदान, सेठ चाँदमल और ड़ागाओं के घराने की विशिष्ठ सेवाओं का उल्लेख है। परिशिष्ट में बीकानेर के नरेशों का वंशक्रम और मनसबदारी प्रथा का विवरण है।

जोधपुर राज्य का इतिहास

इस राज्य का इतिहास मुख्य रूप से मुहणोत नैणसी की ख्यात, जोधपुर राज्य की ख्यात, बांकीदास की ख्यात, दयालदास और वीर विनोद के आधार पर लिखा गया है। चंडू के संग्रह की जन्म पत्रियों. फारसी तवारीखों, फरमानों, ताम्रपत्रों और शिलालेखों के अलावा कालिका रंजन कानूगो, सर जदुनाथ सरकार, डा. बनारसी प्रसाद, आदि विद्वानों के इतिहास ग्रंथों का अध्ययन कर ऐतिहासिक घटनाओं के साथ समुचित सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। ओझा ने जोधपुर राज्य का इतिहास तीन भागों में लिखा था परन्तु इसके दो भाग ही प्रकाशित हुए और तीसरा भाग अभी तक नहीं छपा है।

पहला भाग (1938 ई.)

जोधपुर राज्य की भौगोलिक स्थिति के विवरण के बाद जोधपुर, मंडोर, घटियाला, अरणा, तिवरी, ओसिया, उस्तरा, बुचकला, पीपाड़, भुडाना, बड़लू, मेड़ता, पडुखा, केकिंद, भवाल, बीठन, खवासपुरा, फलोदी, किंसरिया, सांभर, डीडवाना, सिवा, नागोर, गोठ, फलोदी, किराडू जूना, चोटण, जसोल, नगर, खेड, सांचोर, सिवाणा, भीनमाल, जालोर, पाली, बीठू, बाली, नाणा, बेलार, भडूद, वेडा, भाटूद, हथुडी, सेवाडी, सांडेराव, कोरटा, सादडी, राणपुर, घाणेराव, नारलाई, नाडोल, वरकाणा, आउआ आदि प्राचीन व प्रसिद्ध स्थनों के बारे में जानकारी देते हुए यहां के मठ मन्दिरों देवालयों व बावड़ियों के अभिलेखों का उल्लेख किया है। इसके बाद मौर्य, कुशाण, क्षत्रप, गुप्त, हूण, गुर्जर, चावडा, रघुवंशी प्रतिहार, गुहिल, परमार, सोलंकी, और चौहान आदि राठौड़ों से पूर्व के मारवाड़ के राजवंशों का वर्णन है राष्टकूटवंश की उत्पत्ति तथा राठौड़ वंश की प्राचीनता के बारे में विद्वानों के मत प्रस्तुत करते हुए उन्हें निराधार सिद्ध किया है और यह सुस्पष्ट किया है कि राठौड़ वस्तुतः शुद्ध आर्य हैं। इनका मूल राज्य दक्षिण में था, जहां से गुजरात, काठियावाड़, राजपूताना, मालवा, मध्यप्रदेश, गया, बदायू आदि में उनके स्वतंत्र या परतंत्र राज्य स्थापित हुए। यद्यपि रावों, भाटों की बहियों के अनुसार राठौड़ अपने को सूर्यवंशी मानते रहे हैं परन्तु ओझा के प्राचीन ताम्रपत्रों, दानपत्रों से उन्हें चंद्रवंशी होना प्रमाणित किया है। इस प्रकार दक्षिण के राठौड़ों तथा उनके फंटे हुए लाट (गुजरात) के राठौडों के अलावा मध्य-भारत, बिहार संयुक्त प्रांत व राजपूताने के पहले के राठौड़ों का विवेचन दिया है। पुष्ट प्रमाणों के आधार पर गहड़वालों व राठौड़ों को एक दूसरे से भिन्न वंश का होना प्रमाणित कर यह स्पष्ट कर दिया है कि राठौड़ सीहा कनोजपति जयचंद का वंशज कदापि नहीं हो सकता।

मारवाड़ के राठौड़ों के मूल पुरूष राव सीहा से रणमल तक के विवरण में ख्यातों का ही आश्रय लिया है। ख्यातों में जैसा लिखा है उसका सारांश देकर संदिग्ध विषयों पर यथास्थान पर टिप्पणियों व प्रत्येक शासक के विवरण के अन्त में ख्यातों के कथन की जांच कर अपना मत प्रस्तुत किया है। इस प्रकार प्रामाणिक सामग्री के अभाव में राव सीहा राव धूहड के मृत्यु संवत को छोड़कर अन्य किसी भी राजा के जन्म, राज्यारोहण व मत्यु का समय देने में वे असमर्थ रहे हैं। उन्होंने राव आस्थान से राव रणमल तक के 16 राजाओं का औसत समय निकालते हुए यह स्पष्ट किया है कि इनमें कुछ नाम भाटों ने कृत्रिम जोड़ दिये हैं अथवा एक भाई का वंश समाप्त होने पर बाद में जब दूसरे भाई का वंश चला तो भाटों ने दूसरी शाखा के पूर्वजों के नाम भी पहली शाखा के साथ जोड़ दिये जिससे वंशावली में नाम बढ़ गये। इसलिये उन्होंने इन राठौडों के विषय में और शोध किये जाने की आवश्यकता पर बल दिया। जोधपुर के संस्थापक राव जोधा की जीवन घटनाओं तथा उसके कुंवरों से अकुंरित होने वाली राठौड़ों की शाखाओं का उल्लेख हैं। राव मालदेव के युद्ध अभियानों का

विस्तार से विवरण प्रस्तुत करते हुए जहां उसको एक प्रतापी और शक्तिशाली शासक बताया है वहां उसकी मानसिक दुर्बलता की ओर भी संकेत किया है। राव चंद्रसेन के समय हुसैनखां की जोधपुर पर चढ़ाई के संदर्भ में जोधपुर राज्य की ख्यात के कथन को अस्वीकार कर अकबरनामा के विवरण को स्वीकार किया है परन्तु राव चंद्रसेन की जीवन घटनाओं के वृत्तांत में उक्त ख्यात को ही आधार स्रोत माना है। मोटा राजा उदयसिंह, सूरसिंह, गजसिंह व जसवंतसिंह की शाही सेवाओं तथा मुख्यतः उनके मनसब इत्यादि के वृत्तांत के अलावा उनकी उपलब्धियों को उजागर करने का भी प्रयास किया है। धरमात के प्रसिद्ध युद्ध का विवरण विदेशी यात्रियों– मनूकी व बर्नियर तथा फारसी ग्रन्थों के आधार पर दिया है किन्तु युद्धक्षेत्र से महाराजा जसवंतसिंह के सकुशल लौट आने पर हाडी राणी द्वारा किये गये स्वागत की घटना को अस्वीकार किया है।[1] इस युद्ध को लेकर उस समय "वचनिका राठौड़ रतनसिंह री" और "रतनरासो" दो महत्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ लिखे गये परन्तु ओझा को ये ग्रन्थ सम्भवतः सहज सुलभ नहीं हुए इसलिये इनके संदर्भ नहीं दिये हैं। विदेशी यात्री टैवर्नियर ने औरंगजेब व दाराशिकोह के साथ की लड़ाई में दारा को ऐन मौके पर धोखा देकर महाराजा जसवंतसिंह का औरंगजेब के साथ शामिल होना बताया है जबकि बर्नियर ने उक्त महाराजा का उस समय उपस्थित नहीं होना लिखा है। ओझा ने अपने विवेक से बर्नियर के कथन को स्वीकार किया है।[2] महाराजा जसवंतसिंह के युद्ध अभियानों का विवरण दिया है परन्तु कडापा के दर्रे में अफगानों के साथ हुए युद्ध का नामोल्लेख तक नहीं किया है।[3]

दूसरा भाग (1941 ई.)

इसमें महाराजा अजीतसिंह से महाराजा मानसिंह तक का विस्तृत इतिहास है। यद्यपि ओझा ने जोधपुर राज्य के इतिहास का दूसरा भाग 1939 ई. में ही लिख दिया था परन्तु अर्थाभाव के कारण यह भाग समय पर प्रकाशित नहीं हुआ।[4] प्रारंभ में महाराजा जसवंतसिंह की मृत्यु पश्चात चले मुगल मारवाड़ संघर्ष के अन्तर्गत दुर्गादास आदि स्वामिभक्त योद्धाओं की भूमिका का चित्रण है। यद्यपि संघर्ष के विभिन्न आयामों का विवरण स्थानीय व फारसी ग्रन्थों के आधार पर देकर यहां के योद्धाओं की उपलब्धियों को उजागर करने का प्रयास किया है परंतु महाराजा अजीतसिंह व मुगल

1– जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ. 435 पाद.

2– जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ. 447–48,

3– इस युद्ध में अनेक मेड़तिया राठौड़ काम आये थे। देखें राजस्थान के मेड़तिया राठौड़, पृ. 130–31.

4– ओझा का पत्र हरनाथ पुरोहित के नाम, परम्परा, पृ. 65.

शासकों के बीच सम्बन्धों का सत्यासत्य निरूपण करने में ओझा असमर्थ ही रहे हैं।[1] अजीतसिंह के व्यक्तित्व को दर्शाते हुए जहां उसे वीर, साहसी व स्वाभिमानी नरेश बताया है वहां उसे अभिमानी, कान का कच्चा व अत्याचारी राजा बतलाकर उसके दुर्गुणों की ओर भी संकेत किया है। महाराजा अजीतसिंह के उत्तराधिकारी अभयसिंह की जीवन घटनाओं का विवरण कुछ विस्तार से दिया है। उसकी अहमदाबाद पर चढ़ाई का वृत्तांत जोधपुर राज्य की ख्यात व बांकीदास की ख्यात व फारसी ग्रन्थों के आधार पर दिया है परन्तु इस अभियान पर प्रकाश डालने वाले समसामयिक दो महत्वपूर्ण काव्य ग्रंथों— "सूरज-प्रकाश" (करणीदान) व "राजरूपक" (वीरभांण) की उन्होंने उपेक्षा की है। उक्त महाराजा को साहित्य प्रेमीं स्वीकार कर जहां उसकी गुण ग्राह्यता पर प्रकाश डाला है वहां उसे छलाघात व दुर्बल हृदय का बतलाकर उसकी कमजोरियों का भी उल्लेख किया है। महाराजा रामसिंह व बख्तसिंह के बीच चले संघर्ष में मुख्य रूप से यहां के योद्धाओं की भूमिका का विवरण दिया है। महाराजा विजयसिंह के राज्यकाल की घटनाओं में मराठों के बीच चले संघर्ष का वृत्तांत है। इसमें मूलतः जोधपुर राज्य की ख्यात व स्थानीय स्त्रोतों को ही स्थान मिला है। मराठी भाषा में प्राप्य सामग्री की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया जिससे विजयसिंह कालीन घटनाओं का सही निरूपण नहीं हो सका है। महाराजा मानसिंह के समय लिखी गई जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार उक्त महाराजा की जीवन घटनाओं का विस्तार से वर्णन दिया है।

जोधपुर राज्य के इतिहास लेखन हेतु यद्यपि उन्होंने सुलभ सामग्री का भरपूर उपयोग किया परन्तु शिलालेखों व ताम्रपत्रों को खोजने का श्रम नहीं किया जिससे राव सीहा से राव रणमल तक के शासकों के बारे में पाई जाने वाली भ्रांतियों का वे निराकरण नहीं कर सके। यह कार्य उन्होंने भावी शोधकों के लिये छोड़ दिया लेकिन आज तक इस क्षेत्र में किसी को सफलता नहीं मिली है।

प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास (1940 ई.)

इस राज्य के इतिहास लेखन हेतु ओझा ने शिलालेख, ताम्रपत्र, बड़वे भाटों की बहियां आदि सामग्री प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुई थी परन्तु यहाँ से प्राचीन शिलालेख केवल तीन ही मिले थे। और कोई विशेष प्राचीन सामग्री सुलभ नहीं हुई। इसलिये मुगलों से पूर्व तक के इस राज्ल के नरेशों पर बहुत कम प्रकाश पड़ा है। प्रारम्भ में भौगोलिक स्थिति के बारे में जानकारी देते हुए देवलिया, प्रतापगढ़, जानागढ़, धोटासी, बीरपुर. खेरोट, अरणोद, गौतमेश्वर, भचूंडला, नीनोर, शेवना आदि प्रसिद्ध व प्राचीन

1— मीरां मीत्र ने अपने शोध प्रबन्ध (महाराजा अजीतसिंह व उनका युग) में उनके काल का विस्तृत विवरण दिया है परन्तु कई पहलुओं को लेकर इस दिशा में और खोज किये जाने की आवश्यकता है।

स्थानों का विवरण है। रघुवंशी प्रतिहार, परमार और सोलंकी इत्यादि सीसोदियों से पूर्व के राजवंशों का संक्षिप्त इतिहास का उल्लेख है। महाराणा कुम्भा के अनुज क्षेमकर्ण के वंशज महारावत प्रतापसिंह द्वारा 1699 ई. के लगभग प्रतापगढ़ राज्य की स्थापना होना उल्लेखित है।[1] क्षेमसिंह से महारावल हरिसिंह तक के नरेशों के इतिहास लिखाने हेतु नैणसी की ख्यात, प्रतापगढ बड़वे की ख्यात तथा वीर-विनोद के अलावा मुख्य रूप से हरिभूषण महाकाव्य (संस्कृत) का उपयोग किया है। महारावत हरिसिंह ने शाही दरबार से संबंध जोड़ा था इसलिये हरिसिंह से पृथ्वीसिंह तक के इतिवृत्त में शाही फरमान, शहजादों के निशान, आदि सामग्री काम में ली गई है। मराठा काल के कागज पत्रों और अंग्रेज सरकार के साथ पत्र व्यवहार से राज्य की तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। इस प्रकार महारावत रामसिंह तक का प्रतापगढ़ राज्य का विस्तृत इतिहास लिखा गया है।

महारावत सूरजमल के सम्बन्ध में श्यामलदास (वीर-विनोद), टॉड, के. डी. अर्सकिन आदि विद्वानों की भ्रांत धारणाओं का निराकरण करने का प्रयास किया है।[2] प्रतापगढ़ की ख्यातों व बडवों की बहियों में दी गई घटनाओं की पूरी-पूरी जांच शिलालेखों, ताम्रपत्रों व समसामयिक फारसी तवारीखों से करने का प्रयत्न किया है। राजनैतिक इतिहास के अलावा कला व साहित्य के क्षेत्र में यहां के नरेशों के योगदान का विवरण भी दिया है। अन्तिम अध्याय में यहां के सामन्तों व प्रतिष्ठित घरानों का वृतांत है। जागीरदारों को तीन दर्जे दिये हैं–(1) नगरबंद अर्थात उमराव (2) ताजीमी (3) गैर ताजीमी। पहले वर्ग में धमोतर, कल्याणपुरा, आंबीरामा, रायपुर, झांतला, सालिमगढ़, अचलावदा, बरडिया, बोडी, सारापली व जाजली ठिकानों के ठाकुरों की मुख्य उपलब्धियों का उल्लेख है। इस प्रकार दूसरे वर्ग के नो ठिकानों की जानकारी दी गई है तथा अन्त में शाह, पडलिया भांचावत आदि प्रसिद्ध घरानों के विशिष्ट व्यक्तियों की राजकीय सेवाओं का विवरण दिया है। परिशिष्ट में वंशावलियें आदि महत्वपूर्ण सामग्री का समावेश किया है।

ओझा निबन्ध संग्रह

उपरोक्त वर्णित इतिहास ग्रंथों के अलावा ओझा ने प्रसिद्ध योद्धाओं व स्थलों आदि विषयों पर अनेक शोधपूर्ण निबन्ध तैयार कर उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में छपवाये थे। साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर ने ओझा निबन्ध संग्रह नाम से ये निबन्ध प्रकाशित किये हैं।

1– प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास. पृ. 183.

2– प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ. 55-57 पाद.

प्रथम भाग (1954 ई.)

इसमें दिये गये निबन्धों को 4 प्रकरणों में बांटा गया है। (1) भूगोल, (2) इतिहास और पुरातत्व (3) मूर्तिकला (4) विविध। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री के बारे में अच्छी जानकारी दी है। इसके अलावा क्षत्रियों के गोत्र, बापा-रावल का सोने का सिक्का, राजपूताने में शिवमूर्तियां, चित्तोड़ का कीर्तिस्तम्भ, माघ कवि का समय आदि कई महत्वपूर्ण उल्लेख इसमें छपे हैं।

द्वितीय भाग (1954 ई.)

इनके तीन प्रकरण हैं (1) साहित्य (2) इतिहास व पुरातत्व (3) विविध। इसकी प्रस्तावना में सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. दशरथ शर्मा ने ओझा के लेखों में वर्णित घटनाओं को प्रस्तुत करते हुए नवीन खोज के अनुसार अनेक भ्रांतियों का निराकरण करने का प्रयास किया है। परन्तु पुरातत्व के लेखों के बारे में डॉ. दशरथ शर्मा ने लिखा है कि यह ओझा का निजी विषय था और उनकी सामग्री प्रायः इतनी ठोस है कि उस पर ऊंगली तक उठाना कठिन है।[1]

तृतीय भाग (1954 ई.)

इसमें भी दूसरे भाग की तरह तीन प्रकरण दिये हैं। प्रस्तावना में इतिहासविद् डॉ. रघुवीरसिंह ने ओझा के लेखों के महत्व पर अपने विचार व्यक्त करते हुए तदविषयक कई नवीन जानकारियां दी हैं।[2]

ओझा ने ये लेख गहरी खोजबीन कर लिखे हैं। इसमें पुष्ट प्रमाणों के आधार पर उन्होंने कई पुरानी स्थापनाओं का खण्डन किया है। इस संदर्भ में उन्होंने कई विद्वानों की आलोचना की है परन्तु उनकी लेखन शैली में कहीं अशिष्टता दिखाई नहीं देती है।

फुटकर पुस्तकें

इतिहास ग्रंथों के अलावा ओझा ने कुछ छोटी-मोटी निम्नलिखित पुस्तकें लिखीं–

कर्नल जैम्स टॉड का जीवन चरित्र (1902 ई.)

इसमें टॉड के व्यक्तित्व व कृतित्व का विवेचन है। यह पुस्तक 1901 ई. में लिखी गई और 1902 ई. में खड्ग विलास प्रेस बांकीपुर से प्रकाशित हुई। इसका दूसरा संस्करण इसी प्रेस से प्रकाशित हिन्दी टॉड राजस्थान के प्रथम खण्ड में छपा।

---

(1) ओझा निबन्ध संग्रह, द्वितीय भाग, प्रस्तावना पृ. 4

(2) " " " तृतीय भाग, प्रस्तावना पृ. 1-10

इसका गुजराती अनुवाद गुजराती भाषा के "राजस्थान नो इतिहास" की पहली जिल्द में प्रकाशित हुआ।[1]

भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री (1911 ई.)

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी भाग 13, अंक 2 में यह निबंध 1908 ई. में प्रकाशित हुआ। फिर उसको 1911 ई. में पृथक पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर दिया गया। इसमें शिलालेखों, ताम्रपत्रों, दानपत्रों आदि भारत की प्राचीन इतिहास सामग्री पर अच्छा प्रकाश पड़ा है।

बापा रावल का सोने का सिक्का (1921 ई.)

ओझा का यह शोधपूर्ण लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी भाग-1, संख्या 3 में प्रकाशित हुआ। फिर इसे पृथक पुस्तक का रूप दे दिया यगा।

वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप (1928 ई.)

राजपूताने का इतिहास जिल्द-1 में महाराणा प्रताप का जो वर्णन हुआ है, उसका यह पृथक प्रकाशन है। उन्होंने अपने मित्रों की सलाह के अनुसार उक्त महाराणा के आदर्श चरित्र का वृत्तांत सर्व साधारण को सुलभ कराने के लिए यह पृथक पुस्तक छपाई।[2]

मध्यकालीन भारतीय संस्कृति (1928 ई.)

इसमें हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद द्वारा दिलाये गये तीनों भाषणों का संग्रह है और यह पुस्तक वहीं से प्रकाशित हुई है। इसका गुजराती अनुवाद वर्नाक्यूलर सोसायटी, अहमदाबाद ने प्रकाशित किया।

सम्पादन

ओझा ने निम्नलिखित ग्रन्थों का सम्पादन किया —

1– हिन्दी टॉड राजस्थान (1908 ई.)

इसका सम्पादन दो खण्डों में किया है। पहले में टॉड की जीवनी, राजस्थान का भूगोल व छत्तीस राजवंशों का विवरण आदि 8 अध्याय तक का अनुवाद है। इसमें ऐतिहासिक त्रुटियों का निराकरण करने का प्रयास किया है तथा प्रत्येक अध्याय के अंत में शोधपूर्ण टिप्पणियों का समावेश किया है। दूसरे

1– राजपूताने का इतिहास (दूसरा खण्ड) भूमिका पृ. 36, 37 पाद.

2– वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप, भूमिका पृ. 2.

खण्ड में फ्यूडल सिस्टम और राजस्थान के पांच अध्यायों का अनुवाद है। इसमें भी कई आवश्यक टिप्पण दिये हैं। किसी कारण से इस पुस्तक का पूरा अनुवाद नहीं हो सका।

2– अशोक की धर्म लिपियां (पहला खण्ड 1920–21)

इसका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा किया गया।[1]

3– सुलेमान सौदागर

इसका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा किया गया।

4– नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी (1920–31 ई.)

ओझा ने इस पत्रिका के 1 भाग से 12 भाग (नवीन संस्करण) तक का सम्पादन किया।

5– मुंहणोत नैणसी री ख्यात–दूसरा भाग (1934 ई.)

ख्यात का हिन्दी में अनुवाद बाबू रामनारायण दूगड़ ने किया तथा उसका पहला भाग उसी के द्वारा सम्पादित किया गया परन्तु दूगड़ की मृत्यु हो जाने पर दूसरे भाग का सम्पादन ओझा को करना पड़ा। इसमें कछवाहा, राठौड़, भाटी, खेड़ के गोहिल, झाला, चावड़ा आदि राजवंशों का वर्णन है। अनेक वंशवृक्ष इसमें दिये हैं, जिससे इस सामग्री की उपयोगिता और बढ़ गई है।

6– जयानक प्रणीत पृथ्वीराज विजय महाकाव्यम् संस्कृत टीका सहित (1940 ई.)

शारदा लिपि में लिखे इस ग्रंथ की खोज बूलर ने की थी। ओझा ने इस ग्रन्थ का सम्पादन करते हुए प्रस्तावना में इसके ऐतिहासिक महत्व को उजागर करने का प्रयास किया है। पृथ्वीराज चौहान की शहाबुद्दीन गौरी पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में यह काव्य जयानक ने 1190 ई. में रचा था। इसमें चाहमान से लगाकर पृथ्वीराज तक शुद्ध वंशावली के अलावा ऐतिहासिक वृत्तांत भी है। इसमें कुल 12 सर्ग हैं।

7– जय सोम रचित कर्मचंद्र वंशोत्कीर्तन काव्य, हिन्दी टीका सहित

इसमें बीकानेर के वच्छावत महताओं की वंशावली और उसका वृत्तांत है। देवड़ा, चौहानों से निकलने वाली इस ओसवाल शाखा का विस्तार मेवाड़,

---

1– देखें नागरी प्रचारिणी पत्रिका नवीन संस्करण, भाग–1, सन् 1920–21.

गुजरात व मारवाड़ में हुआ। इसमें बीकानेर राजघराने में की गई सेवाओं तथा उनकी धार्मिक आस्थाओं का अच्छा बोध होता है।

8– गद्य रत्नमाला

राजपूताना, मध्यभारत हाई स्कूल और इण्टरमिडियेट एज्युकेशन बोर्ड, अजमेर के लिये तैयार किया गया, जो पांच वर्ष तक हाई स्कूल के पाठ्यक्रम में रहा।

9– पद्य रत्नमाला संकलन

यह पुस्तक भी पांच वर्ष तक हाई स्कूल के पाठ्यक्रम में रही।

10– कोषोत्सव स्मारक संग्रह

यह संग्रह नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित किया गया।[1]

ग्रन्थों के सम्पादन पर वे हमेशा बल दिया करते थे। उन्होंने बांकीदास की ख्यात के सम्पादन व प्रकाशन की योजना बनाई पर फलीभूत नहीं हो सकी। उन्होंने रघुनाथ रूपक, राजरूपक व वेलि क्रसन रूक्मणी ग्रन्थों के सम्पादन हेतु महत्वपूर्ण सुझाव ही नहीं दिये बल्कि प्रकाशन के लिये भी उत्सुकता दिखलाई थी।

अप्रकाशित और अपूर्ण ग्रंथ

ओझा अपने इतिहास ग्रन्थों के प्रकाशन हेतु सदा प्रयत्नशील रहे और उपरोक्त वर्णित सभी इतिहास उन्होंने अपने जीवनकाल में ही छपा दिये थे परन्तु अन्त में द्रव्य व्यय करने की शक्ति न रहने के कारण जोधपुर राज्य का इतिहास भाग–3 अप्रकाशित ही रहा।

जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग–3 (अप्रकाशित)

इसमें जोधपुर के महाराजा तख्तसिंह तथा उनके बाद के राजाओं का वर्णन है। अन्त में मारवाड़ के प्रमुख ठिकानों व सामन्तों का वृत्तांत है।[2] ओझा ने यह इतिहास 1944 में छपने के लिये प्रेस में दिया था और कुछ फर्मे इसके छप गये थे।[3] परन्तु कागज की व्यवस्था नहीं होने के कारण इसकी छपाई अपूर्ण ही रही।

1– शोध पत्रिका भाग–1, अंक–2, पृ. 100–110.

2– ओझा द्वारा संगृहित किये गये ठिकानों की वंशावलियों का संग्रह महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश जोधपुर में सुलभ है।

3– ओझा जी का पत्र पुरोहितजी के नाम, परम्परा भाग–66–67, पृ. 86.

जयपुर राज्य का इतिहास (अपूर्ण)

राठौड़ों के इतिहास लिखने के बाद ओझा ने जयपुर राज्य का इतिहास तैयार करने का निश्चय किया था और इसके लिये काफी सामग्री भी इकट्ठी कर ली थी[1] परन्तु आवश्यक सम्पूर्ण सामग्री सुलभ नहीं होने के कारण उन्होंने जयपुर राज्य के इतिहास लेखन का विचार छोड़ दिया। उन्होंने 9 जनवरी, 1938 को हरनारायण पुरोहित जी को लिखा—"मेरे विचार के अनुसार जयपुर राज्य का इतिहास लिखना अगाध समुद्र को मथना है। ऐसा किये बिना जयपुर का ठीक इतिहास बन ही नहीं सकता। वीर विनोद में तो जयपुर का नाममात्र का इतिहास है। उनका इतिहास फारसी तवारीखों से भरा पड़ा है और महाराजा सवाई जयसिंह जी से लगाकर अंग्रेजों से पूर्व का इतिहास मराठी पत्रों में भरा पड़ा है, जिसकी पचास से अधिक जिल्दें हैं और उस समय का अंग्रेजी पत्र-व्यवहार भी बहुत है। इस सामग्री को टटोलना और उसमें से निष्कर्ष निकालना साधारण श्रम का काम नहीं है। ऐसे किये बिना जयपुर का वास्तविक इतिहास बन नहीं कसता।"[2]

वे कोटा व बूंदी के चौहानों और करोली व जैसलमेर के यादवों-भाटियों का इतिहास भी लिखना चाहते थे परन्तु वृद्धावस्था में आंखों की ज्योति मंद पड़ जाने व शारीरिक शक्ति क्षीण होने से वे इन राजपूतों का इतिहास लिखने में असमर्थ ही रहे। शोध कार्य व प्रकाशन में उन्हें काफी धन व्यय करना पड़ा था। 9 जनवरी, 1938 के पत्र में वे लिखते हैं ......"अब मुझे मालूम होने लगा है कि मैंने राजपूताने का इतिहास प्रारम्भ कर बहुत कुछ क्षति उठाई है। यह काम किसी राजा महाराजा के करने का था। मैंने निरर्थक ही हाथ डाला। समय की गति को देखते अब विश्राम करना ही उचित है।"[3]

ओझा की दृष्टि में पूर्ववर्ती इतिहासकार

ओझा ने नैणसी, टॉड और श्यामलदास आदि इतिहासकारों के ग्रन्थों का गहन अध्ययन ही नहीं किया बल्कि उन ग्रन्थों की उपयोगिता और कमियों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कराया है :—

1– नैणसी व उसकी ख्यात के बारे में लिखा है— "वह वीर तथा प्रबन्ध कुशल होने के अतिरिक्त इतिहास का बड़ा प्रेमी था। राज्य का दीवान होने से अन्य राज्यों के प्रसिद्ध पुरुषों के साथ उसका बहुत कुछ मेल-मिलाप रहता था,

---

1– ओझा जी का पत्र पुरोहितजी के नाम, परम्परा भाग 66-67, पृ. 38.

2– परम्परा, भाग 66-67, पृ. 61.

3-- परम्परा, भाग 66-67, पृ. 61.

जिससे प्रसिद्ध पुरूषों, चारणों और भाटों आदि से जो कुछ ऐतिहासिक बातें उसे मिलीं, उनका वि. सं. 1707 के पूर्व से वि. सं 1722 के कुछ पीछे तक उसने वृहत् संग्रह किया। उसने कई जगह तो जिसके द्वारा जिस संवत में जो वृतान्त मिला, उसका उल्लेख तक किया है। कई वंशावलियां उसने भाटों की ख्यातों से भी उद्धृत की हैं, इसलिये उनमें दिये हुए प्राचीन नामों आदि में बहुत से अशुद्ध है, परन्तु प्राचीन शोध से उनकी बहुत कुछ शुद्धि हो सकती है। प्रत्येक राज्य के संबंध की जितनी भिन्न भिन्न बातें या वंशावलियां मिल सकी, वे सब नैणसी ने दर्ज की है, जिनमें कुछ ठीक है और कुछ अशुद्ध। लेखक दोष से कहीं कहीं संवतों में भी अशुद्धियां हो गई है और कुछ स्थलों पर अपने राज्य का पक्षपात भी पाया जाता है। इस पर भी वह ख्यात विक्रम की 15 वीं से सत्रहवीं सदी तक के राजपूताने के इतिहास के लिये ऊपर लिखी हुई ख्यातों की अपेक्षा विशेष उपयोगी है .... उक्त ख्यात में चौहानों, राठोड़ों, कछवाहों और भाटियों का इतिहास तो इतने विस्तार के साथ दिया गया है कि उसका अन्यत्र कहीं मिलना सर्वथा असंभव है। इसी तरह वंशावलियों का तो इतना बड़ा संग्रह है कि वह अब अन्यत्र मिल ही नहीं सकता। उसमें अनेक लड़ाइयों का वर्णन, उनके निश्चित संवत तथा सैकड़ों वीर पुरूषों के जागीर पाने या लड़कर मारे जाने का संवत सहित उल्लेख देखकर यह कहना अनुचित न होगा कि नैणसी जैसे वीर प्रकृति के पुरूष ने अनेक वीर पुरूषों के स्मारक अपनी पुस्तक में सुरक्षित किये हैं। वि. सं. 1300 के बाद से नैणसी के समय तक के राजपूतों के इतिहास के लिये तो मुसलमानों की लिखी हुंई तवारीखों से भी नैणसी की ख्यात कहीं कहीं विशेष महत्व की है।

2– टॉड के बारे में लिखा है—" उसकी शोधक बुद्धि बहुत बढी हुई थी" वह बहुश्रुत, इतिहास का प्रेमी और असाधारणवेत्ता, विद्यारसिक तथा क्षत्रिय प्रकृति का निरभिमानी पुरूष था।.... उसने अपना इतिहास अधिकतर पुराणादि ग्रंथों, भाटों की ख्यातों, राजाओं के दिये हुए अपने अपने इतिहासों और वंशावलियों, प्राचीन संस्कृत और हिन्दी काव्यों तथा कुछ फारसी तवारीखों के आधार पर लिखा, परन्तु केवल इन्हीं पर उसने संतोष न किया और भिन्न भिन्न शिलालेखों तथा सिक्कों की खोज कर उसने पृथ्वीराज रासो और भाटों की ख्यातों की कई अशुद्धियां ठीक की।

टॉड स्वयं संस्कृत से अनभिज्ञ था, इसलिये संस्कृत के शिलालेखों के लिये उसे अपने गुरु यति ज्ञानचन्द्र से सहायता लेनी पडती थी। ज्ञानचन्द्र भाषा

---

(1) राजपूतों का इतिहास (दूसरा खंड) भूमिका पृ. 22-23

कविता का विद्वान होने पर भी अधिक पुराने शिलालेखों को ठीक ठीक नहीं पढ सकता था और उसका संस्कृत का ज्ञान भी साधारण ही था, जिससे टॉड की संगृहित सामग्री का पूरा-पूरा उपयोग नहीं हो सका और कुछ लेखों के ठीक न पढ़े जांने के कारण भी उसके इतिहास में कुछ अशुद्धियां रह गई। राजाओं से उनके यहां के लिखे हुए जो इतिहास मिले, उनके अतिशयोक्तिपूर्ण होने एवं विशेष खोज के साथ न लिखे लाने के कारण भी इतिहास में कई स्थल दोषपूर्ण हैं। भाटों और चारणों की ख्यातों तथा गीतों को आधारभूत मानने के कारण एवं बहुत सी अनिश्चित दंतकथाओं का समावेश होने से भी त्रुटियां रह गई हैं। संस्कृत भाषा तथा भारतीय पुरुषों या स्थानों के नामों से पूर्ण परिचय न होने से कई जगह नामों की अशुद्ध कल्पना हुई है। कहीं यूरोप और मध्य एशिया की जातियों तथा राजपूतों के रीति-रिवाजों का मिलान करने में भ्रमपूर्ण अनुमान भी किये गये हैं। कुछ लोगों की लिखवाई हुई बातों की ठीक-ठीक जांच न कर उनको ज्यों की त्यों लिखने से भी अशुद्धियां रह गई हैं। इस पर भी टॉड का इतिहास एक अपूर्व ग्रन्थ है।"[1]

3– सूर्यमल मिश्रण रचित वंशभास्कर के बारे में उनकी यह धारणा रही है— "इस वृहद ग्रन्थ का कर्ता उत्तम कवि और अच्छा विद्वान था, परन्तु इतिहासवेत्ता नहीं। इसलिये उसने विक्रम संवत की सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ के आसपास तक का इतिहास अधिकतर भाटों के आधार पर लिखा, जो बहुधा विश्वास योग्य नहीं है। पिछला इतिहास ठीक है, परन्तु उसमें भी विशेष अनुसंधान किया हो, ऐसा पाया नहीं जाता।"[2]

4– श्यामलदास के वीर विनोद के बारे में लिखा है— "उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह ने अपने विद्यानुराग और इतिहास-प्रेम के कारण महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास को "वीर विनोद" नामक उदयपुर का विस्तृत और राजपूताने के अन्य राज्यों तथा जिन जिनसे मेवाड़ का सम्बन्ध रहा, उनका संक्षिप्त इतिहास लिखने की आज्ञा दी। इस वृहद् इतिहास के लिखने तथा छपने में अनुमानतः 12 वर्ष लगे और एक लाख रुपये व्यय हुए। कर्नल टॉड के ग्रन्थ के अतिरिक्त इसमें फारसी तवारीखों, कुछ शिलालेखों, ख्यातों तथा संस्कृत और भाषा काव्यों से बहुत कुछ सहायता ली गई है। कई हजार पृष्ठों में यह वृहद् ग्रन्थ समाप्त हुआ है। टॉड के पीछे ऐसा कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं बना। इसके पहले खण्ड के प्रारम्भ में कई अनावश्यक बातें भर दी गई हैं, तो भी यह ग्रन्थ इतिहास के लिये अवश्य उपयोगी है।"[3]

1– राजपूताने का इतिहास (दूसरा खण्ड) भूमिका, पृ. 34–35.

2– वही पृ. 37.

3– वही पृ. 38,

वे तत्कालीन इतिहासकारों की शोध प्रवृत्ति से भलीभांति परिचित थे। जब यदुनाथ सरकार ने जयपुर राज्य का इतिहास तैयार कर राज्य में प्रेषित किया तब ओझा ने उनका इतिहास देखे बगैर ही अपनी सम्मति निम्नलिखित शब्दों में हरनारायण पुरोहित को लिख भेजी थी—"इसमें प्राचीन इतिहास तो नाम मात्र का है। इसमें फारसी तवारीखों, पत्रों एवं अखबार, दरबारी मोअल्ला आदि से जयपुर की सेवाओं का विस्तृत उल्लेख होगा। जयपुर के इतिहास का सम्बन्ध राजपूताना के कई राज्यों से है और उसकी बहुत कुछ सामग्री जयपुर राज्य के शिलालेखों, संस्कृत तथा भाषा के ग्रन्थों आदि से मिल सकती है जिसकी तरफ सर जदुनाथ की दृष्टि नहीं है।"[1]

वे उस समय के युवा इतिहासकार डॉ० रघुवीरसिंह जी की लेखनी से बेखबर नहीं थे। उनकी ज्ञान गरिमा और शोध के प्रति गहरी रूचि को देखकर बहुत प्रभावित हुए थे। उनके बारे में वे लिखते हैं— "राजपूताना तथा सेन्ट्रल इण्डिया के वर्तमान राजकुमारों में सीतामऊ के सुयोग्य महाराजकुमार डॉ० रघुवीरसिंह का विद्याभिरूचि के कारण सर्वोच्च स्थान है। खोज और अन्वेषण के कार्यों से उसको अत्यन्त अनुराग है और वह निरन्तर इन कार्यों में व्यस्त रहता है। ...इतिहास उसका प्रिय विषय है और उसकी रचनाओं में "मालवा युगान्तर" नामक पुस्तक वहां के इतिहास पर नूतन प्रकाश डालती है। आशा है कि उसकी सर्वतोमुखी प्रतिभा और लगन से भविष्य में ऐतिहासिक जगत को बहुत कुछ लाभ होगा।"[2]

खोज कार्य व इतिहास लेखन में उन्होंने कदापि जल्दबाजी नहीं की एक सुनिश्चित योजनाबद्ध तरीके से बड़े ही धैर्य के साथ इतिहास ग्रन्थों की रचना की। वर्णित घटना की पुष्टि हेतु सभी मुख्य स्रोतों का उल्लेख ही नहीं किया बल्कि उस घटना के बारे में पाये जाने वाले सभी विवरणों का उल्लेख यथास्थान कर शोधार्थियों के लिये पूर्ण जानकारी दे दी है। यही कारण है कि ओझा के ग्रन्थ दूसरे इतिहास ग्रन्थों की तुलना में कहीं ज्यादा प्रामाणिक और उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

श्यामलदास और विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने राजकीय कार्यालय में रहकर इतिहास ग्रन्थ लिखे। उन्हें सामग्री संकलन में कोई विशेष श्रम नहीं करना पड़ा और न ही अपने ग्रन्थ को छपाने के आयोजनों में उन्हें आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। उनके निर्देशन व सहायकों के परिश्रम से इतिहास ग्रन्थों का निर्माण हुआ और राजकीय खर्चे से उनके ग्रन्थ छापे गये परन्तु ओझा की स्थिति उनसे बिल्कुल भिन्न थी। इतिहास सामग्री के संकलन व लेखन कार्य में उन्हें पूर्णरूपेण कोई सहायता नहीं मिली। अपने निजी खर्च से ही कई ख्यातों की नकलें करवाई तथा सामग्री

1– परम्परा, भाग 66–67, पृ. 75.

2– ओझा : प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ. 351–52 पाद.

संकलन में भी काफी धन व्यय करना पड़ा और अपने ग्रंथ छपवाने का बीड़ा भी स्वयं ने ही उठाया था।

इतिहास लेखन में उनका दृष्टिकोण सुस्पष्ट और सुलझा हुआ था। उनका उद्देश्य सही व प्रामाणिक विश्वसनीय इतिहास लिखने का था। वे लिखते हैं— "सच्चे इतिहासवेत्ता का यह कर्तव्य होना चाहिये कि वह प्रत्येक बात पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करें और अनुसंधान की कसौटी पर जो बात ठीक जचे उसे ही अपने इतिहास में स्थान दें। अतिशयोक्तिपूर्ण और जातीय पक्षपात–सूचक बातों पर विश्वास करना उचित नहीं।"[1]

इतनी कुछ विशेषताओं के बावजूद ओझा के ग्रंथों में कुछ कमियां पाई जाती हैं। उन्होंने उदयपुर व बीकानेर राज्यों के प्रति ज्यादा मोह दर्शाया है। हम देखते हैं मेवाड़ व मारवाड़ के पारस्परिक संघर्ष के वृत्तांत में मेवाड़ की पराजय के उल्लेख को वे किसी प्रकार टालने का प्रयास करते हैं परन्तु मारवाड़ की पराजय का उल्लेख प्रमाणस्वरूप पाद टिप्पण में देते हैं। जोधपुर के नरेशों की बुराइयों को कुछ ज्यादा ही उछालते हैं तो दूसरी ओर बीकानेर नरेशों की गुणग्राह्यता का प्रदर्शन कुछ बढ़ा-चढ़ा करते हैं। राज्य आश्रित में लिखी जाने वाली दयालदास की ख्यात की प्रशंसा-युक्त बातें बीकानेर राज्य के इतिहास में बिना किसी विवेचना के स्वीकार कर ली है। वस्तुतः ओझा को जोधपुर राज्य की ओर से इतिहास लेखन हेतु कोई सहयोग व अनुदान नहीं मिला था जबकि बीकानेर राजघराने की ओर से उन्हें काफी मदद प्राप्त हुई थी। यों व्यक्तिगत आकर्षणों व अन्यान्य कारणों से ओझा ने इतिहास लेखन हेतु विभिन्न राज्यों के मापदण्ड पहले ही निर्धारित कर अच्छे बुरे पक्ष उद्घाटित करने की धारणा बना ली थी जिससे राज्यों का निष्पक्ष इतिहास नहीं लिखा जा सका।

डॉ० रघुवीरसिंहजी के अनुसार ओझा स्वयं फारसी से अनभिज्ञ होने के साथ ही अजमेर में तदर्थ आवश्यक समकालीन ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतिलिपियां सुलभ नहीं होने के कारण उसे उनके प्राप्य अंग्रेजी या हिन्दी अनुवादों, सारांशों अथवा अन्य इतिहासकारों द्वारा दिये गये उनके संदर्भाल्लेखों पर ही निर्भर रहना पड़ता था जिससे विशेषतया मुगलकालीन ऐतिहासिक घटनाओं का उसका विवेचन अपेक्षाकृत कुछ अपूर्ण ही रह गया।[2] यह सत्य है कि ओझा को फारसी भाषा की जानकारी नहीं थी इसलिए उन्हें दूसरे विद्वानों पर निर्भर रहना पड़ा परन्तु राजपूताने का इतिहास मूलतः राजस्थानी व संस्कृत भाषा में लिखा मिलता है। राजस्थानी भाषा का उन्हें अच्छा ज्ञान था। स्थानीय मूल स्त्रोतों की जांच-पड़ताल स्वयं ओझा ने की थी। प्राचीन

1– डूंगरपुर राज्य का इतिहास, भूमिका पृ. 7.

2– राजस्थान के प्रमुख इतिहासकार, पृ. 39.

लिपि पढ़ने में तो वे प्रवीण थे। ऐसा तो कोई बिरला ही इतिहासकार होगा जो सब भाषाओं और मूल स्रतों की परख करने की क्षमता रखता हो। वस्तुतः संदर्भ संकलन में व भाषा इत्यादि को लेकर इतिहासकार को दूसरों पर निर्भर रहना ही पड़ता है।

डॉ. के. एस गुप्ता की यह धारणा रही है कि ओझा ने अपने काल की प्रचलित भावनाओं को भली प्रकार से नहीं दर्शाया तब तो उन्होंने राजस्थान के इतिहास को अंग्रेजी दृष्टिकोण से ही देखा था। 1857 की क्रांति के दौरान राजस्थान की जन-भावनाओं को ठीक तरह से व्यक्त नहीं किया है। इसी प्रकार 18–19वीं शताब्दी में हो रहे धार्मिक–सामाजिक सुधार व स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रति उपेक्षा की भावना ही रखी है।[1] इसका कारण यह था कि लार्ड कर्जन की अनुकम्पा से वे अजमेर संग्रहालय के अध्यक्ष पद पर आसीन हुए अतः उनका अंग्रेजों के प्रति आकर्षण होना स्वाभाविक ही था फलतः अंग्रेजकालीन राजपूताने के इतिहास में उन्होंने यहां के शासकों व जन-साधारण की स्वाधीनता की भावनाओं पर पर्दा डालकर अंग्रेजों की उपलब्धियों को उजागर करने का प्रयास किया।

ओझा ने मुख्य रूप से राजस्थान के राज्यों के राजनैतिक इतिहास ही लिखे थे इसलिये डॉ. एल.पी. माथुर आदि विद्वानों ने यह तर्क दिया है कि ओझा ने सामाजिक व आर्थिक पहलुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास नहीं किया।[2] लेकिन सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक दशा के प्रमाण हेतु उपयुक्त आधार सामग्री उस समय प्रकाश में नहीं आई थी और इतिहास लेखन का ध्येय व आदर्श भी बदला नहीं था इसलिये अलग से इन पहलुओं का वृतांत नहीं दिया गया बल्कि राजनैतिक इतिहास में ही यथा-स्थान सामाजिक, धार्मिक विवरणों को संजोने का प्रयास किया। कुछ विद्वानों की यह धारणा रही है कि ओझा ने सुलभ सामग्री के अनुसार प्रायः सभी घटनाओं व युद्धों का विस्तृत विवरण दिया है परन्तु कारणों व परिणामों को दर्शाने का यत्न नहीं किया, लेकिन यह दोष वास्तव में उनका स्वयं का नहीं अपितु तत्कालीन सभी इतिहासकारों का है।

उन्होंने राजपूताने के इतिहास लेखन के लिये विस्तृत ठोसपूर्ण पीठिका बनाकर एक अग्रदूत की भांति इतिहास का प्रणयन किया। कई प्रश्नों के उत्तर दिये व कई प्रसंग कायम किये। उन्होंने निरन्तर खोज व गम्भीर अध्ययन के बाद राजनैतिक घटनावली की सुनिश्चित परम्परा कायम कर तत्कालीन आदर्शों के अनुसार इतिहास लिखने का प्रयास किया। कई अविदित् तिथियों को उद्घाटित किया तथा अशुद्ध

1– मज्झमिका, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर, 1979–80, पृ. 46.

2– डॉ. एल. पी, माथुर : हिस्टोरी ग्राफी एण्ड हिस्टोरियन्स ऑफ मॉर्डन इण्डिया, पृ. 170.

तिथियों का शुद्धिकरण किया। अनेक त्रुटित वंशावलियों को शुद्ध किया तथा अनेकानेक ऐतिहासिक लुप्त कड़ियों को जोड़ा। स्थानीय स्रोतों का फारसी आदि स्रोतों से सही तालमेल बैठा कर घटनाओं को परखने का सुयत्न किया। इस प्रकार राजस्थान के इतिहास सम्बन्धी वैज्ञानिक ढंग से अनुसंधान करने वाले वे एकमात्र विद्वान थे।

डॉ. कानूनगो के अनुसार—"महामहोपाध्याय ओझा वास्तव में राजपूत इतिहास के अनुसंधान के क्षेत्र में कविराजा श्यामलदास जी के सुयोग्य उत्तराधिकारी थे। लगभग एक दशक पश्चात्, अपने बहुमूल्य साहित्यिक योगदान के अलावा राजपूत इतिहास के अनुसंधान के क्षेत्र में अपने सभी पूर्ववर्ती इतिहासकारों से गुणात्मक एवं संख्यात्मक रूप में आगे बढ़ते हुए, पूर्ण आयु एवं प्रसिद्धि प्राप्त कर परलोकवासी हुए।"[1]

सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. रघुवीरसिंह जी के अनुसार :—"जिस वयोवृद्ध ने आजीवन सरस्वती की उपासना की, जिस ज्ञानवृद्ध ने जन्म देने वाले अपने प्यारे प्रदेश के प्राचीन गौरव को अधिक स्पष्ट, उज्ज्वल और आदरणीय बनाने के लिए सतत प्रयत्न किया, जिसे विदेशी विद्वानों तक ने पूजा, जिसके चरणों में बैठकर सरस्वती के अनेकों वरद्पुत्रों ने विद्यादान लिया और उसका शिष्यत्व प्राप्त कर गौरव का अनुभव किया तथा जिसकी लेखनी के कृपा-कटाक्ष के लिये राज्यश्री के प्यारे और लक्ष्मी के लाड़िले तक लालायित रहे थे, चौरासी वर्ष की आयु में ऐसे सफल साधक की शांतिपूर्ण मृत्यु कदापि शोचनीय नहीं है। ईश्वर उसकी मुक्त आत्मा को परमशान्ति प्रदान करें, यही एकमात्र प्रार्थना है।

एक विदेशी राज्य के प्रश्रय में रहकर भी जीवन भर राजस्थान के कंटीले, पत्थरपूर्ण प्रदेशों, रेतीले मैदानों तथा सघन जंगलों से आच्छादित पहाड़ों में भटक-भटक कर अज्ञात विस्मृत स्थानों, भग्न खण्डहरों तथा भस्मसात झोंपड़ियों में वह राजस्थान के विगत गौरव को ढूंढता फिरा। विनाश के देवता की उस पूज्या नगरी ने अपने आराध्य देव की प्रलयंकारी शक्ति को चुनौती देकर विगत भूतकाल को पुनः जीवित सा कर देने वाले इस अनोखे जादूगर के सम्मुख नत-मस्तक कर उसे श्रद्धांजलि भेंट की तथा आचार्य के पद पर आरूढ़ कर उसे पूजा। अभूतपूर्व आत्म-त्याग, प्रकाण्ड विद्वता और चरम ऐश्वर्य-विलासिता की लुप्त त्रिवेणी को उस रेतीले, कंटीले, पथरीले दुर्गम राजस्थान में भी ढूंढ निकालने तथा उसे एक सजीव सत्य बना देने वाले इस अदम्य साहसी के सिर पर भारतीय त्रिवेणी के प्यारे भक्तों को भी बरबस ताज रखना पड़ा और वे उसके अनुयायी बन गये।"[2]

1– डॉ. के. आर. कानूनगो : स्टडीज इन राजपूत हिस्ट्री, पृ. 109.

2– शोध पत्रिका, भाग-1, पृ. 119-20

पण्डित मोतीलाल मेनारिया के शब्दों में :— "पण्डितजी (ओझा) इतिहास के धुरंधर विद्वान थे। विशेषकर राजस्थान के इतिहास का इन्हें असाधारण ज्ञान था और उस पर अथॉरिटी समझे जाते थे। हमारे देश में ऐसे विद्वानों की बहुत कमी है जो इतिहासकार होने के साथ-साथ पुरातत्वज्ञ और मुद्रा–विज्ञानवेत्ता भी हों। परन्तु पण्डितजी में ये तीनों बातें एक साथ पाई जाती थी। इसलिए इनके इतिहास ग्रन्थ छिछले नहीं, बल्कि प्रामाणिकता और गम्भीरता लिए हुए हैं। ये प्राचीन लिपिज्ञान विशेषज्ञ भी थे। इनका "प्राचीन लिपि माला" नामक ग्रन्थ अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की वस्तु है।"[1]

महाराष्ट्रीय ज्योतिषी विनायक शास्त्री बेतल की प्रेरणा के अनुसार ओझा ने इतिहास ग्रन्थ राष्ट्रभाषा हिन्दी में ही लिखे। इतिहास के साथ हिन्दी भाषा से उनका गहरा लगाव हो गया था। हिन्दी में पुस्तकों के लिखने के साथ वे पत्र व्यवहार भी हिन्दी में ही किया करते थे। वे बहुत व्यावहारिक एवं प्रौढ़ भाषा लिखते थे। छोटे-छोटे वाक्य इस प्रकार लिखते कि प्रत्येक वाक्य जंजीर की कड़ी की तरह एक दूसरे से जुड़े हुए रहते थे। उन्होंने नरेशों के व्यक्तित्व को दर्शाने के लिये बहुत ही उत्कृष्ट शैली का प्रयोग किया है। उनकी दृष्टि सदा तथ्य निरूपण की ओर रहती थी। उन्होंने ख्यातें, बातें, गीत, कवित्त व दोहे आदि राजस्थानी कृतियों का गहराई से अध्ययन ही नहीं किया बल्कि उनकी उपयोगिता के बारे में लोगों को समुचित जानकारी देकर मातृ-भाषा का प्रचार–प्रसार किया। डॉ. मोतीलाल मेनारिया के अनुसार अंग्रेजी साहित्य में जो आदरणीय स्थान प्रसिद्ध इतिहासकार गिबन (Gibbon) का है वही हिन्दी में ओझाजी को प्राप्त है।[2]

ओझा प्रथम इतिहासकार थे जिन्होंने स्थानीय स्रोतों के महत्व को परखा और इतिहास ग्रन्थों में वैज्ञानिक ढंग से उनका उपयोग किया। कितने ही अज्ञात व अप्रकाशित स्थानीय स्रोतों के बारे में उन्होंने अत्यावश्यक जानकारी दी और जांच-पड़ताल कर जहां उनकी उपयोगिता के बारे में विद्वानों का ध्यान आकृष्ट कराया वहां अनेक भूलों, अशुद्ध तिथियों को सुधारने का भरसक प्रयास किया। इस दिशा में उनकी यह महत्वपूर्ण देन रही है। नवीन अनुसंधान में निश्चय ही ओझा की यह शोध साधना हमारा मार्ग प्रशस्त करेगी और इसके लिये इतिहासकार व संशोधक सदैव उनके अनुग्रहीत रहेंगे।

1– राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. 282–83.

2– राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज (प्रथम भाग) पृ. 15, हिन्दी विद्यापीठ, उदयपुर।

पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ

डॉ. गोपाल व्यास
व्याख्याता इतिहास
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डूंगरपुर (राज.)

महामहोपाध्याय पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ का जन्म एक सुसंस्कृत कश्मीरी ब्राह्मण परिवार में हुआ था।[1] उसके माता-पिता का नाम चांदरानी और मुकन्द मुरारी था। शिक्षित वातावरण में पला-बढ़ा रेउ संस्कृत एवं अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञाता था। इतिहास के प्रति उसका लगाव सम्भवतः तत्कालीन लेखन में भारतीय दृष्टिकोण के अभाव को देखते हुए जुड़ा था। पूर्ववर्ती इतिहासकारों में उसने विसेन्ट स्मीथ, डी.आर. भण्डारकर, ग्रान्ट डफ, सी. वी. वैद्य आदि की इतिहास-कृतियों का अच्छी प्रकार अध्ययन किया था। उसे इनके इतिहास ग्रन्थों में अधिक खोज की आवश्यकता महसूस हुई, अतः अपने संस्कृत के ज्ञान का प्रयोग उसने इतिहास-लेखन हेतु प्रवत्त किया। राजपूताना के महान इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड उसकी प्रेरणा के स्रोत थे ही फिर राजस्थान के आधुनिक विज्ञ इतिहासकार पण्डित गौरीशंकर हीराचंद ओझा के सान्निध्य ने उसका ध्यान राजपूताना के इतिहास पर स्थिर कर दिया। डिंगल भाषा का ज्ञान रेउ को ओझा द्वारा प्राप्त हुआ था।

पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ ने भी उसके समकालीन इतिहास पिपासु संस्कृत उद्‌भट्टों की तरह[2] राजस्थान स्थित अप्रकाशित शिलालेखों, प्रशस्तियों, दानपत्रों आदि का अध्ययन कर उनके मूलपाठ अथवा शुद्धिपाठों का इतिहास या इतिहासपरक साहित्य की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन कराना प्रारम्भ किया।[3] उसकी शिलालेख अध्ययन

1– रेउ का जन्म 2 जुलाई, 1890 ई, को हुआ और मृत्यु 1969 में हुई। (श्री रामदत्त थानवी जोधपुर का पत्र 11.8.87) –सम्पादक।

2– उदयपुर राज्य में यह कार्य पण्डित अक्षयकीर्ति व्यास ने किया था।

3– जनवरी 1914 ई. की 'सरस्वती' प्रयाग में रेउ का प्रथम लेख प्रकाशित हुआ था। यही लेख कतिपय परिवर्तन के पश्चात् 'जर्नल एण्ड प्रोसीडींग्स ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता (न्यूसीरीज) खं. 10, क्र. 6; 1914 ई. में छपा था। इसी प्रकार मई 1916 ई. में इण्डियन एण्टीक्वेरी, खं. 45 में पटनारायण-शिलालेख प्रकाशित किया गया था।

रूचि तथा मुद्राशास्त्र के ज्ञान को देखते हुये[1] जोधपुर के महाराजा सुमेरसिंह (राज्य-काल 1911–1918 ई.) ने उसे 1911 ई. में राजकीय सेवा में नियुक्त किया था।[2] 1916 ई. में रेउ की योग्यता से प्रभावित होकर उसे राजकीय इतिहास–कार्यालय में लगाया गया। इस प्रकार जोधपुर राजवंश के व्यक्तिगत पुरालेखों को देखने-पढ़ने और उन पर चिन्तन करने का रेउ को अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। शायद इसी कारण उसकी बौद्धिक एकाग्रता राठौड़ वंश पर कार्य करने की ओर प्रेरित हुई थी। इतिहास-कार्यालय में कार्यरत रेउ ने जहां शोधात्मक लेखों के लेखन का कार्य निरन्तर रखा वहीं भारत के प्राचीन राजवंश[3] नामक पुस्तक को लिखना शुरु कर दिया। इसी काल में सुमेरसिंह के उत्तराधिकारी महाराजा उम्मेदसिंह (राज्यकाल 1918–1947 ई.) द्वारा उसको राजकीय संग्रहालय के सहायक अधीक्षक पद पर पदोन्नत किया गया। पं. रेउ के सहायक अधीक्षक की सेवा अवधि के अनन्तर जोधपुर संग्रहालय ने कौतुक प्रदर्शन के स्थान पर इतिहासपरक स्वरूप ग्रहण किया था। संग्रहालय में 1926 ई. को पुरातत्व का एक अलग अनुभाग बनाया गया। किन्तु रेउ अधिक समय तक सहायक अधीक्षक के पद पर कार्य नहीं कर सका। पठन–पाठन एवं लेखन की तीव्र अभिरूचि ने उसे जसवन्त महाविद्यालय जोधपुर में संस्कृत विभाग के आचार्य पद की ओर लालायित् किया। 15 माह के अल्प समय में वह विद्यार्थियों के लिए भी प्रेरणा स्रोत बन गया। तभी रेउ को शैक्षिक कार्य छोड़कर महाराजा के आमंत्रण पर राजकीय संग्रहालय और सुमेर पुस्तकालय के अधीक्षक का पद ग्रहण करना पड़ा। इस पद पर रहते हुए अपनी मृत्यु (1947 ई.) पर्यन्त पण्डित रेउ मारवाड़ के इतिहास पर कार्य करता रहा।

इतिहास की कृतियां

रेउ द्वारा लिखे गये शोध-लेखों की संख्या को छोड़कर हम उसकी लिखी इतिहास पुस्तकों की गणना करने पर क्रमशः ये ग्रन्थ पाते हैं :—

(1) भारत के प्राचीन राजवंश (हिन्दी) भाग 1 (प्र. 1925 ई,) भाग 2 एवं भाग 3

(2) काइन्स ऑफ मारवाड़

1– कॉइन्स ऑफ मारवाड के संदर्भ में।

2– जोधपुर महाराजा प्रदत्त खास–सनद में उल्लेखित है कि उसने 30 वर्ष से भी अधिक राज्य-सेवा कर प्रशंसा अर्जित की। उसी के लिए उसे सनद प्रदान की जाती है। (मारवाड़ का इतिहास, भा. 2) यह सनद 1940–41 ई. में दी गई थी, अतः सेवा में आने का वर्ष 1910–11 ई. अनुमान किया जा सकता है।

3– यह पुस्तक तीन भागों में प्रकाशित हुई थी। प्रथम भाग 1925 ई. में प्रकाशित हुआ था।

(3) हिस्ट्री ऑफ द राष्ट्रकूट्स (अंग्रेजी प्र- 1933 ई. तथा हिन्दी प्र. 1934 ई.)

(4) मारवाड़ राज्य का इतिहास (हिन्दी) भाग 1 (प्र. 1938 ई.) भाग 2 (प्र. 1940 ई.)

(5) ग्लोरीज ऑफ मारवाड़ एण्ड द ग्लोरीयस राठौड़ (अंग्रेजी) प्र. 1943 ई.

(6) विश्वेश्वर स्मृति (हिन्दी)

(7) राव भोज (हिन्दी)

(8) ऋग्वेद का सामाजिक और ऐतिहासिक सार (हिन्दी)

(9) राठौड़ दुर्गादास (अंग्रेजी) प्र. 1948 ई.

विषय सामग्री

उल्लेखित ग्रन्थों में इतिहास की दृष्टि से राष्ट्रकूटों (राठौड़ों) का इतिहास[1] एवं मारवाड़ राज्य का इतिहास ही महत्वपूर्ण है। क्योंकि इन दोनों ग्रन्थों में भारत के राठौड़ राजवंश पर विस्तृत रूप में लिखा गया है जो अभी तक प्रकाशित ग्रन्थों में विस्तृतर है। राष्ट्रकूटों के इतिहास में राव सीहा के मारवाड़ में आने से पूर्व का दक्षिण लाट (गुजरात) और कन्नोज के राठौड़ों का इतिहास वर्णित है। जबकि मारवाड़ राज्य के इतिहास[2] में मारवाड़ के प्राचीन इतिहास का संक्षिप्त विवरण करते हुए पण्डित रेउ ने राव सीहा के मारवाड़ आने से लेकर 1935 ई. तक के शासकों के राज्यकाल का वर्णन किया है।

इस सामग्री को दो भागों में विभक्त करते हुए प्रथम भाग में महाराजा भीमसिंह (1793–1803 ई.) तक तथा द्वितीय भाग में महाराजा मानसिंह (1803–1843 ई.) से महाराजा सुमेरसिंह (1911–1918 ई.) तक का वर्णन है। रेउ के समकालीन महाराजा उम्मेदसिंह के शासनकाल का वर्णन परिशिष्ट 1 एवं 2 में

1– यह इतिहास सर्वप्रथम "भारत के प्राचीन राजवंश" भाग 3 में 1925 में प्रकाशित हुआ और इसके कुछ अध्याय सरस्वती (जून, जुलाई, अगस्त 1917) रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयर्लेण्ड के जर्नल में प्रकाशित हुए।

2– मारवाड़ राज्य के इतिहास लेखन के लिये जोधपुर राज्य की ओर से 1888 ई. में इतिहास कार्यालय की स्थापना की गई। राजकीय रेकार्ड के अलावा मारवाड़ के विभिन्न ठिकानों एवं गांवों से भी सामग्री बटोरी गई। रेउ ने इस सामग्री की पूरी जांच–पड़ताल कर राठौड़ों, भाटियों व चौहानों की अलग-अलग ख्यातें बनाई। यह सामग्री अब अभिलेखागार बीकानेर में सुरक्षित है। (डॉ. हुकमसिंह भाटी, राजस्थान के मेड़तिया राठौड़, पृ. 275–76)

1935 ई. तक ही दिया गया है। भाग 2 में विभिन्न (3 से 10 तक) परिशिष्टों में जोधपुर राज्य के भिन्न–भिन्न प्रशासनिक दफ्तरों (3–6), दरबारी ताजीमों (7), सिक्कों (8), राव अमरसिंह (9) तथा युद्धों का वर्णन (10) किया गया है। दोनों भागों की कुल पृष्ठ संख्या 772 है जिसमें 400 पृष्ठ प्रथम भाग के हैं। जोधपुर के राष्ट्रकूट नरेशों और उनके वंशजों का प्रताप (पृ. 16–19), विद्याप्रेम और उनकी दानशीलता (पृ. 20–26), धर्म (पृ. 27), कला कौशल (पृ. 28–30) आदि के साथ कुछ लेख राष्ट्रकूट के इतिहास में वर्णित हैं, वहीं इनकी कुछ पुनरावृत्ति 'ग्लोरीज' में की गई है। ग्लोरीज ऑफ मारवाड़ में राठौड़ों के संक्षिप्त इतिहास के साथ-साथ परिशिष्ट के रूप में रेउ द्वारा प्रकाशित इतिहास पत्र–पत्रिकाओं के लेख संकलित हैं। इनमें से कुछ लेख हिन्दी में मारवाड़ राज्य के इतिहास में भी उद्धृत हैं। कॉइन्स ऑफ मारवाड़ को मारवाड़ के इतिहास में परिशिष्ट क्रम 8 पर देखा जा सकता है।

'भारत के प्राचीन राजवंश' एक प्रकार से इतिहास लेखन की संकलन-भूमिका कहा जा सकता है। इसमें इतिहास–तथ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण सामग्री नहीं है। ऋग्वेद का सामाजिक और इतिहासिक सार निबन्धात्मक शैली की पुस्तक है जो ऋग्वेद-कालीन व्यवस्था का संकेत प्रदान करती है। दुर्गादास के एतिहासिक जीवन चरित्र पर लिखी पुस्तक 'राठौड़ दुर्गादास' में सामग्री–कलेवर की कोई शोधपरकता नहीं है बल्कि चरित्र पर लिखा गया संकलित ग्रन्थ है। अतः रेउ द्वारा लिखित मारवाड़ राज्य का इतिहास ही एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है जो आज भी शोधार्थियों के लिए उत्प्रेरक साधन है। इस ग्रन्थ में रेउ ने फारसी स्रोतों में वर्णित घटना क्रमों का राजस्थानी एवं संस्कृत स्रोतों के आधार पर तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए पाश्चात्य विद्वानों द्वारा उल्लेखित तथ्यों की पुनर्खोज की है। इसीलिए इस ग्रन्थ की जोधपुर का इतिहास जानने की अलग मौलिकता है विविध ख्यात ग्रन्थों का अध्ययन कर रेउ ने मारवाड़ के ठिकानों की वंशावलियां तैयार की थी। ये वंशालियां अब राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी में संग्रहीत हैं।

इतिहास शैली

रेउ द्वारा लिखित इतिहास को पढ़कर उसकी शैली और शोध–कलेवर पर भली प्रकार विचार किया जा सकता है। यद्यपि पण्डित गौरीशंकर ओझा से प्रभावित रेउ के समय में ही ओझा का जोधपुर राज्य का इतिहास भा. 1 एवं भा. 2 (प्र. 1938 एवं 1941 ई.) प्रकाशित हो चुके थे। रेउ ने ओझा का राजपूताना का इतिहास पढ़ा भी था। उसके अन्य समकालीन विद्वानों में पं. रामकरण आसोपा, पं. हरबिलास शारदा, जगदीश सिंह गहलोत आदि अपने इतिहास लेखन द्वारा मारवाड़ के इतिहास के संदर्भों को प्रकट कर रहे थे।[1] किन्तु रेउ की दृष्टि देख रही थी कि मारवाड़ के

1– मारवाड़ का मूल इतिहास (1933 ई.), महाराणा कुम्भा, मारवाड़ राज्य का इतिहास (1925 ई.)

इतिहास के प्रति व्याख्यात्मक शैली के साथ-साथ विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का अभाव ही रहा है। अतः उसने इसी दृष्टिकोण को अपनाते हुए अपना विश्लेषणात्मक ध्यान मात्र जोधपुर के राठौड़ राजवंश तक ही सीमित कर लिया। रेउ की इस प्रवृत्ति को एक स्वामिभक्त अधिकारी के रूप में स्पष्ट देखा जा सकता है।[1] इसीलिए उसकी विश्लेषणात्मक शैली में हमें भक्तिपूर्ण विवरणात्मक लेखनी के दर्शन होते हैं जो कि विवेचनात्मक बनते-बनते भी भटक जाती है। वैसे यह दोष मात्र रेउ में ही हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। उस काल के सभी राजस्थानी इतिहासकारों में यह दोष कुछ न कुछ मात्रा में तत्कालीन सामन्तिक-प्रभावों के फलस्वरूप देखा जा सकता है।

ओझा और रेउ के स्रोत-सामग्री की उपलब्धि की दृष्टि से तुलना की जाए तो रेउ का इतिहास लेखन राजकीय अभिलेखों से पुष्ट दिखलाई देता है किन्तु सामग्री-चयन एवं प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से दोनों विद्वानों में अधिक अन्तर है। यह सोचना भी सही नहीं है कि ओझा कृत जोधपुर का इतिहास चारण-भाटों के स्रोत पर आधारित है जबकि रेउ ने पहली बार पुरालेख स्रोत का प्रयोग किया था।[2] क्योंकि ओझा द्वारा लिखा गया इतिहास भी रेउ के जैसे ही महाराजाओं अथवा राजकुलों की अनुशंसा पर आधारित था, अतः साधनों की दृष्टि से दोनों को ही समान अवसर प्राप्त थे। यदि दोनों के अन्तर को स्पष्ट करना ही ध्येय हो तो अंग्रेजी भाषा के ज्ञान तथा जोधपुर वंश की उज्ज्वल कीर्ति[3] का प्रस्तुतीकरण ही रेउ की अलग विशेषता कही जा सकती है।

अब हम रेउ के कतिपय लेखन और उनके तथ्यों का अवलोकन करें जो उसके इतिहास का मूल्यांकन करने में सहायक हो सकते हैं।

राजपूत-उत्पत्ति

राजस्थान के इतिहास पर लिखने वाले प्रत्येक विद्वान ने परम्परा को ढ़ोने के लिए 'राजपूतों की उत्पत्ति' तथा उनके वंश तिर्धारण पर आवश्यक रूप से निरर्थक लिखा है। विश्वेश्वरनाथ रेउ भी इसी लेखन परम्परा का कट्टर समर्थक रहा था। उसने भी उत्पत्ति विषय पर विभिन्न प्रचलित धारणाओं का विवेचनात्मक शैली में विचार किया।[4] राजपूतों को शुद्ध आर्यों की सन्तान मानते हुए उन्हें प्राचीन क्षत्रिय

1– रेउ के ग्रन्थों में महाराजा के आशीर्वाद पूर्ण आलेख.

2– डॉ. एच.सी. टीक्कीवाल लिखित शोधपत्र – विश्वेश्वरनाथ रेउ एज ए हिस्टोरीयन.

3– जोधपुर राज्य के प्रधानमंत्री सर डोनाल्ड फील्ड का वक्तव्य, द्रष्टव्य – मारवाड़ राज्य का इतिहास, भा. 1, पृ 'च'

4– ग्लोरीज ऑफ मारवाड़, एपेन्डीक्स–ए; राजपूत, पृ. 1–15.

सिद्ध करने वाले भारतीय मनीषियों, धर्माधिकारियों तथा भाटों के विपरीत राजपूतों को विदेशी मानने वाले पाश्चात्य विद्वानों का रेउ ने खण्डन करते हुए सी. वी. वैद्य की धारणा का समर्थन किया है ।[1] इतिहासकार स्मिथ द्वारा राठौड़ों को जनजाति से निकले हुए मानने के विरोध में रेउ ने भारत के प्राचीन राजवंश भा. 3 और राठौड़ों के इतिहास में विस्तृत विवेचन किया है ।

राजस्थान के राठौड़

जोधपुर राजवंश पर ही रेउ ने अधिक ध्यान दिया था । अतः स्वाभाविक रूप से इस राजवंश के उद्‌गम पर उसका विचार करना आवश्यक था । पृथ्वीराज रासो, नैणसी, दयालदास, जोधपुर की ख्यातें और टॉड मारवाड़ के राठौड़ों को कन्नौजिया गहड़वाल मानते हुए इनका कन्नौज से आना लिखते हैं । रेउ ने भी इसी तथ्य को विस्तृत किया है । डॉ. हार्नली द्वारा प्रस्तुत गहड़वाल और राठौड़ भिन्नता को[2] उसने एक लेख– द राष्ट्रकूट्ज एण्ड द गहड़वाल्स्, पृ. 46 द्वारा खण्डित भी किया है । यहाँ तक कि 'राठौड़ों के इतिहास' के लेखन की समालोचनात्मक व्याख्या करने वाले विद्वान प्रो. आर.सी. मजूमदार के प्रत्युत्तर में पं. रेउ ने राठौड़ों को ही राष्ट्रकूट सिद्ध करते हुए उन्हें सूर्य वंश का बतलाया है । इसी लेख में[3] राठौड़ो की वीरता और गौरव को पुरातत्व, पुरालेख, फारसी साहित्य एवं भाषा के आधार पर तार्किक रूप में पुष्ट किया । जबकि महामहोपाध्याय पं. ओझा ने भी डॉ. हार्नली और केप्टन लुअर्ड[4] के मत का समर्थन करते हुए अपना मत रेउ के प्रतिकूल सिद्ध किया था किन्तु रेउ ने ओझा के इस विचार का कहीं खण्डन नहीं किया । शायद इसके पृष्ठ में अप्रत्यक्ष खण्डन का ध्येय रहा होगा जो कि हार्नली के विचारों से मेल नहीं खाता था । रेउ द्वारा उल्लेखित राव सीहा का कन्नौज के शासक जयचन्द्र गहड़वाल का पौत्र होना और उसके द्वारा महुई में अलग वंश की स्थापना आदि पर कई विद्वानों

1– कर्नल टॉड, स्मिथ, डी. आर. भण्डारकर आदि का वैद्य ने अपने ग्रन्थ – हिस्ट्री ऑफ मेडीवल हिन्दू इण्डिया भा. 1 में खण्डन किया है । जबकि भण्डारकर ने फोरेन एलिमेन्ट्स इन हिन्दू पोपूलेशन नामक लेख में राजपूतों में विदेशी अंश माना है । इन्डियन एन्टीक्वेरी, जि. 11.

2– इन्डियन एन्टीक्वेरी, जि. 14, पृ. 19.

3– जर्नल ऑफ इन्डियन हिस्ट्री, जि. 16, भा. 1, पृ. 19–23 (1937 ई.), यह लेख ग्लोरीज ऑफ मारवाड़ में भी प्रकाशित हुआ है.

4– मध्य भारत गज़ेटीयर, जि. 6, पृ. 10.

ने शंका प्रकट की है।[1] किन्तु अर्वाचीन शोध के आधार पर पं. रेउ के मत की ही पुष्टि हुई है।[2]

तिथि-क्रम

यद्यपि रेउ ने अपने इतिहास लेखन में घटनाक्रम के साथ-साथ तिथिक्रम प्रदान किया है पर ख्यातों में उल्लेखित श्रावणादि वर्ष को चैत्रादि वर्ष में परिवर्तित करने अथवा हिजरी और इलाही सन् को अंग्रेजी तिथिक्रम में बदलने के कारण कहीं-कहीं काल-गणना आगे-पीछे हो गई है। कुछ तिथियां तर्क-सम्मत भी नहीं हैं, जैसे – राव सीहा के मारवाड़ आने की तिथि रेउ ने 1212 ई. बतलाई है[3] जबकि यह समय टॉड को छोड़कर अन्य किसी भी स्रोत अथवा इतिहासकार द्वारा पुष्ट नहीं किया गया है। सीहा के उत्तराधिकारी आसथान के पश्चात् प्रदत्त तिथिक्रम कर्नल टॉड के आधार पर ही लिखा गया है जो डॉ. गोपीनाथ शर्मा के अनुसार तर्क संगत नहीं है।[4] रणमल्ल (1427–1438 ई-) के पश्चात् मन्डोर (जोधपुर) के शासकों के शासनकाल की तिथियाँ अन्य प्रमाणों से पुष्ट एवं तर्कयुक्त हैं। रेउ ने मारवाड़ के इतिहास की कई अविदित् तिथियों को उद्घाटित किया है[5] तो कई तिथियों का शुद्धिकरण भी किया है।

महाराजा गजसिंह में ज्येष्ठ पुत्र राव अमरसिंह की जन्मतिथि 12 दिसम्बर 1613 ई. के स्थान पर 17 अप्रेल तथा मनसब (2000/1300 से 2500/1500) वृद्धि 4 दिसम्बर, 1634 ई. की जगह 10 दिसम्बर आदि रेउ द्वारा शुद्धिकरण करने के उदाहरण हैं। वहीं अर्वाचीन शोधकर्त्ताओं द्वारा रेउ उद्धृत तियियों में परिवर्तन

1– द्रष्टव्य – डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी (हिस्ट्री ऑफ कन्नौज), डॉ. हेमचन्द्र रॉय (डाइनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इन्डिया), गौरीशंकर ओझा (जोधपुर राज्य का इतिहास) आदि.

2– डॉ. मीठ्ठालाल माथुर का शोध पत्र– इन्डियन हिस्टोरीकल क्वार्टरली (1944 ई.) पृ. 155–166, श्री राम वल्लभ सोमानी का शोधपत्र विश्वम्भरा, पृ: 81-84.

3– रेउ के समकालीन इतिहासकार श्री जगदीश सिंह गहलोत ने यह तिथि 1243 ई. लिखी है.

4– राजस्थाल का इतिहास, पृ. 241.

5– मारवाड़ राज्य का इतिहास, भा. 1, पृ. 167, 178, 241, 256, 267, 312, 352–53.

कर रेउ के कार्य को आगे बढ़ाया गया है।[1] उदाहरणार्थ– (1) महाराजा गजसिंह के निर्वाण तथा उसके उत्तराधिकारी जसवन्तसिंह के राज्यारोहण की तिथि डॉ. निर्मल चन्द्र राय द्वारा शुद्ध कर 18 मई तथा वि.सं. 1694 के स्थान पर 6 मई तथा 25 मई 1638 ई. और (2) डॉ. मीरा मित्र ने पुष्कर युद्ध की तिथि 19 अगस्त के स्थान पर 21 अगस्त 1679 ई सिद्ध की है। शासकों के परिजनों तथा सामन्तों की जीवन तिथियाँ रेउ के ग्रन्थ की विशिष्ट मौलिकता है जो आधुनिक शोधार्थियों के लिए संदर्भ का कार्य करती है।

घटनाक्रमएवं इतिहास में चरित्र

रेउ ने मारवाड़ राज्य का इतिहास, ग्लोरीज ऑफ मारवाड़ आदि ग्रन्थों में घटना प्रस्तुतीकरण व्याख्यात्मक, विवेचनात्मक तथा विश्लेषणात्मक पद्धतियों द्वारा किया है किन्तु उसका विवरण ऐतिहासिक तथ्यों को मारवाड़ वंश के प्रति संकीर्ण दृष्किोण से आबद्ध कर देता है। मारवाड़ के पूर्वमध्यकालीन इतिहास के संदर्भ में रणमल्ल और जोधा के वर्णन में ऐसा लगता है कि मेवाड़ के मोकल तथा कुम्भा की विजयों एवं शासन स्थायित्व में रणमल्ल की सेवाएँ ही मुख्य थीं और राणा क्षैत्रसिंह का ज्येष्ठ पुत्र रावत चूण्डा देशद्रोही था।[2] जबकि घटनाओं के वैज्ञानिक निरूपण द्वारा विदित् होता है कि रणमल्ल मेवाड़ में मारवाड़ राज्य की स्थापना का इच्छुक मारवाड़ से निकाला गया शरणार्थी था।[3] रणमल्ल का पुत्र जोधा महत्वाकांक्षी पिता का महत्वाकांक्षी पुत्र था। अतः चूण्डा के भाई राधवदेव की हत्या कराने के पश्चात् हंसाबाई अपने भाई के कृत्यों से शंकित हो गई तभी दोनों को दण्डात्मक परिणाम भुगतना पड़ा। जोधा के वर्णन में जोधा द्वारा मेवाड़ पर चढ़ाई तथा पीछोला तालाब तक घावे की घटना लिखते हुए रेउ भूल गये कि उस समय पीछोला (उदयपुर) नहीं अपितु पीछोली

1– डॉ. निर्मल चन्द्र रॉय (महाराजा जसवंतसिंह), डॉ, साधना रस्तोगी (मारवाड़ का शौर्य युग), डॉ. मीरा मित्र (महाराजा अजीतसिंह एवं उनका युग), डॉ. पद्मजा शर्मा (जोधपुर के महाराजा मानसिंह और उनका काल), डॉ. मांगीलाल व्यास (जोधपुर राज्य का इतिहास) आदि।

2– मारवाड़ का इतिहास भा. 1, पृ. 74–79 एवं 87, ग्लोरीज ऑफ मारवाड़, पृ. 15

3– रणमल्ल के चरित्र पर लिखते समय रेउ इतिहासपरक दृष्टि से हटकर साहित्य-परक दृष्टिकोण अपनाते हुए लिखते हैं कि रणमल्ल पर दोषारोपण करना "सूर्य पर धूल उछालने के समान है" मा. ई. भा. 1. पृ. 82, जबकि रावत चूण्डा को मेवाड़ प्रशासन से उपेक्षित कराने का कार्य राणमल्ल द्वारा ही किया गया था।

गाँव का छोटा सा तालाब था। अतः जोधा के धावे का यहां क्या महत्व हो सकता था ?

इसी प्रकार जोधा की पुत्री शृंगारदेवी का. कुम्भा के पुत्र रायमल से विवाहोल्लेख रेउ ने जानबूझ कर उपेक्षित किया है जबकि घोसुंडी बावडी की प्रशस्ति वि.सं. 1504 उसके काल में प्रकाशित हो चुकी थी।[1] यह उपेक्षा इसलिए की गई कि मेवाड़ के मारवाड़ पर सामरिक दबाव से छुटकारा पाने का यह एक माध्यम था। इसके विपरीत जोधा द्वारा कुम्भा को पराजित करने का एकपक्षीय वर्णन कर इतिहास-भावना के साथ रेउ का पक्षपात स्पष्ट झलकता है। राठौड़ राजवंश की अनन्य भक्ति के दर्शन हमें हुमायूं-मालदेव सम्बन्धों की विवेचना में दृष्टिगत होते हैं। रेउ ने हुमायूं की सहायता नहीं करने का कारण हुमायूं द्वारा गायों की हत्या कर मालदेव के हृदय पर धार्मिक प्रहार को माना है जबकि मूल में इसका कारण मालदेव द्वारा शेरशाह के प्रति अपनाई जाने वाली कूटनीतिक प्रक्रिया थी, जिसमें वह असफल रहा और हुमायूं को साथ देने से मुकर गया। इसी क्रम में मालदेव द्वारा अपने पिता राव गांगा (1515-1532 ई.) की हत्या, राणा उदयसिंह एवं राव मालदेव के मध्य हुए कुम्भलगढ़ युद्ध में राव की पराजय,[2] राव चन्द्रसेन द्वारा नागौर दरबार में अकबर से संधि का प्रयत्न आदि घटनाएँ रेउ ने मात्र इसीलिए छोड़ दी कि इन घटनाओं से मारवाड़ के शासकों के अग्रजों की ख्याति पर आंच आती थी।[3]

उत्तर मध्यकालीन इतिहास में भी जसवंतसिंह को शिवाजी की सहायता करने वाला बतलाया गया है[4] जो सत्य नहीं है। वहीं महाराजा अभयसिंह द्वारा अपने पिता अजीतसिंह की हत्या के षड़यन्त्र का दोषारोपण बादशाह मोहम्मद शाह एवं राजा जयसिंह पर थोपा गया है।[5] जबकि आधुनिक खोजों से भी प्रमाणित हो चुका है कि हत्या अभयसिंह द्वारा कराई गई थी। दुर्गादास राठौड़ के प्रति रेउ ने अजीत सिंह की कृतघ्नता का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है।[6] इसके विपरीत मारवाड़ द्वारा

1– जर्नल ऑफ द एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, खण्ड 55, भा. 1, पृ. 79-82.

2– द्रष्टव्य– वीर विनोद भा. 2, पृ. 815 एवं मांगीलाल व्यास – जोधपुर राज्य का इतिहास, पृ. 194-95.

3– मारवाड़ रा परगना री विगत, भा. 1, पृ, 47-48.

4– मारवाड़ का इतिहास भा. 1, पृ. 235.

5– उपरोक्त पृ. 332.

6– यह पद्य ही उदाहरण के लिए पर्याप्त है— "महाराजा अजमाल री जद पारख जाणी। दुरगा देशा काढ़ीया गोला गांगाली ॥"

मेवाड़ के प्रति किये गये सहयोग का लम्बा विवरण केवल जोधपुर के महाराजा एवं रेउ के आश्रयदाता उम्मेदसिंह से प्रशंसा प्राप्त करने हेतु लिख डाला।

इस लेखन–दुविधा से ग्रस्त पण्डित रेउ मराठा काल में भी अमीर खाँ का चरित्र चित्रण भली प्रकार नहीं कर पाये वहीं आंग्ल–मारवाड़ सम्बन्धों के विश्लेषण में महाराजा मानसिंह पर आंग्ल–प्रशासन के राजनीतिक दबाव को रेउ स्वामिभक्ति और कृपा ग्राहिता के मध्य टालमटूल कर लिख देते हैं।

महत्व

उपरोक्त उल्लेखों के दोष होते भी रेउ के इतिहास बोध और उसके लेखन का महत्व कम नहीं होता है। अपितु उसके वैज्ञानिक इतिहास लेखन के प्रति चारणी-व्यवहार को प्रकट करता है। इतना होते भी रेउ की विद्वता एवं दृष्टिकोण को पण्डित गौरीशंकर ओझा, यदुनाथ सरकार जैसे इतिहासाचार्यों ने सराहा है।[1] रेउ के लेखन पर विलियम इरवीन, फोब्स, मजूमदार, वैद्य, भण्डारकर आदि विद्वानों का प्रभाव था। इसीलिए रेउ का लेखन तत्कालीन अन्य इतिहासकारों के अनुरूप भारतीय-करण और पाश्चात्यीकरण के मध्य संघर्ष करता दिखलाई देता है। उस काल के अन्य राजस्थानी इतिहासकारों की तरह रेउ ने भी राजनीतिक इतिहास लिखने का उद्देश्य रखा था। इसीलिए सामाजिक–आर्थिक या सांस्कृतिक इतिहास पर वह अधिक नहीं लिख सका फिर भी स्पष्ट रूप में इस विषय के प्रति उसकी ललक अवश्य पढ़ने को मिलती है। राजनीतिक इतिहास पर रेउ लिखित ग्रन्थ सल्तनत एवं मुगलकालीन मारवाड़ को जानने के लिए उपयोगी साधन है जबकि मराठा एवं ब्रिटिशकालीन मारवाड़ हेतु सांकेतिक महत्व लिये हुए हैं।

इतिहासकार के रूप में रेउ उस पीढ़ी के चिह्न हैं जो एक ओर राजा-महाराजाओं की उदारवादी प्रेरणाओं के आश्रय पर उनके राजप्रासादों में दबी पड़ी एतिह्य सामग्री को इतिहास में उलीच रही थी किन्तु अपनी भावनाओं को लेखन द्वारा स्वतन्त्र रूप से प्रकट करने में असमर्थ थीं। रेउ भी 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक हुए इतिहासकारों की श्रेणी का एक प्रतिनिधि था जिसने ख्यात–बात, लोककथाओं से लेकर पुरातत्व, पुरालेख आदि प्राप्त स्रोतों का अपने ग्रन्थों में संदर्भ सहित प्रयोग किया वहीं फारसी इतिहास से पुष्ट इतिहास ग्रन्थों की सामग्री को कसौटी पर कसते हुए राजस्थान के इतिहास को भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण अध्याय बना दिया।

इतिहासकार पं. रेउ ने मारवाड़ की ख्यात को मारवाड़ के इतिहास में मौलिक स्वरूप प्रदान किया जिसने कि भावी शोधकर्त्ताओं के लिए स्थानीय इतिहास में ख्यातों

1– ग्लोरीज ऑफ मारवाड़, भूमिका 'ए'

के महत्व को अधिकाधिक प्रतिपादित् करने की ओर प्रेरणा का कार्य किया। अतः रेउ का इतिहास एवं उसका लेखन मारवाड़ के इतिहास की संयोजना के लिए आज भी दिशासूचक है।

रेउ की इतिहास–सामग्री से उपकृत तथा सहायता लेने वाले कई शोध ग्रन्थ आज मारवाड़ का विस्तृत्तर अध्याय लिख चुके हैं। इनमें विशेष रूप से डॉ. वी. एस. भार्गव का मारवाड़–मुगल्स, डॉ. दशरथ शर्मा का राजस्थान थ्रू द एजेज, डॉ. वी. एस, भटनागर का सवाई जयसिंह, डॉ तारा मंगल का महाराणा कुम्भा, डॉ. जी. डी. शर्मा का पॉलीटिक्स एण्ड एडमीनीस्ट्रेशन, डॉ. निर्मला उपाध्याय का एडमीनीस्ट्रेशन ऑफ मारवाड़ आदि सहित इसी लेख में संदर्भित अन्य शोध सम्मिलित हैं। इन अर्वाचीन लेखकों ने रेउ के इतिहास से सामग्री प्राप्त की है, साथ ही उसके लेखन में उपस्थित कई तथ्यों का वैज्ञानिक शुद्धिकरण भी किया है। अतः रेऊ का इतिहास अध्ययन करते समय उल्लेखित ग्रन्थों को यदि ध्यान में रखा जाए तब रेउ के लेखन की विशेषता स्पष्ट रूप से महत्व लिए हुए दिखलाई देती है।

पं. रामकर्ण आसोपा

विक्रमसिंह गून्दोज

शोध सहायक

राजस्थानी शोध संस्थान

चौपासनी (जोधपुर)

राजस्थान के इतिहासकारों में कविराजा श्यामलदास, डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पं. रामकर्ण आसोपा, मुन्शी देवीप्रसाद और हरविलास शारदा आदि का नाम इतिहास लेखकों की प्रथम पीढ़ी में विशेष सम्मान के साथ लिया जाता है।[1] पण्डित रामकर्ण आसोपा ने अपने इतिहास लेखन का कार्य मारवाड़ तक हीं सीमित रखा। मारवाड़ में इतिहास लेखन की परम्परा का जो सूत्र मध्यकाल में मुहता नैणसी के बाद टूट कर बिखर सा गया था उसे फिर से पिरोने तथा उसमें सूत्रात्मकता और प्रामाणिकता सृजित करने के प्रयास में काफी श्रम करना पड़ा और संभवतः इसी के परिणामस्वरूप आसोपा ने अपने इतिहास लेखन का कार्य मारवाड़ तक ही सीमित रखा।

आसोपा का यह कार्य सीमित क्षेत्र या राज्य विशेष से सम्बन्धित होने के कारण कम महत्व का नहीं आंका जा सकता क्योंकि उस समय तक यहां के इतिहास की क्रमबद्धता में अनेक प्रकार की भ्रान्तियां फैल गयी थी। विभिन्न ख्यातकारों ने अपने आश्रमदाताओं को प्रसन्न करने हेतु मन माने ढ़ंग से ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत किया। उससे सही स्थिति का ज्ञान करना दूभर हो गया था। अतः आसोपा द्वारा इस क्षेत्र में जो प्रयास किया गया वह समय और परिस्थिति को देखते हुए अपने आप में बेजोड़ कहा जायेगा क्योंकि उपलब्ध सामग्री व आवश्यक साधनों से अपने स्तर पर जितना कुछ किया जा सकता था उसमें उन्होंने कोई कसर नहीं रखी। गहरी निष्ठा व लगन के परिणामस्वरूप वे इस श्रमसाध्य कार्य को करने में सफल हो सके तथा अपनी ओर से जहां तक हो सका यहां के इतिहास की सही तस्वीर प्रस्तुत करने का प्रयास किया। ख्यातों, बातों, शिलालेखों, डिंगल गीतों व प्रासंगिक अन्य सामग्री का उपयोग करते हुए प्रामाणिक ढ़ंग से हर तथ्य को रखने

1– नारायणसिंह भाटीं : परम्परा : भाग 49-40 : पृ. 6

से उनका यह कार्य अधिक महत्व का बन पड़ा। तत्र-तत्र बिखरी सामग्री को ऐतिहासिक स्वरूप में नवीन ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया। इस प्रकार मारवाड़ के इतिहास लेखन में उनकी भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण रही है।

इस दृष्टि से तो मारवाड़ में इतिहास लेखन की परम्परा में नैणसी, कर्नल टॉड व मुन्शी देवीप्रसाद के पश्चात् अगली कड़ी के रूप में पं. रामकर्ण आसोपा का नाम आता है। आसोपा ने मारवाड़ राज्य के इतिहास लेखन के कार्य के साथ यहां के प्रमुख ठिकानों का इतिहास लिखकर अनेक अज्ञात पक्षों पर सर्वप्रथम प्रकाश डाला। जोधपुर के राजकीय इतिहास कार्यालय में वर्षों तक वे कार्यरत रहे और करीब दो दशक का समय तो उन्होंने महत्वपूर्ण आधारभूत सामग्री को एकत्र करने में लगाया और उसके पश्चात् इतिहास लेखन का कार्य प्रारंभ किया। इस प्रकार मारवाड़ के इतिहास से सम्बन्धित सामग्री को एकत्र कर उन्होंने स्थाई महत्व का कार्य किया जिसका उपयोग कर अन्य लोगों ने यहां के इतिहास को प्रकाश में लाने का प्रयास किया।

जोधपुर राज्य के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली महत्वपूर्ण ख्यातें आदि के संदर्भ देते समय इतिहासविद् पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने मुहता नैणसी व मुन्शी देवीप्रसाद के ऐतिहासिक योगदान का उल्लेख किया है[1] किन्तु न जाने क्यों पं. रामकर्ण आसोपा का जिक्र नहीं किया जबकि मारवाड़ के इतिहास लेखन में आसोपा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आसोपा ने ओझा व रेउ से पूर्व इस दिशा में कार्य ही नहीं किया 'मारवाड़ का मूल इतिहास' लिखकर उनका मार्ग प्रशस्त किया। वैसे भी आसोपा मारवाड़ के इतिहास प्रेमी पाठकों से विस्मृत से ही रहे। उसका एक कारण तो यह रहा कि उनके कार्य की समीक्षा व सही मूल्यांकन के अभाव में इतना प्रचार प्रसार न हुआ अतः एक इतिहास लेखक के रूप में उनको जितनी प्रसिद्धि मिलनी चाहिए थी वह मिल नहीं पायी और दूसरा यह कि उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। वे जितने इतिहास प्रेमी थे उतने ही भाषा प्रेमी और सच्चे साहित्य सेवी भी थे। यहां के इतिहासकारों में पण्डित रामकर्ण आसोपा का विशिष्ट स्थान है क्योंकि उन्होंने न केवल इतिहास के संशोधक के रूप में अपितु राजस्थानी भाषा के उन्नायक के रूप में भी महत्वपूर्ण कार्य किया है और संस्कृत भाषा में भी उनकी असाधारण गति होने के कारण उसे माध्यम बनाकर 'राष्ट्रडोरय' जैसे महाकाव्य की रचना भी की।[2]

इस प्रकार इतिहास के साथ-साथ राजस्थानी और संस्कृत भाषा के भी वे ज्ञाता थे और राजस्थानी व संस्कृत में भी उन्होंने जो कार्य किया वह स्मरणीय रहेगा।

1– ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास : प्रथम खण्ड : भूमिका : पृ. 4 व 6

2– परम्परा : भाग-49-50 : सम्पादकीय पृ. 6

यहां उनके संक्षिप्त जीवन परिचय के पश्चात् इतिहासकार के रूप में उनके योगदान का विवेचन प्रस्तुत किया जायेगा।

जीवन परिचय

पं. रामकर्ण आसोपा का जन्म वि. सं. 1914 के भाद्रपद माह के कृष्णपक्ष की द्वितीया (7 अगस्त, सन् 1857) को उनके ननिहाल बडलू ग्राम में हुआ था।[1] इनके पिता का नाम बलदेव तथा माता का नाम सिणगारी (शृंगारदेवी) था। आसोपा के पूर्वज मूलरूप से आसोप गांव के रहने वाले थे अतः उनके पूर्वजों के दाहिमा और आसोपा अवटंक क्रमशः क्षेत्र तथा ग्राम के नाम ही हैं।[2] आसोप से इनके पूर्वज मेड़तानगर जाकर बसे और वहां के राव दूदा ने मेड़ता अपने अधीन कर सन् 1461 में पुनः बसाया तब से उनके पूर्वज उनके राज्य ज्योतिषी रहे। महाराजा विजयसिंह जी के समय इनके परपितामह राज्य ज्योतिषी गंगादास को मेड़ता में पच्चीस बीघा जमीन प्रदान की गई। दादा रघुनाथ तो मेड़ते में ही रहे पर इनके पिता बलदेव ज्योतिष की बजाय भागवत धर्म के प्रचारक के रूप में अधिक प्रसिद्ध हुए। पण्डित रामकर्ण आसोपा स्वयं साहित्यसेवी होने के साथ-साथ एक पुरातत्वज्ञ एवं इतिहास वेत्ता के रूप में उल्लेखनीय कार्य किये।

पं. रामकर्ण आसोपा ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा पिता बलदेवजी से प्राप्त की। सारस्वत व्याकरण, चन्द्रिका आदि का अध्ययन दादूपंथी साधु रामदास से किया। भागवत का अध्ययन, अपने पिता से, रघुवंश और माघकाव्य दक्षिणात्य पाडुरंगजी से, ज्योतिष यतिवर जबाहरमल से, वैद्यक ग्रंथों का अध्ययन जोशी मगनीराम से, लिपि लेखन पुरोहित कृष्णकरण से, शुक्ल यजुर्वेद की मध्यन्दिनी शाखा संहिता का अध्ययन बोहरा कनीराम से किया। इसके अतिरिक्त तीन वर्ष की अवधि में बम्बई के प्रसिद्ध विद्वजनों से उच्चशिक्षा प्राप्त की। इसके अन्तर्गत संस्कृत साहित्य, वेदान्त प्रज्ञाचक्षु गट्टूलाल महाराज से व्याकरण महामहोपाध्याय राजाराम बोडस से, काव्य और नाटक साहित्य का अध्ययन बैजनाथ शास्त्री व भाऊ शास्त्री से किया। इसके पश्चात् लगभग 9 वर्ष तक स्वतंत्र रूप से स्वाध्याय में जुटकर विभिन्न प्रकार की साहित्यिक विधाओं व विभिन्न विषयों का गहन मनन व चिंतन कर अपने ज्ञान में वृद्धि की तथा अपनी मौलिक सृजनात्मक क्षमता को विकसित किया।

इस प्रकार सन् 1861 से लेकर सन् 1883 तक लगभग 22 वर्ष तक वे अपने अध्ययन में लगे रहे और 27 वर्ष की अवस्था में (सन् 1884 में) दरबार हाई स्कूल,

---

1- पं. रामकर्ण आसोपा अभिनंदन ग्रंथ : पृ. 9; परम्परा–भाग–49-50 : पृ. 10

2- परम्परा—भाग–49-50–पृ. 9

जोधपुर में शिक्षक नियुक्त हुए। जब जोधपुर में महकमा तवारीख (इतिहास कार्यालय) स्थापित हुआ तब उन्होंने इस विभाग में गवेषणार्थ पण्डित पद का कार्य-भार सम्भाला। सन् 1920–21 में 63–64 वर्ष की अवस्था में कलकत्ता विश्वविद्यालय में राजस्थानी भाषा व डिंगल के अध्यापन हेतु प्रवक्ता के रूप में उनकी नियुक्ति हुई।[1] यह पहिला विश्वविद्यालय था जिसमें राजपूत इतिहास और मराठा इतिहास पढ़ाने का प्रावधान किया गया था। पण्डित जी राजपूत इतिहास के प्रथम प्रवक्ता व प्रथम इतिहासकार हैं जिन्होंने गवेषणात्मक तरीके से राजपूत इतिहास का सृजन किया था। आपके साथ मराठा इतिहास पढ़ाने के लिये सुरेन्द्रनाथ सेन की भी नियुक्ति हुई थी।[2] वे दो वर्ष का यहां से अवकाश लेकर कलकत्ता गये और युनिवर्सिटी में लेक्चरार का कार्य किया। वहां से लौटकर पुनः जोधपुर राज्य की नौकरी की। बीच की अवधि में 3 साल तक पुस्तक प्रकाशन में भी कार्य किया।

इस प्रकार 16 वर्ष तक जोधपुर में दरबार हाई स्कूल में बड़ी तत्परता से अध्यापन का कार्य किया और करीब 30 वर्ष तक महकमा तवारीख में कार्यरत रहे। इन दोनों स्थानों पर रहते हुए इस अवधि के दौरान उन्होंने यहां के साहित्य और इतिहास के उन्नयन और प्रणयन का महत्वपूर्ण कार्य किया। वे आजीवन इस कार्य में लगे रहे। इसके अतिरिक्त विभिन्न ग्रंथों का अनुवाद, संपादन आदि का कार्य भी किया जिसका यथास्थान आगे वर्णन किया जायेगा। 9 अक्टूबर सन् 1943 को 86 वर्ष की अवस्था में इनका निधन हुआ।[3]

अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् यहां के क्षेत्रिय इतिहास एवं पुरातत्व संबंधी शोध के प्रति नयी रुचि पैदा हुई और नवीन संशोधन युक्त इतिहास लिखने की ओर यहां के लोग प्रेरित हुए। सन् 1880 में मारवाड़ के इतिहास लेखन की परम्परा में एक नये अध्याय का श्रीगणेश होता है जब यहां महकमा तवारीख 'राजकीय इतिहास कार्यालय' की स्थापना होती है।[4] इसमें पं. रामकर्ण आसोपा ने लगभग 30 वर्ष तक कार्य किया और यहां की बिखरी हुई ऐतिहासिक सामग्री को एकत्र ही नहीं किया उसे संशोधित करके इतिहास का स्वरूप प्रदान किया।

पं. रामकर्ण आसोपा ने राठौड़ों का प्रारंभिक इतिहास जो अद्यावधि अंधकार में था (और अब भी विवादग्रस्त है) उसके लिए कन्नोज एवं पूना आदि स्थानों पर

1– पण्डित रामकर्ण आसोपा अभिनंदन ग्रंथ : पृ. 29–30

2– परम्परा : भाग : 49-50 : पृ. 17

3– परम्परा : भाग–49-50 : पृ. 21

4– परम्परा : भाग 49-50 : पृ. 42

स्वयं ने भ्रमण कर ऐतिहासिक सामग्री का अवलोकन व अध्ययन किया। इसके आधार पर उन्होंने राठौड़ों को कन्नौज की बजाय दक्षिण के राष्ट्रकूटों से जोड़ कर एक नयी मान्यता स्थापित की।

मारवाड़ राज्य का प्रामाणिक इतिहास लिखने में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा जब तक उन्हें पूर्ण रूप से संतोष नहीं हुआ तब तक उन्होंने राठौड़ों के पूर्व इतिहास को नहीं लिखा। इसकी बजाय राव जोधा का इतिहास लिखा जिसके सम्बन्ध में उन्हें पूरी ऐतिहासिक सामग्री एवं आधारभूत साक्ष्यों में कोई अनिश्चय की स्थिति दृष्टिगोचर नहीं हुई। इसके बाद में उन्होंने यहां के कई शासकों का इतिहास लिखा। फिर पूरे मारवाड़ का भी इतिहास लिखा।

पं. रामकर्ण आसोपा का महत्व इस बात से और भी बढ़ जाता है कि न केवल उन्होंने मारवाड़ राज्य व यहां के शासकों का इतिहास लिखा बल्कि यहां के जागीरदारों और सामन्तों का भी इतिहास लिखा। जोधपुर राज्य के विभिन्न ठिकानों का इतिहास लिखकर आसोपा ने मारवाड़ के क्षेत्रीय इतिहास लेखन की परम्परा का श्रीगणेश किया जिसके प्रति पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा और पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ भी उदासीन[1] ही रहे। यहां के इतिहास निर्माण में मात्र राजाओं का ही योगदान नहीं था। क्षेत्रीय अधिपतियों (जागीरदारों) की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ऐसे योद्धाओं और वीरों का जो अब तक उपेक्षित या अल्पज्ञात ही थे उनके वास्तविक योगदान का निरूपण क्षेत्रीय इतिहास द्वारा पं. आसोपा ने किया और यहां के इतिहास लेखन में एक नई दृष्टि प्रदान की।

आसोपा द्वारा लिखित ऐतिहासिक महत्व के ग्रंथ इस प्रकार हैं:—

1– मारवाड़ का मूल इतिहास—

इसमें तब तक की पश्चातकालीन घटनाएं यथास्थान जोड़ दी गई हैं। इस पुस्तक पर उन्हें राज्य की ओर से 1500 रु. का पुरस्कार मिला।

2– मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास—

ताम्रपत्रों, ख्यातों की सहायता से मारवाड़ के प्रारंभिक राठौड़ शासकों के राज्य काल का वृतांत सन् संवत निर्धारित कर 1688 ई. तक दिया है।

3– इतिहास नोबाज—

पं. छोगालाल ने इस इतिहास के लिखे जाने का बीजारोपण किया। पं. आसोपा ने पूर्व संकलित की गई सामग्री के आधार पर अपनी सूझ-बूझ से

1– परम्परा : भाग 49-50 : पृ. 106

यह इतिहास लिखा[1]। इसमें मारवाड़ के संस्थापक राव सीहा से राव सूजा तक के शासकों की संक्षिप्त जानकारी दिये जाने के पश्चात् उदावतों के मूल पुरुष उदा से नीबाज ठाकुर उम्मेदसिंह तक का इतिहास लिखा गया है। यह इतिहास वि. सं. 1994 में प्रकाशित हुआ। इसमें मुख्य रूप से लेखक ने नीबाज के उदावतों की भूमिका उजागर करने का प्रयास किया है।

4– ठिकाना संखवास का इतिहास

संखवास के चौहान ठाकुर माधोसिंह की प्रेरणा से दधवाड़िया चारण चंडीदान द्वारा संकलित की गई सामग्री के आधार पर पं. रामकर्ण आसोपा ने यह इतिहास लिखा और वि. सं. 1994 में प्रकाशित हुआ। इसमें सांचोरा चौहानों पर संक्षिप्त प्रकाश डालते हुए संखवास के ठाकुर राजसिंह से माधोसिंह तक का इतिहास लिखा गया है।[2]

5 - आसोप का इतिहास

कूंपावत राठौड़ के मूल पुरुष कूंपा से आसोप ठाकुर फतेसिंह तक का इतिहास दिया है। आसोपा ने शिलालेखों के आधार पर कुछ नवीन तथ्य प्रस्तुत करते हुए इस ठिकाने की महत्वपूर्ण उपलब्धियों पर प्रकाश डाला है।[3]

6– पोकरण का इतिहास, (7) नीबेड़ा का इतिहास—ये दोनों ग्रंथ अप्रकाशित हैं।

सम्पादन कार्य

रामकर्ण आसोपा ने ऐतिहासिक महत्व के ग्रंथों का सम्पादन कर उन्हें प्रकाशित करवाया। इस प्रयास से इन कृतियों में छुपे इतिहास को सर्वसाधारण के लिए सुलभ किया। इतिहासकारों व शोधार्थियों को मारवाड़ राज्य के घटनापूर्ण इतिहास की जानकारी में उनके द्वारा संपादित निम्नलिखित ग्रंथों से बड़ा सहयोग मिलता है। ये ग्रंथ हैं—

(1) राजरुपक—वीरभांण रतनू कृत

(2) सूरजप्रकाश—कविया करणीदान कृत

1– इतिहास नीबाज, भूमिका, पृ. ग, घ

2– डॉ. हुकमसिंह भाटी, : सोनगरा-सांचोरा चौहानों का इतिहास, पृ. 183

3– देखें लेख मारवाड़ का क्षेत्रीय इतिहास एवं रामकर्ण आसोपा, परम्परा भाग 49-50, पृ. 106, 125

(3) बांकीदास ग्रंथावली—प्रथम भाग

(4) नैणसी की ख्यात—प्रथम भाग

(5) वंश भास्कर—सूर्यमल्ल मिसण कृत

(6) प्रताप प्रकाश

इसके अतिरिक्त राठौड़ राजाओं की वंशावली का नक्शा आदि शुद्ध व संशोधित कर छपवाया। वंशभास्कर से भी राजस्थान के इतिहास की कई महत्वपूर्ण घटनाओं की जानकारी प्राप्त होती है तथा इसमें संशोधकों को आधारभूत ऐतिहासिक सामग्री मिलती है। 'प्रताप प्रकाश' में सर प्रतापसिंह (जोधपुर) से सम्बन्धित विभिन्न कवियों की रचनाएं हैं तथा सम्पादकीय में उनके संक्षिप्त जीवन का परिचय दिया है। इसके अलावा भारत मार्तण्ड नामक एक मासिक पत्र का करीब एक वर्ष तक उन्होंने सम्पादन भी किया। इस प्रकार पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उनका योगदान रहा।

आसोपा द्वारा लिखित ऐतिहासिक महत्व के अप्रकाशित ग्रंथ इस प्रकार हैं—

1– दक्षिण के राष्ट्रकूटों का इतिहास (अपूर्ण)

2– जोधपुर के राठौड़ राजाओं का इतिहास

3– महाराजा मानसिंह का संवत् 1880 से 1900 तक का इतिहास

4– टॉड राजस्थान की भूलों के नोट्स

5– महाराजा सरदारसिंहजी का इतिहास

6– जोधपुर राज्य के जागीरदारों का कुर्सीनामा

7– जोधाजी का इतिहास (संस्कृत में)

8– राठौड़ वंश का वृहत् इतिहास (संस्कृत में, 20 हजार श्लोक)

9– छीनर पैलेस शतक—संस्कृत हिन्दी अनुवाद सहित राठौड़ों का संक्षिप्त इतिहास

इस प्रकार उनके द्वारा रचित ग्रंथों में से अधिकांश अप्रकाशित हैं केवल मारवाड़ का मूल इतिहास, मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास और संखवास, नीम्बाज और आसोप ठिकाने के इतिहास ही प्रकाशित हो सके हैं और वे भी सर्वत्र सुलभ नहीं हैं। आसानी से उनके प्रकाशित ग्रंथों के उपलब्ध न होने के कारण तथा बहुत से ग्रंथों के अप्रकाशित अवस्था में रहने के परिणामस्वरूप पं. रामकर्ण आसोपा का एक संशोधक व इतिहासकार के रूप में मूल्यांकन नहीं हो पाया है।

पं. रामकर्ण आसोपा संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे तथा प्राचीन शिलालेखों को पढ़ने में बड़े निपुण थे। मण्डोर के पुराने किले से 12 वीं शताब्दी के एक शिलालेख को जो 33 टुकड़ों में विभाजित था तथा जिसे दयाराम साहनी व देवराज रामकृष्ण भण्डारकर भी नहीं पढ़ पाये उसे सप्ताह भर के परिश्रम से लेख के टुकड़ों को जोड़कर पढ़ लिया[1]। इस सम्बन्ध में डॉ. रघुवीरसिंह सीतामऊ का कथन द्रष्टव्य है— "रामकर्ण आसोपा ने सयत्न बहुत से प्राचीन शिलालेखों, ताम्रपत्रों, सनदों आदि को एकत्र कर सावधानीपूर्वक उनका अध्ययन किया था। उन सब के सही प्रामाणिक पाठ निर्धारित कर उन्हें यत्र-तत्र शोध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करवाया अथवा उनके मूल पाठ और हिन्दी अनुवाद अपने साथी इतिहासकारों को सुलभ कर दिये थे। पुरातत्व के क्षेत्र में ये सब उसकी महत्वपूर्ण उपलब्धियां अथवा उल्लेखनीय देन कही जा सकती है; जिससे भविष्य में भी इतिहासकार सदैव लाभ उठाते रहेंगे। परन्तु दुर्भाग्यवश पुरातत्व के क्षेत्र में उसकी इस सारी देन का सामूहिक आकार-प्रकार तथा समूचा स्वरूप एकत्रित रूप से सामने नहीं आया, जिससे उसका सही मूल्यांकन अबतक नहीं हो पाया है।"[2]

निम्नलिखित अभिलेख पं. आसोपा द्वारा पढ़े गये[3]—

1– जोधपुर का प्रतिहार बाउक शिलालेख (वि. सं. 894) वि. सं. 1955 में पढ़ा और मुंशी देवीप्रसाद ने अपने संग्रह में मारवाड़ के लेख नाम से छपवाया।

2– चाटसू का शिलालेख–वि. सं. 1959 में पढ़ा। मुशी देवीप्रसाद ने मारवाड़ के लेख नाम से छपवाया।

3– बीजापुर का धवल राष्ट्रकूट का शिलालेख वि. सं. 1053—एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द 10, पृ. 17 पर छपा।

4– भीनमाल के शिलालेख—स्वयं पढ़े और पुरोहित लक्ष्मीनारायण जी को दिये।

5– घटियाला का काकुक का शिलालेख—वि. सं. 918—मुन्शी देवीप्रसाद ने अपने संग्रह में मारवाड़ के लेख के नाम से छपवाया।

6– किणसरिया का दधीचिक चच्च का शिलालेख—वि. सं. 1059—एपिग्राफिया इण्डिका—जिल्द 12 : पृ. 56 पर छपा।

1– परम्परा : भाग : 49-50 : पृ. 14

2– वही : पृ. 45

3– पण्डित रामकर्ण जी आसोपा अभिनंदन ग्रंथ : पृ. 49-50; परम्परा–भाग 49-50 पृ. 23-24

7– किठासरिया के दधीचिक चच्च के लेख की टिप्पणी—इण्डियन एन्टीक्वेरी जिल्द 42, पृ. 267

8– मेड़ता के 15 शिलालेख–स्वयं पढ़े—बाबू पूर्णचन्दजी नाहर को जैन शिलालेख संग्रह में छापने के लिए कलकत्ता भेजे।

9– जैसलमेर के 10 शिलालेख—स्वयं पढ़े—छापने के लिये कलकत्ता भेजे।

10– बीकानेर के दरवाजों पर राठौड़ों की बंशावली का वृहत् शिलालेख पढ़ कर एल. पी. टेसीटोरी को दिये।

11– पाल के पास के 3 शिलालेख पढ़कर टेसीटोरी को भेजे।

12– फलौधी के शिलालेख पढ़कर डॉ. देवराज रामकृष्ण भण्डारकर को दिये।

13– नाडोल, नारलाई, बरकाणा, सांडेराव आदि के शिलालेख पढ़कर डॉ. देवराज रामकृष्ण भण्डारकर को दिये।

14– सांभर के सोलंकी मूलराज के शिलालेख को पढ़कर रेउजी को दिया।

15– पाटण के भीमदेव द्वितीय का अभिलेख—पढ़ा इण्डियन एण्टीक्वेरी : जिल्द 12 : पृ. 19 पर छपा।

16– दधिमती माता का शिलालेख (गुप्त) सं, 289—एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द 11 : पृ. 299 पर छपा।

17– सेवाड़ी का चाहमान रत्नपाल का ताम्रपत्र वि. सं. 1176—एपिग्राफिया इण्डिका : जिल्द 11 : पृ. 304 पर छपा।

18– लाडण् का सद्धरण का गयासुद्दीन तुगलक के समय का वि. सं. 1373 का शिलालेख—एपिग्राफिया इण्डिका : जिल्द 12 : पृ. 17 पर छपा।

19– मंगलाणा का दधिचिक जयचसिंह का शिलालेख—वि. सं. 1272 का—इण्डियन एन्टीक्वेरी : जिल्द 4 : पृ. 85 पर छपा।

20– भाडूंद का परमार पूर्णसाल का शिलालेख—वि. सं. 1102 का जर्नल आफ दी बाम्बे ब्रान्च ऑफ रॉयल एसियाटिक सोसायटी में छपा।

21– मैसूर के 20 शिलालेख—पढ़कर मैसूर के आर्किलोजिकल सर्वे के इन्चार्ज आर. श्री नरसिंहाचार्य को भेजे।

इसके अतिरिक्त 'आबू और मारवाड़ के परमार', गुहिल अपराजित के सं. 718 शिलालेख, (सरस्वती पत्रिका में) तथा गुहिल शिलादित्य का सामोली का सं. 703 का शिलालेख और प्रभासपाटण के सं 1442 के यादव भीम के शिलालेखों की समीक्षा नामक इतिहासपरक लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित करवाये।

पं. रामकर्ण आसोपा ने न केवल प्राचीन अभिलेखों को पढ़ा अपितु अपने समय में निर्माणाधीन मन्दिरों के शिलालेखों के निर्माण का कार्य भी किया क्योंकि वे एक सुविज्ञ भाषाविद् थे और साथ ही साथ वे पुरातत्व के ज्ञाता भी। जोधपुर के राजरणछोड़जी एवं पांचवां देवड़ी जी के मन्दिरों के शिलालेख (संस्कृत व हिन्दी दोनों भाषाओं में) व सुमेरपुर का शिलालेख बनाये। दधिमती माताजी के ताम्रपत्र में जोधपुर के राठौड़ राजाओं की प्रशस्ति भी नयी बनायी।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि पं. रामकर्ण ने न केवल मारवाड़ के अभिलेखों को पढ़ा बल्कि अन्य स्थानों के अभिलेख भी पढ़े। सहृदयता के साथ इस कार्य को किया जिसमें उनके पुरातत्व संबंधी ज्ञान की गहनता का भान सहज ही हो जाता है।

आसोपा का कृतित्व पुरातत्व और इतिहास तक ही सीमित नहीं रहा वे महान् भाषाविद तथा संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने 'राष्ट्रोडोदय' नामक ग्रंथ में संस्कृत भाषा में मारवाड़ का इतिहास लिखा। इसके अतिरिक्त उन्होंने कई ग्रंथों का संस्कृत व हिन्दी में अनुवाद किया। अनुवाद, संपादन व नये ग्रंथों की रचना इन तीनों कार्यों में आसोपा लगे रहे। इतिहास, संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी, व्याकरण एवं दर्शन के गहन अध्ययन की छाप उनकी विविध रचनाओं में देखने को मिली है।

कविराजा मुरारीदान के चार साहित्यक ग्रंथों का शोधन व संस्कृत में अनुवाद किया।

जसवन्त जसोभूषण, जसवन्तभूषण (हिन्दी अनुवाद) तथा यशवन्त यशोभूषणम् संस्कृत में अनुवादित ग्रंथ हैं। इसके अतिरिक्त कविकल्पलता, श्रीसूक्त, दधिमत्यष्टक, ईशावा स्योपनिषत, अष्टाध्यायी सूत्रवृत्ति और पुष्करण ब्राह्मणोत्पत्ति का हिन्दी में अनुवाद किया।

हिन्दी और संस्कृत के अतिरिक्त राजस्थानी भाषा के लिए उन्होंने जो कार्य किया वह बड़े महत्व का है। राजस्थानी भाषा उस समय मारवाड़ में जो बोली जाती थी उसे मारवाड़ी भाषा कहा जाता था अतः पं. रामकर्ण आसोपा जो मारवाड़ के इतिहास और संस्कृति के प्रेमी थे उन्होंने इस प्रदेश की भाषा की उन्नति के लिए कार्य किया वह इस क्षेत्र की संस्कृति के संरक्षण व संवर्द्धन की दिशा में एक महत्वपूर्ण

कार्य था। मारवाड़ी भाषा की उन्नति के लिए उन्होंने सर्वप्रथम मारवाड़ी व्याकरण का निर्माण किया। इसके बाद पाठशालाओं में छात्रों को मारवाडी भाषा के शिक्षण हेतु पहली, दूसरी और तीसरी पोथी नामक पाठ्यपुस्तकें बनाई। मारवाड़ी में मारवाड़ का भूगोल लिखा। वे मातृभाषा के माध्यम से बच्चों की शिक्षा देने के पक्ष में थे। इसीलिए मारवाड़ी के विकास प्रचार प्रसार हेतु उन्होंने काफी प्रयास किया। हिन्दुओं के प्रसिद्ध ग्रंथ 'गीता' की मारवाड़ी भाषा में टीका की।

इतना ही नहीं इस भाषा का तब तक कोई कोश नहीं था इसलिए डिंगल शब्द कोश और वृहत डिंगल शब्द कोश का निर्माण किया। डिंग शब्द कोश में 20 हजार शब्दों का संग्रह है तथा वृहत डिंगल शब्द कोश में 60 हजार शब्दों की व्युत्पत्ति, अंग्रेजी तथा हिन्दी अर्थ सोदाहरण दिये गये।[1] दुर्भाग्यवश ये दोनों कृतियां प्रकाशित नहीं हो सकी हैं और अद्यावधि सार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर में प्रकाशनार्थ पड़ी हैं। यदि इन दोनों कृतियों का प्रकाशन यथा समय हो जाता तो राजस्थानी भाषा के प्रचार प्रसार व विकास में बहुत बड़ा सहयोग मिलता।

इस प्रकार आसोपा का व्यक्तित्व बड़ा बहु आयामी था तथा कृतित्व में विविधता। विविध प्रकार के कार्य संपादित करने की आसोपा जैसी क्षमता कम लोगों में देखने को मिलती है। साधारण आदमी से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह हर प्रकार का कार्य भलीभांति करलें क्योंकि यह तो कोई विलक्षण बुद्धि वाला प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति ही कर सकता है। आसोपा का प्रत्येक कार्य, रचना व कृति का यदि मूल्यांकन किया जाय तो वह कसौटी पर खरा उतरता है। बहुज्ञाता, कर्मठता, निष्ठा तथा मौलिकता के कारण आसोपा की हरकृति अपनी अमिट छाप छोड़ती है चाहे वह साहित्यिक हो अथवा ऐतिहासिक।

आसोपा का साहित्य के प्रति रूझान होते हुए भी ऐतिहासिकता का असर उनके मानस पर बराबर बना रहा। अपने जीवन का सर्वाधिक समय उन्हें इसके लिए देना पड़ा। उस समय का सदुपयोग करते हुए पं. रामकर्ण आसोपा ने मारवाड़ के इतिहास के अनेक ऐसे अछूते पक्षों पर प्रकाश डाला है जिस पर अद्यावधि विचार ही नहीं किया गया था और यदि किसी पर हुआ भी तो इतने मतभेद और विवादग्रस्त था कि उसे सन्तोषजनक हल नहीं कहा जा सकता था। पं. आसोपा ने इतिहास विषयक ऐसी कई विवादग्रस्त गुत्थियों व समस्याओं का समाधान अपनी कुशाग्रबुद्धि से ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर किया। अभिलेख अध्ययन में तो वे अपने समय में काफी प्रसिद्धि पा चुके थे।

1– परम्परा : भाग 49-50 : पृ. 22

संस्कृताचार्य, भाषाविद्, अनुवादक, संपादक, पत्रकार व्याकरणाचार्य, कोशकार, पुरातत्वज्ञ, संशोधक, इतिहासकार आदि अनेक रूपों में अपनी पहचान रखने वाला आसोपा का बहुआयामी व्यक्तित्व व कृतित्व मूल्यांकन के अभाव में अपनी वास्तविक पहचान खोता जा रहा है। आज के इतिहास के विद्यार्थियों को भी इतिहासविद् पं. रामकर्ण आसोपा का नाम क्षेत्रीय महत्वाकांक्षी लगता है। आवश्यकता है उनके अप्रकाशित ग्रंथों को प्रकाश में लाकर उनका मूल्यांकन करने की जिससे राजस्थान के इतिहासकारों में आसोपा को समुचित स्थान प्राप्त हो सके।

जगदीशसिंह गेहलोत

डॉ. गिरीशनाथ माथुर

व्याख्याता,

श्रमजीवी महाविद्यालय, उदयपुर

जगदीशसिंह गेहलोत का जन्म मारवाड़ की प्राचीन राजधानी मण्डोर में मध्यम–वर्गीय सैनिक क्षत्रिय परिवार में 14 जनवरी, 1903 ई. में हुआ था। उनके पिता किशोरसिंह कृषि व्यवसाय करते थे, किन्तु बच्चों की शिक्षा के लिए वे 1905 ई. में जोधपुर पहुंचे। वहां जगदीशसिंह ने सुमेर स्कूल तथा बाद में श्री दरबार हाईस्कूल में शिक्षा प्राप्त करने के साथ-साथ इतिहास ग्रन्थों का भी अध्ययन किया तथा अनेक शोध निबन्ध लिखे। उसी दौरान उनको मुंशी देवीप्रसाद का सान्निध्य भी प्राप्त हुआ जिसका जगदीशसिंह ने पूरा लाभ उठाया।

जगदीशसिंह ने अपने लेखन कार्य के आरम्भ में राजस्थानी व हिन्दी भाषा का पक्ष लिया व स्वयं ने उसको अपनाया। राजस्थानी भाषा को ज्यादा महत्व देने के लिए अनेक लेख लिखे तथा 5 फरवरी, 1925 ई. को "तरुण राजस्थान" में अपना वक्तव्य दिया। प्राथमिक शिक्षा का माध्यम राजस्थानी भाषा को बनाना चाहते थे।

जगदीशसिंह ने राजस्थानी कृषि कहावतें (1922 ई.), मारवाड़ के ग्राम गीत (1925 ई.), राजिया के सोरठे (1928 ई.), उमर काव्य (1930 ई.) और राजस्थानी ऐतिहासिक दोहे (अप्रकाशित) की रचना कर साहित्य को समृद्ध बनाया। डिंगल भाषा की उत्पत्ति के बारे में उनका मत अनेक भाषा विशेषज्ञों ने स्वीकार किया।

जगदीशसिंह के सतत् विद्वतापूर्ण लेखन के कारण ही 1926 ई. में जोधपुर राज्य के इतिहास कार्यालय के पुनर्गठन के समय उनका स्थानान्तरण वन निरीक्षक के पद से कोलेटर (प्रतिलिपियों का मिलान करने वाले) के पद पर कर दिया गया। उस नये पद पर उन्होंने लगन व मेहनत से कार्य किया। अपनी रुचि के अनुसार उन्होंने 1941 ई. में रामपुर (उत्तर प्रदेश) में पुरातात्विक स्थलों का सर्वेक्षण कर उनका प्रामाणिक इतिहास भी जगदीशसिंह ने अपने ग्रन्थों में जोड़ दिया।

जगदीशसिंह तब देश में चल रहे स्वतंत्रता आंदोलन से प्रेरित हो राष्ट्रवादी हो गये थे और इसी कारण उनका लेखन कार्य राष्ट्रभाषा हिन्दी व राजस्थानी में प्राप्त

होता है। एक स्वतंत्रता सैनानी की भूमिका का निर्वाह करते हुए उन्होंने आर्य समाज के मंत्री पद पर रहते हुए समाज सेवा के माध्यम से जनचेतना जागृत करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। अपने प्रगतिशील विचारों को जगदीशसिंह ने तब प्रकाशित होने वाली सामाजिक पत्रिकाओं– मारवाड़ी मित्र, सैनी समाचार तथा सैनी शुभचिन्तक का सम्पादन व प्रकाशन कर जनता के समक्ष रखे।

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् सारे राजस्थान के राज्यों का भारतीय गणराज्य के अन्तर्गत एकीकरण कर दिया गया। नव गठित संयुक्त राजस्थान राज्य में जब पूर्ववर्ती राज्यों के विभिन्न राजकीय पुरातत्व और संग्रहालयों का एकीकरण किया गया तब जगदीशसिंह को एकीकृत राजस्थान राज्य के पुरातत्व व संग्रहालय के जोधपुर-बीकानेर खण्ड का अधीक्षक नियुक्त किया गया। राजकीय सेवा से मुक्त होने तक जगदीशसिंह उसी पद पर बने रहे।

सेवा निवृत्त होने के पश्चात् भी उनका लेखन कार्य जारी रहा। 1953 ई. के बाद उनका स्वास्थ्य बिगड़ता चला गया और अंत में 22 सितम्बर, 1958 ई. को उनका निधन हो गया।

जगदीशसिंह गेहलोत की इतिहास विषयक प्रमुख कृतियां इस प्रकार हैं —

मारवाड़ राज्य का इतिहास

जगदीशसिंह गेहलोत ने अपनी युवा अवस्था में वन निरीक्षक के पद पर रहते हुए तत्कालीन सुविख्यात हिन्दी लेखक श्याम बिहारी मिश्र के प्रोत्साहन पर हिन्दी भाषा में मारवाड़ का संक्षिप्त वृत्तांत लिखकर प्रकाशित किया। 1925 ई. में उसी पुस्तक को परिवर्द्धित और परिशोधित कर "सचित्र मारवाड़ राज्य का इतिहास" प्रकाशित किया। उसका दूसरा संस्करण शीघ्र ही दिसम्बर 1925 ई. में के अन्त में निकालना पड़ा। पुस्तक में मारवाड़ के ऐतिहासिक वृत्तांत के अतिरिक्त वहां का भौगोलिक वर्णन और कई अन्य ऐसे विषयों का उल्लेख किया गया है, जो वहां के अंग्रेजी गजेटियरों में भी नहीं मिलते।[1] शासकों के साथ ही प्रजा वर्ग की वास्तविक स्थिति देने से पुस्तक आधुनिक इतिहास लेखन की तकनीक के दायरे में आ गई है। ग्रंथ में दिये गये सम्बन्धित डेढ़ सौ चित्रों ने उसको प्रामाणिक और आकर्षक बना दिया है। पुस्तक में मारवाड़ के राजघराने के साथ ही राजस्थान तथा अन्य प्रदेशों के सभी राठौड़ राज्यों के भी संक्षिप्त इतिहास लेखक ने दे दिये हैं किन्तु वे राठौड़ व गहड़वालों में अन्तर करना भूल गए और उन्होंने नवीनतम शोध के आधार पर बीकानेर दुर्ग के द्वार के शिलालेख गुरूवार माघ सुदि 6, 1650 वि.सं. (17 जनवरी, 1594 ई.)

1– रघुवीरसिंह : राजस्थान के इतिहासकार और उनका कृतित्व, पृ. 43.

में दी गई कन्नौज के विजयचन्द्र के पूर्व की पीढ़ियों को ग्रमान्य किये जाने पर भी गौरीशंकर हीराचंद ग्रोभा की तत्कालीन मान्यतानुसार गहड़वालों को राठौड़ों की शाखा ही स्वीकार किया।

ग्रन्थ के प्रकाशन के बाद ही जगदीशसिंह एक संशोधक इतिहासकार के रूप में मान्य होने लगे।

राजपूताने का इतिहास

"मारवाड़ राज्य का इतिहास" के प्रकाशन से जगदीशसिंह गेहलोत को मिली प्रशंसनीय सफलता से ही उत्साहित हो उन्होंने सारे राजपूताने का इतिहास लिखने का निर्णय लिया। मेहनत व लगन से "राजपूताने का इतिहास" का पहला भाग 1937 ई. में प्रकाशित किया। ग्रन्थ के ग्रारम्भ में राजपूताना प्रांत का सामूहिक विवरण छः प्रकरणों में दिया है, जिससे एक दृष्टि में ही सारे राजपूताना का ज्ञान हो जाता है। प्रथम प्रकरण में राजपूताना की स्थिति ग्रौर विस्तार (नाम, स्थान, क्षेत्रफल ग्रौर सीमा), दूसरे में राजपूताने के राजवंश, तीसरे में राजपूताने से मुसलमानों का सम्बन्ध, चौथे में राजपूताना ग्रौर मरहठे एवं पांचवें में राजपूताने में ग्रंग्रेज शीर्षक से संक्षिप्त ब्यौरेवार वर्णन दिया है। ग्रगले पांच प्रकरणों में मेवाड़–उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ ग्रौर शाहपुरा के गुहिल–सीसोदिया राज्यों का विवरण दिया गया है। ग्रन्तिम दो प्रकरणों में करौली ग्रौर जैसलमेर के यादव भाटी राज्यों का क्रमबद्ध ब्यौरेवार इविव्रत्त प्रथम बार प्रस्तुत किया गया है।

"मारवाड़ राज्य का इतिहास" की ही तरह इस ग्रन्थ में भी जगदीशसिंह ने यथा-साध्य प्रयास किया कि तब तक की सारी शोधों के परिणामों को उसमें यथास्थान समाविष्ट कर लिया जावे। साथ ही उन्होंने इस बात का पूरा ध्यान रखा कि प्रत्येक देशी राज्य से सम्बन्ध रखने वाले ऐतिहासिक, जातीय तथा भौगोलिक तथ्यों के साथ ही राजपूताने के भिन्न–भिन्न राजघरानों के वंश पर परम्परागत रीति–रिवाजों तथा प्रथाग्रों का वर्णन भी उसमें समाविष्ट हो जावे। लेखक ने राजपूताने के ग्रनेक राज-वंशों तथा उनसे निकले हुए वंशों की उत्पत्ति तथा पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में बहुत सी ज्ञातव्य बातों का भी इसमें संग्रह किया एवं राजपूताना के निवासियों की ग्रार्थिक, सामाजिक तथा शिक्षा सम्बन्धी ग्रवस्था पर भी प्रकाश डाला है। राजपूताने के भिन्न–भिन्न राज्यों तथा भारत सरकार के बीच समय–समय पर जो संधि पत्र तथा ग्रहदनामें लिखे गए उनका भी उल्लेख हिन्दी में इस ग्रंथ में किया गया है। ये संधि पत्र राजपूताने (राजस्थान) के राजनैतिक इतिहास की दृष्टि से ग्राधार सामग्री ही हैं। ग्रनेक राजाग्रों, प्रसिद्ध पुरूषों, निवासियों; प्राकृतिक दृश्यों, ऐतिहासिक दुर्गों तथा स्मारकों के भी बहुसंख्यक चित्रों ने पुस्तक को महत्वपूर्ण बना दिया है।

जगदीशसिंह की प्रारंभिक योजना राजस्थान के बाकी बचे सब राज्यों के साथ ही तब अंग्रेजों द्वारा शासित अजमेर-मेरवाड़ा क्षेत्र का इतिहास, राजपूताने का इतिहास भाग दो में प्रकाशित करने की थी और उसका लेखन वो कर रहे थे। तभी द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया व भारत में स्वाधीनता का संघर्ष भी तेज हुआ। परिणाम-स्वरूप भारत को आजादी मिली व साथ ही विभाजन भी हुआ। इसके बाद के कुछ ही वर्षों में राजस्थान के सारे राज्यों का विलय कर भारतीय गणराज्य के अन्तर्गत राज्य के रूप में उनका राजनैतिक ही नहीं, शासकीय और वैधानिक एकीकरण भी किया गया। तब जगदीशसिंह ने संयुक्त राजस्थान की स्थापना तक के इतिहास (सन् 1948-49 ई.) को भी अपने द्वितीय भाग में ही जोड़ दिया। किन्तु आर्थिक कठिनाइयों के कारण ही उसके छपाने के प्रयास 1953 ई. में प्रारम्भ हो सके तथा मार्च, 1953 ई. में उसकी भूमिका हरविलास शारदा से लिखवाई गई। किन्तु लेखक की प्रकाशन की इच्छा पूरी न हो सकी और उनका देहान्त हो गया।

अप्रकाशित द्वितीय भाग को जगदीशसिंह के ज्येष्ठ पुत्र सुखवीरसिंह गेहलोत ने अपनी सुविधानुसार चार भागों में प्रकाशित करने की योजना बनाई और तदनुसार द्वितीय भाग (चौहान राज्यों का इतिहास) सन् 1960 ई. और तृतीय भाग (कछवाहा राज्यों का इतिहास) सन् 1966 ई. में प्रकाशित किया। चतुर्थ (राठौड़ राज्यों का इतिहास) और पंचम (अजमेर क्षेत्र और बाकी रहे राज्यों के इतिहास) अभी भी प्रकाशनाधीन हैं किन्तु प्रकाशित भाग प्रथम भाग की ही तरह इतिहास के सभी पहलुओं को समाहित किए हुए हैं तथा उतने ही महत्वपूर्ण हैं।

जगदीशसिंह गेहलोत की अन्य ऐतिहासिक लेखन सामग्री हमें उनके जीवनकाल में लिखे गये ऐतिहासिक लेखों में देखने को मिलती है। जो बाद में पुस्तकाकार के रूप में प्रकाशित हुए।

ऐतिहासिक लेखमाला (1967 ई.) में विजयसिंह गेहलोत ने सम्पादित कर हिन्दी साहित्य मन्दिर से प्रकाशित करवाई। इसमें स्व. जगदीशसिंह गेहलोत इक्कीस ऐतिहासिक लेख, नौ चित्रों व दो नक्शों सहित प्रकाशित किये गये हैं। आरम्भिक दो निबन्धों में सिंह तथा राजपूत शब्दों की व्याख्या के पश्चात तीसरे निबन्ध में राजपूतों की उत्पत्ति का विवेचन किया गया है। निबन्ध संख्या चार से लेकर तेरह तक गेहलोत, प्रतिहार सौलंकी, यादव, परमार, राठौड़ आदि राजवंशों का संक्षिप्त परिचय दिया गया। चौदहवें निबन्ध में उन मुख्य इतिहासकारों की उपलब्धियों का विवरण है, जिन्होंने राजस्थान के सम्बन्ध में लिखा। निबन्ध पन्द्रह में बांकीदास की ऐतिहासिक बातों की चर्चा तथा सौलह में महाकवि चंदवरदाई सम्बन्धी विवेचन है। सत्रह से उन्नीस तक के फुटकर निबन्धों में क्रमशः जयचन्द्र, प्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम तथा एक देवी प्रतिमा के विषय में जानकारी दी गई है। बीसवां निबन्ध इतिहास के महत्व का परिचायक है। अन्तिम इक्कीसवें निबन्ध में क्षात्र शक्ति के पतन के कारणों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है।

राजस्थान का सामाजिक जीवन (जनवरी, 1974 ई.) पर पुस्तक हिन्दी साहित्य मन्दिर से ही प्रकाशित हुई। इसका सम्पादन जगदीशसिंह गेहलोत के पौत्र ने किया है। ये लेख पूर्व में 1929 ई. की फरवरी व जुलाई के बीच दिल्ली के "महारथी" मासिक में छप चुके थे। एसा प्रतीत होता है कि इन लेखों का सार लेखक ने अपनी पुस्तक "मारवाड़ का इतिहास" व "राजपूताना के इतिहास" में लिया है। कर्नल टॉड की ही तरह लेख द्वारा राजस्थान के सामाजिक जीवन की तो तत्कालीन चित्रमय ऐतिहासिक झांकी (लेखक कालीन) पुस्तक में है, वो अब शोध छात्रों के लिए आधार सामग्री हो गई है।

मारवाड़ राज्य का भूगोल, वीर दुर्गादास राठौड़, भारतीय नरेश, मीरांबाई का जीवन और काव्य, नेपाल का इतिहास, महाराणा प्रताप, क्षत्रियों के राजवंश, मारवाड़ के ग्राम गीत, राजस्थान की कृषि कहावतें एवं ऐतिहासिक तिथि पत्रक (वि. सं. 1501 से वि. सं. 2000 तक) हैं। जो इनमें से भी अधिकांशतः इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ प्रेरणादायक बन पड़ी है एवं लेखन द्वारा जन जागृति करने के उद्देश्य की पूर्ति करती है।

यों स्व. जगदीशसिंह गेहलोत ने सरल व सुबोध हिन्दी भाषा में संक्षिप्त एवं कम कीमत में स्वतंत्रता आन्दोलन एवं राजस्थान के राज्यों का भारतीय गणराज्य में विलय तक सम्पूर्ण इतिहास लिखकर जन-साधारण को उपलब्ध करवाया। लेखक के जीवन-काल में प्रकाशित कृतियों का बहुत सम्मान हुआ व महाराणा, उदयपुर 2000/- रू., डूंगरपुर नरेश 500/- एवं प्रतापगढ़ नरेश द्वारा 500/- रू. की नगद राशि प्रदान कर सम्मानित किया गया।

लेखक की कृतियों की एक विशेषता यह भी रही कि तब तक जैसलमेर, बूंदी और करौली जैसे महत्वपूर्ण प्राचीन राज्यों के क्रमबद्ध प्रामाणिक इतिहास भी नहीं लिखा गया था। वो बाद के उन क्षेत्रों पर कार्य करने वाले इतिहासकारों के लिए प्रेरणात्मक व आधार ग्रंथ सिद्ध हो रहे हैं।

यह कहना उचित होगा कि जगदीशसिह गेहलोत ने सम्भवतः साधनों व समय के अभाव में शोध कार्य नहीं किया किन्तु उनकी अन्वेषणात्मक प्रवृत्ति अवश्य ही उनकी कृतियों में स्पष्ट दिखाई देती है। उन्होंने अपने ग्रन्थों में पूर्व प्रकाशित ग्रन्थों तथा अन्य सहज सुलभ आधार सामग्री एवं शोध कार्यों का सुचारू-रूपेण निष्पक्ष उपयोग किया तथा उनके आधार पर कई स्थानों पर अपनी मान्यताएं भी प्रस्तुत की। स्व. जगदीशसिंह गेहलोत की कृतियों का मूल्यांकन करते समय यह अवश्य ध्यान में रखना होगा कि उनके आरम्भिक इतिहास प्रेम ने ही उन्हें राष्ट्रवादी बनाकर स्वतंत्रता के लिए कार्य करने को प्रेरित किया था और बाद में उसी राष्ट्रप्रेम से प्रेरित होकर उन्होंने इतिहास लेखन किया। उस दृष्टि से वे सफल इतिहासकार रहे।

डॉ. दशरथ शर्मा

डॉ. गिरिजाशंकर शर्मा
उपनिदेशक,
अभिलेखागार, बीकानेर

व्यक्तित्व

डॉ. दशरथ शर्मा का जन्म चूरू (राजस्थान) के एक पण्डित परिवार में विद्या-वाचस्पति पं देवीप्रसाद शास्त्री के घर सन् 1903 ई. में हुआ था।[1] हाईस्कूल और इन्टरमिडियेट की परीक्षाएं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के पश्चात् उन्होंने बी.ए. (आनर्स) की परीक्षा इतिहास और संस्कृत विषय लेकर दिल्ली तथा पंजाब विश्वविद्यालयों से सर्व प्रथम स्थान प्राप्त करके उत्तीर्ण की। तदुपरान्त दिल्ली और आगरा विश्वविद्यालय से क्रमशः इतिहास तथा संस्कृत में एम.ए. की परीक्षाएँ सर्वोच्च स्थान प्राप्त करके उत्तीर्ण की। प्रखर प्रतिभा से प्रभावित होकर दिल्ली विश्वविद्यालय ने स्वर्ण पदक के साथ-साथ विश्वविद्यालय छात्रवृत्ति प्रदान कर तथा हिन्दू कॉलेज ने "फेलो" बनाकर उन्हें सम्मानित किया।

1925 ई. में डूंगर कॉलेज, बीकानेर में इतिहास के प्राध्यापक नियुक्त हुए। 1934 ई. में बीकानेर के तत्कालीन महाराजा श्री गंगासिंह के पौत्र डॉ. करणीसिंह के ट्यूटर और फिर सेक्रेट्री नियुक्त हुए। "अर्ली चौहान डायनेस्टीज" नामक सुप्रसिद्ध शोध अधि-निबन्ध पर 1943 ई. में आगरा विश्वविद्यालय की ओर से इन्हें डी. लिट्. की उपाधि प्रदान की गई। इस ग्रन्थ के द्वारा डॉ. शर्मा ने विदेशी विद्वानों द्वारा प्रचारित अनेक भ्रान्त धारणाओं का निराकरण करके पुष्ट प्रमाणों के आधार पर नवीन मान्यताएँ स्थापित कीं। भारत प्रसिद्ध बीकानेर के श्री अनूप संस्कृत पुस्तकालय को व्यस्थित करने में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। बीकानेर रियासत के प्रधान मंत्री के.एम. पनीक्कर तथा अन्य विद्वानों के सहयोग से राजस्थानी भाषा, साहित्य, संस्कृति एवं इतिहास के क्षेत्र में शोध कार्य को बढ़ावा देने के लिये 1945 ई.

1– डॉ. रघुवीरसिंह के अनुसार डॉ. शर्मा का जन्म सोमवार फाल्गुन सुदि 11, 1959 वि. सं. (9 मार्च, 1903) को हुआ। राजस्थान के प्रमुख इतिहासकार और उनका कृतित्व पृ. 49. —सम्पादक.

में "सादुल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट" की स्थापना में भी उनका पूर्ण सहयोग रहा तथा अनेक वर्षों तक इस संस्था द्वारा प्रकाशित की जाने वाली शोध पत्रिका "राजस्थान भारती" के सम्पादक मण्डल के सदस्य एवं संस्था के निदेशक रहे। 1948 ई. में नेशनल आर्काइव्ज, दिल्ली में सीनियर टेकनिकल ऐसिस्टेंट नियुक्त हुए और वहाँ कुछ समय तक कार्य किया। 1949 ई. से 1957 ई. तक हिन्दू कॉलेज दिल्ली में उन्होंने इतिहास के प्रोफेसर तथा बाद में अध्यक्ष इतिहास एवं राजनीति के पद पर काम किया। इसी बीच आप दिल्ली विश्वविद्यालय में भारतीय प्राच्य इतिहास, संस्कृति पालि आदि के प्राध्यापक के रूप में अध्यापन-कार्य करते रहे। 1957 ई. में दिल्ली विश्वविद्यालय, इतिहास विभाग में रीडर के पद पर नियुक्त हुए।

दिसम्बर सन् 1959 में राजस्थान राज्य सरकार ने राजस्थान के राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक आदि सभी पक्षों पर विस्तृत और गंभीर अध्ययन के आधार पर सारपूर्ण किन्तु संक्षिप्त प्रामाणिक इतिहास लिखने की योजना बनाई गई उसमें वे प्रधान संपादक निर्वाचित हुए और इनके अथक परिश्रम के परिणामस्वरूप 1962 ई. में राज्य सरकार की उक्त योजना को "राजस्थान थ्रू दी एजेज" नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ के रूप में क्रियान्वित किया। भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ने इस ग्रन्थ की उपादेयता पर प्रकाश डालते हुए लिखा—"सौभाग्यवश ग्रन्थ में वर्णित इतिहास घटनाओं का केवल क्रमबद्ध विवरण मात्र ही नहीं है, किन्तु इसके पर्यावलोकन में जन साधारण के जीवन तथा उनकी सामाजिक, आर्थिक अवस्थाओं के परिवर्तनशील सम्पूर्ण दृश्यों के चित्र सफलतापूर्वक चित्रित किये गये हैं।" सन् 1966 में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने डॉ. शर्मा को श्री आर. पी. नोपाणी भाषणमाला के अन्तर्गत राजपूत इतिहास एवं संस्कृति पर भाषण देने के लिये आमंत्रित किया। सन् 1969 में उन्होंने प्रोफेसर डी. सी. सरकार के सभापतित्व में सात भाषण राजपूत संस्कृति पर दिये जो आगे चलकर पुस्तक रूप में "लेक्चरस् ऑन राजपूत हिस्ट्री एण्ड कल्चर" के नाम से दिल्ली से प्रकाशित हुए।

सन् 1966 ई. में दिल्ली विश्वविद्यालय से सेवा-मुक्त होने के पश्चात उन्होंने जोधपुर विश्वविद्यालय में अध्यक्ष, इतिहास विभाग का पद ग्रहण किया। इस पद के अतिरिक्त वहीं अधिष्ठाता, कला संकाय के रूप में आपने विश्वविद्यालय के प्रांगण तथा उसके बाहर इतिहास अध्ययन और शोध के लिए निरन्तर प्रयास करते हुए अनेक अध्ययन गोष्ठियों तथा भाषणमालाओं का गठन व आयोजन किया। जोधपुर विश्वविद्यालय में ही राजस्थान का इतिहास प्रायोजना के निदेशक के पद पर रहते हुए उन्होंने राजस्थान इतिहास संबंधी अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोतों का संकलन कर उन पर ऐतिहासिक टिप्पणियां लिखी और नैणसीकृत मारवाड़ परगना री विगत[1] का

1– सम्पादक डॉ. नारायणसिंह भाटी, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान द्वारा तीन भागों में प्रकाशित।

हिन्दी व अंग्रेजी में अनुवाद भी करने का कार्य हाथ में लिया। उन्होंने यहीं रहते हुए राजस्थान के अन्य इतिहासकारों के सहयोग से "राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस" की स्थापना की, जिसका प्रथम अधिवेशन जोधपुर में ही दिसम्बर, सन् 1967 ई. में हुआ।

इसी बीच डॉ. शर्मा को "इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस" (एनसियन्ट सेक्सन) का अध्यक्ष मनोनीत कर सम्मानित किया गया। 1969 ई. में शर्मा ने राजस्थान इतिहास कांग्रेस के उदयपुर अधिवेशन का सभापतित्व किया। डॉ. शर्मा ने अपने अध्यक्षीय भाषण में इतिहास की कई भ्रान्तियों का निराकरण करते हुए इस तथ्य पर विशेष जोर दिया कि इतिहास पूर्व पोषित विचारों अथवा मान्यताओं के आधार पर न लिखा जाकर वास्तविकता के सही चित्रण के उद्देश्य से लिखा जाना चाहिए।

अपने जीवन-काल के अंतिम वर्षों में वे राजस्थान राज्य प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के निदेशक पद पर नियुक्त हुए। एक वर्ष के अल्पकाल में उन्होंने न केवल महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों एवं दस्तावेजों की सूचियां तैयार करवाई बल्कि "संगीत रघुनन्दनम्" नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ का पांडित्यपूर्ण संपादन भी किया।

डॉ. दशरथ शर्मा ने अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की। उनमें अर्ली चौहान डायनेस्टीज, राजस्थान थ्रू दी एजेज, सम्राट पृथ्वीराज चौहान तृतीय और उनका युग, लेक्चर्स ऑन राजपूत हिस्ट्री एण्ड कल्चर आदि उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त आपने अनेक ग्रन्थों का सम्पादन भी किया—दयालदास की ख्यात, भा. 2, क्यामखां रासो (सह सम्पादन) (1953) ओझा निबंध संग्रह (एक भाग), पंवार वंश दर्पण, दन्द्रप्रस्थ प्रबंध, (1963) अमराभिषेक काव्य, अनन्त कवि रचित मुद्राराक्षस पूर्व संकथानक और संगीत रघुनन्दनम् (1974)।

डॉ. दशरथ शर्मा ने "दलपत विलास", "जैसलमेर ऐतिहासिक साधन संग्रह" एवं रास और रासान्वयी काव्य "नामक ग्रन्थों की भूमिकाएं भी लिखीं। विश्वम्भरा (बीकार), मरुभारती (पीलानी), "वरदा" (बिसाऊ), परम्परा (जोधपुर) "राजस्थान भारती" (बीकानेर) जैसी साहित्यिक व शोध परक पत्रिकाओं के सलाहकार मण्डलों के सदस्य रहे। इनके अतिरिक्त नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के मान्य सदस्य व न्यूमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया, भण्डारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, गंगानाथ झा रिसर्च इंस्टीट्यूट, इतिहास पुस्तक निर्वाचन समिति–भारत सरकार विशेषज्ञ समिति हिन्दी पारिभाषिक शब्द, भारत सरकार के सदस्य भी रहे।

उनके द्वारा हिन्दी–अंग्रेजी लिखित 500 से अधिक अनुसंधानात्मक लेख जो देश विदेश की शोध पत्रिकाओं में छपे हैं जिनकी विस्तृत सूची "विश्वभरा" के डॉ. दशरथ शर्मा स्मृति विशेषांक में प्रकाशित है। ये एवं कई महत्वपूर्ण इतिहास ग्रन्थों की उनकी

समीक्षाएं वर्षों तक शोध छात्रों का मार्ग दर्शन करती रहेंगी। डॉ. शर्मा ने अनेक छात्रों को प्रशिक्षण दिया तथा शोध के क्षेत्र में मार्ग प्रदर्शन किया। सत्य की खोज के मार्ग पर चलते हुए दिनांक 3 जुलाई, 1976 की रात्रि को वे इस नश्वर संसार को छोड़ कर चले गये। यहाँ हम डॉ. शर्मा की तीन मुख्य कृतियों पर प्रकाश डालना उचित समझते हैं।

अर्ली चौहान डायनेस्टीज

विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध सामग्री का सावधानी पूर्वक निष्पक्षता से उपयोग करते हुए डॉ. दशरथ शर्मा ने राजस्थान के इतिहास के संदर्भ में "अर्ली चौहान डायनेस्टीज" नामक ग्रन्थ की रचना की। प्रस्तुत ग्रन्थ में डॉ. शर्मा ने स्पष्ट किया है "कि हमारे देश के इतिहास में अरबों का आक्रमण एक साधारण घटना नहीं थी। इन आक्रमणों ने पश्चिमी और दक्षिणी भारत के मानचित्र में स्थायी परिवर्तन ला दिया। भारत को अपनी स्वतन्त्रता और संस्कृति की रक्षा करने के लिए देशभक्तों की आवश्यकता थी और ये देशभक्त उसे राजपूतों के रूप में प्राप्त हुए। प्रतिहार वंश ने शक्तिशाली म्लेच्छ आक्रमणकारियों को पराजित किया एवं उत्तरी भारत में अपनी प्रभुसत्ता स्थापित की। प्रतिहारों की प्रभुसत्ता उस समय तक बनी रही जब तक प्रथम रक्षापंक्ति के रूप में उसने सफलतापूर्वक कार्य किया। उत्तरी भारत में प्रतिहार सत्ता के विस्तार में सर्वाधिक योग चहमानों ने प्रदान किया। वत्तराज प्रतिहार के सामन्त शासक दुर्लभराज चौहान ने बंगाल तक धावे मारे। महिपाल की मृत्यु के साथ ही प्रतिहार साम्राज्य का पराभव प्रारंभ हो गया और प्रतिहारों के सामन्त निजी स्वार्थों एवं आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु परस्पर संघर्ष करने लगे। डॉ. शर्मा ने इस संघर्ष के विवरण को इस ग्रंथ में चौहान-तोमर संघर्ष के संदर्भ में प्रस्तुत किया है। विग्रहराज चतुर्थ ने तोमरों की राजधानी दिल्ली पर अधिकार कर लिया। प्रतिशोध की भावना ने तोमरों को राष्ट्र विरोधी नीति का अनुसरण करने के लिए बाध्य किया।

डॉ. शर्मा ने समकालीन ऐतिहासिक स्रोतों के आधार पर स्पष्ट किया है कि सन् 973 ई. सन् तक चौहान व्यावहारिक रीति से स्वतन्त्र हो चुके थे परन्तु स्वतन्त्रता के साथ ही नवीन समस्याएं भी उपस्थित हुई। चौहनों को अब अपने पड़ौसी राज्यों के अतिरिक्त बाहरी आक्रमणों के विरुद्ध भी अपनी सुरक्षा के उपाय करने पड़े।

डॉ. शर्मा ने चालुक्य साम्राज्य और शाकम्भरी के चौहानों के मध्य सम्बन्धों पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। इन दोनों शक्तियों के मध्य सर्वोच्चता के लिए जो संघर्ष हुआ उसके विवरण से अन्य भारतीय राज्यों की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता का सही चित्र हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है। डॉ. शर्मा की मान्यता है कि यही अनावश्यक एवं अरुचिकर प्रतिद्वन्द्विता मुहम्मद गौरी के हाथों हिन्दुओं की पराजय का मुख्य कारण

हुई थी। पृथ्वीराज चौहान के अपने दो शक्तिशाली पड़ोसियों, कन्नौज के गहड़वालों और खजुराहो के चंदलों के साथ शत्रुतापूर्ण संबंध निस्सन्देह अन्य कारण थे। मालवा के परमारों के साथ चौहानों के सम्बन्ध डॉ. शर्मा के अनुसार निरन्तर परिर्तवनशील रहे। विदेशी आक्रमण का खतरा बढ़ता जा रहा था परन्तु दुर्भाग्यवश हिन्दू शासक इसका प्रतिरोध करने के लिए एकजुट नहीं हो सके।

डॉ. शर्मा के अनुसार यह खतरा सन् 1977 ई. सन् से ही पर्याप्त मात्रा में विद्यमान था और जब मुहमूद गौरी ने पंजाब पर अधिकार कर लिया, उस समय यह और भी अधिक बढ़ गया। दुर्लभराज चौहान गजनबियों के विरुद्ध लड़ता हुआ मारा गया। पृथ्वीराज प्रथम को भी इनसे युद्ध करना पड़ा। गजनबी के सेना नायक मुहम्मद बहलिम ने अजयराज चौहान के राज्य पर आक्रमण किया और अगले शासन काल में मुस्लिम अजमेर की सीमा तक भी पहुंचने में भी सफल हुए परन्तु वे पीछे धकेल दिए गए। परन्तु गुजरात के कुमार पाल और शाकंभरी के अर्णोराज ने अपने समसामयिक गजनबी शासकों की दुर्बलता का लाभ नहीं उठाया और परस्पर संघर्ष रत रहे। यह दुर्भाग्यपूर्ण संघर्ष विग्रहराज चतुर्थ के शासनकाल में भी समाप्त नहीं हुआ। विग्रहराज दिल्ली पर आधिपत्य स्थापित करने में सफल हुआ। दिल्ली विजय के परिणाम स्वरूप, जैसा कि डॉ. शर्मा ने लिखा है, वह भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में प्रमुख व्यक्ति बन गया। वह अपनी इस महत्वपूर्ण स्थिति से भलीभांति अभिज्ञ था। परन्तु गुजरात के चालुक्यों के भयंकर प्रतिरोध के कारण वह दायित्व को पूर्णतया निभा नहीं सका और उसके उत्तराधिकारी को तो हम सुरक्षात्मक स्थिति में पाते हैं।

1175 ई. में मुहम्मद गौरी ने भारतीय क्षेत्रों पर हमले करने प्रारम्भ कर दिये। जब उसने 1178 ई. में गुजरात राज्य पर आक्रमण किया, उस समय यदि पृथ्वीराज चौहान अपने मंत्री कदम्बवास की सलाह न मानकर चालुक्यों की सहायता करता तो मुहम्मद गोरी का विनाश हो जाता। इसके बाद भी हम उसे भीमदेव द्वितीय, खजुराहो के परमर्दीन, आबू के परमारों तथा कन्नोज के शासक से संघर्ष करते हुए पाते हैं। यह संघर्ष चलता रहा और गोरी सावधानीपूर्वक मंथर गति से अपने साधनों तथा राज्य की सीमाओं का विस्तार करता रहा।

1192 ई. में तरायान के दूसरे युद्ध ने, जो डॉ. शर्मा के अनुसार अनावश्यक था चौहानों की स्वतन्त्रता का अपहरण कर लिया और भारत-द्वार के ये रक्षक आवश्यकता के समय देश की रक्षा नहीं कर सके। स्पष्ट ही इनमें साहस और सैनिक नेतृत्व की कमी नहीं थी परन्तु राजनीतिक दूरदर्शिता का अभाव अवश्य था।

डॉ. शर्मा ने निर्णायक रूप से यह मत प्रतिपादित किया है कि पृथ्वीराज चौहान की पराजय के उपरान्त भी भारत आसानी से मुसलमानों द्वारा विजित नहीं किया जा सका था और चौहान सम्राट के वंशज दो सौ वर्षों तक दृढ़तापूर्वक संघर्ष करते रहे थे।

कानड़हदेव और सातलदेव ने अल्लाउद्दीन खिलजी को दिखा दिया कि यदि हिन्दू शासकों की उनकी प्रजा का समर्थन प्राप्त हो तो वे किस प्रकार दिल्ली सल्तनत की प्रबलशक्ति और साधनों का वर्षों तक प्रतिरोध कर सकते हैं। जनसाधारण का यह प्रभावशाली सहयोग ही हिन्दू राजवंश को राजस्थान, मध्य भारत और बुन्देलखण्ड में अपना अस्तित्व बनाए रखने में सहायक सिद्ध हुआ।

इस ग्रंथ में डॉ. शर्मा ने विदेशी विद्वानों द्वारा प्रचारित भ्रांत धारणाओं का निराकरण करके पुष्ट प्रमाणों के आधार पर नवीन मान्यताएं स्थापित की हैं। डॉ. स्मिथ की मान्यता है कि अग्निकुल मिथक का तात्पर्य विदेशियों को शुद्ध करके हिन्दू जाति व्यवस्था में सम्मिलित होने योग्य बनाना है। परन्तु डॉ. शर्मा ने निर्विवाद रूप से यह प्रदर्शित किया है कि अग्निकुल मिथक रामायणकाल से प्रचलित है और वास्तव में यह हिन्दुओं में पारस्परिक है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रथम भाग में चौहानों के अभ्युदय से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक उनका राजनीतिक इतिहास प्रस्तुत करने के उपरान्त द्वितीय भाग में डॉ. शर्मा ने ग्याहरवीं-बाहरवीं और तेहरवीं सदियों के मध्य चौहान राज्य की सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों का सप्रमाण वृतांत प्रस्तुत किया है। इस शोध ग्रन्थ का संशोधित संस्करण सन् 1975 में प्रकाशित हो चुका है।[1]

लेक्चर्स आन राजपूत हिस्ट्री एण्ड कल्चर

सन् 1966 ई. सन् में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने डॉ. दशरथ शर्मा को श्री आर. पी. नोपाणी भाषणमाला के अन्तर्गत राजपूत इतिहास और संस्कृति पर भाषण देने के लिए आमंत्रित किया। 1969 ई. में डॉ. शर्मा ने डॉ. डी. सी. सरकार के सभापतित्व में सात भाषण राजपूत संस्कृति पर दिये जों पुस्तक रूप में "लेक्चर्स आन राजपूत हिस्ट्री एण्ड कल्चर" शीर्षक से प्रकाशित हुए। प्रसिद्ध इतिहासकार रघुवीरसिंह सीतामऊ के अनुसार यह ग्रन्थ एक प्रकार से "राजस्थान थ्रू दी एजेज" का परिशिष्ट होने के साथ ही ईसा की पंद्रहवीं शती कालीन मेवाड़-मारवाड़ के इतिवृत्तों सम्बन्धी महत्वपूर्ण विशेष निष्कर्ष भी प्रस्तुत करता है।

1– रघुवीरसिंह के अनुसार इस शोध-ग्रन्थ का सबसे महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय भाग इसका उत्तरार्द्ध है, जिसमें डॉ. शर्मा ने तत्कालीन उन चौहान राज्यों की शासन व्यवस्था और जीवन प्रणाली का सविस्तार विवरण देते हुए वहां के राजतंत्र सैनिक संगठन धर्म सम्बन्धी प्रवृत्तियों सामाजिक परिस्थितियों साहित्य साधना शिक्षा व्यवस्था और आर्थिक स्थिति का ब्यौरेवार सप्रमाण वृतांत प्रस्तुत किया है। जो अन्य कोई भी इतिहासकार तब तक नहीं लिख पाया था। (राजस्थान के इतिहासकार और उनका कृतित्व पृ.51)

प्रथम चार व्याख्यान राजपूतों के उद्भव और 750 ई. से 1468 ई. तक के राजस्थान के इतिहास से सम्बन्धित हैं। यह काल महाराणा कुंभा के देदीप्यमान शासनकाल के साथ समाप्त होता है। कुंभा का शासनकाल न केवल उल्लेखनीय राजनीतिक उपलब्धियों से ही परिपूर्ण था अपितु साहित्य के क्षेत्र में भी उसकी उपलब्धियां महान और गौरवपूर्ण थी। डॉ. शर्मा के अनुसार कुंभा संगीत शास्त्र, वास्तुकला और अन्य सम्बद्ध विषयों का विशेषज्ञ था। मालवा के भोज परमार के अतिरिक्त कोई भी भारतीय शासक कुंभा के समकक्ष प्रतिभा सम्पन्न और रचनात्मक प्रतिभा का धनी नहीं था। निर्माता के रूप में भी वह किसी अन्य शासक से कम नहीं था।

इसी काल में इतिहास प्रसिद्ध पद्मिनी हुई थी। डॉ. शर्मा ने नवीन तथ्यों एवं तर्कों के आधार पर पद्मिनी की ऐतिहासिकता को प्रमाणित करने हेतु विस्तृत विवेचन सहित सफल प्रयास किया है।

डॉ. शर्मा ने राजपूतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट करते हुए लिखा है कि इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि प्रतिहार वंश का गुर्जरों से कोई सम्बन्ध नहीं था। और उनको निर्विवादरूप से रामायण के पात्र लक्ष्मण का वंशज भी नहीं माना जा सकता है। मण्डोर के प्रतिहार निश्चित रूप से ब्राह्मण थे तथा चौहानों और परमार को भी उनके शिलालेखों के आधार पर ब्राह्मण माना जा सकता है। हूणों जैसी कुछ विदेशी जातियां भी राजपूत समूह में शामिल हो गई परन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिये कि अधिकांश राजपूत जातियां विदेशियों की संतान हैं। इन जातियों का वास्तविक उद्गम बिन्दु या वंश चाहे जो रहा हो उन्हें आठवीं शताब्दी में क्षत्रिय ही माना जाता था तथा उन्होंने देश की सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा के लिए क्षत्रिय धर्म का तत्परता से पालन करते हुए अपना रक्त बहाया था।

पांचवा और छठा व्याख्यान क्रमशः धर्म (800–1000 ई. सन्) और प्रारम्भिक राजपूत राज्यों के प्रशासन से सम्बन्धित है। पांचवें भाषण में डॉ. शर्मा ने धर्म के आवश्यक लक्षणों पर विचार प्रकट करते हुए उसकी अनुकूलता, उदारता एवं सभी सम्प्रदायों में विद्यमान सत्य के प्रति उसकी सच्ची आस्था का सुस्पष्ट विवरण प्रस्तुत किया है। प्रशासनिक व्यवस्था के विवरण से सम्बन्धित छठा व्याख्यान संक्षिप्त होते हुए भी मौलिक से रिक्त नहीं है। सातवां व्याख्यान हाल ही में खोजे गये मुगल-राजपूत इतिहास से सम्बन्धित दो महत्वपूर्ण स्रोतों, दलपत विलास और मुहता नैणसी कृत मारवाड़ रे परगना री विगत के विषय में है। इन स्रोतों से प्राप्त जानकारी मुगल–राजपूत इतिहास के अध्येताओं के लिए निश्चयात्मक रूप से अत्यन्त ही महत्वपूर्ण और उपयोगी सिद्ध होगी।

आर्थिक अवस्था का विवरण प्रस्तुत करते हुए डॉ. शर्मा ने सिद्ध किया है कि राजस्थान के व्यापारियों ने वाणिज्य–व्यापार के लिए न केवल रेगिस्तानों और दुर्गम

जंगलों को पार किया अपितु भारत को अन्य देशों से पृथक करने वाले विस्तृत समुद्र को भी पार किया। डॉ. शर्मा के अनुसार साहित्यिक क्षेत्र में भी राजस्थान की देन पर्याप्त थी। इस काल में जिस साहित्य का निर्माण हुआ वह उच्च कोटि का है तथा प्रभाव की दृष्टि से उसकी तुलना शंकर एवं कुमारिल की कृतियों से की जा सकती है। कुवलयमाला और उपमितिभवप्रपंचा कथा जैसे ग्रन्थों का निर्माण भी इसी काल में हुआ। श्रीमाल से हमें माघ, मण्डन और माहुक जैसे विद्वान प्राप्त हुए। परन्तु इस काल की शिक्षा एकांगी तथा अव्यावहारिक थी। निमित्तशास्त्र और धातुवाद जैसे ग्रन्थ लिखे गये परन्तु खगोलशास्त्र एवं गणित शास्त्र विषयक ग्रन्थों का निर्माण नहीं हुआ।

वास्तुकला के क्षेत्र में राजस्थान ने अपनी ही मौलिक भव्य और राजसी शैली विकसित की जिसकी अभिव्यक्ति आबू, चंद्रावती, चित्तौड़, जालौर आदि के मंदिरों में हुई है। राजपूत शासक विशेषकर चौहान और परमार महान निर्माता थे।

इस प्रकार शांति और युद्ध दोनों ही कालों में राजस्थान की उपलब्धियां महान थीं। सांस्कृतिक क्षेत्र में राजस्थान का वैभव और भी अधिक महान रहा होता यदि यह मुस्लिम आक्रमणकारियों के विरूद्ध संघर्ष में पूर्णतया सफल हो जाता।

डॉ. शर्मा ने राजपूतों की पराजय के कारणों का विश्लेषण करते हुए स्पष्ट किया है कि राजपूतों में साहस, वीरता और धार्मिक उत्साह की कमी नहीं थी और उनकी प्रत्येक पराजय का कारण सैनिक नेतृत्व का अभाव नहीं था। राजस्थान के राजनीतिक संकट के लिए केवल राजपूत ही नहीं अपितु समस्त हिन्दू समाज उत्तरदायी था। जाति प्रथा ने समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को युद्धों में भाग लेने से वंचित कर दिया और इसका परिणाम भारतीय स्वतन्त्रता के लिए घातक सिद्ध हुआ। राजपूतों में राजनीतिज्ञता का भी अभाव था। अतः वे संयुक्त होकर एक ऐसी राजनीतिक व सामाजिक व्यवस्था का विकास नहीं कर सके जो विदेशी आक्रमणकारियों की चुनौती समुचित प्रत्युत्तर हो सकती थी।

डॉ. शर्मा ने प्रस्तुत ग्रन्थ के तृतीय भाग (1200–1316 ई.) में सम्बन्धित प्रदेश के धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक इतिहास का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने के उपरान्त राजनीतिक इतिहास को कुछ विस्तारपूर्वक लिखते हुए स्पष्ट किया है कि सन् 1200 ई. तक चौहानों, गहड़वाल, सेनों, चंदेलों और सौलंकियों को पराजित कर मुसलमान भारत के पूर्वी छोर तक पहुंच चुके थे परन्तु उनके आकस्मिक आघातों से सम्भलते ही हिन्दुओं ने भी प्रतिरोधात्मक केन्द्रों को निर्मित कर अद्‌भुत दृढ़निश्चय के साथ युद्ध करते हुए मुसलमानों को पीछे धकेल देने में सफलता प्राप्त की। दासवंश के शासकों के काल में ऐसे अवसर भी आए जब राजपूत शासकों का संयुक्त प्रयास दिल्ली–सल्तनत की इतिश्री कर सकता था परन्तु संयुक्त प्रयास के अभाव में अपनी

स्वतन्त्रता के लिए प्राण-प्रण से सतर्क होते हुए भी उन्हें अलाउद्दीन खिलजी के समक्ष नत–मस्तक होना पड़ा।

राजस्थान थ्रू दि एजेज

प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रारम्भिक काल से लेकर 1316 ई. सन् के ऐतिहासिक विवरण को समाविष्ट किया गया है। इसके प्रथम भाग को डॉ. सत्यप्रकाश श्रीवास्तव ने लिपिबद्ध किया था परन्तु बाद में डॉ. दशरथ शर्मा ने आवश्यकतानुसार कुछ परिवर्तन कर दिया। सन् 701 ई. से लेकर अन्त समय (1316 ई. सन्) तक के समस्त अध्याय द्वितीय एवं तृतीय भागों के रूप में डॉ. दशरथ शर्मा द्वारा ही लिखे गये हैं। डॉ. शर्मा ने द्वितीय भाग (700–1200 ई.) में महत्वपूर्ण घटनाओं से परिपूर्ण पांच सौ वर्षों के इतिहास का सर्वेक्षण प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट किया है कि इस काल में राजपूत जातियों ने विशिष्टता प्रदान की और ऐतिहासिक राजस्थान अस्तित्व में आया। इतिहास में यह पहला अवसर था जबकि समस्त राजस्थान एक राजस्थानी शक्ति द्वारा शासित था तथा समस्त देश उस नवीन राष्ट्र के उदय से पूर्णतया भिज्ञ था, जिसका विशिष्ट कार्य न केवल न्याय के आधार पर शासन करना ही था अपितु अपनी पवित्र भूमि को विदेशी चंगुल से मुक्त कराना भी था।

यह युग राजस्थान के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक अस्तित्व के विरूद्ध लड़ाकू अरबों की चुनौती से प्रारम्भ होता है। डॉ. शर्मा के अनुसार प्रतिहार शासकों ने राष्ट्रीय धर्मयुद्ध के रूप में आक्रमणकारियों की चुनौती का जो प्रत्युत्तर दिया उसे देश-वासियों ने नारायण द्वारा पृथ्वी के उद्धार किये जाने के रूप में देखा। परन्तु जब प्रतिहारों का सम्पर्क राजस्थान से विच्छिन्न हो गया तथा उत्तर–पश्चिम की ओर से प्रविष्ट हुए गजनी के हमलावरों के समक्ष वे नतमस्तक हो गए, तब लगभग चार सौ वर्षों तक देश की स्वतंत्रता एवं संस्कृति की रक्षा के लिए राजस्थान के चौहानों, तोमरों और उत्तरप्रदेश के गहड़वालों ने ई. सन् 1192 तक सफलतापूर्वक संघर्ष किया।

डॉ. शर्मा ने राजपूत शासकों के उपर्युक्त प्रतिरोधात्मक संघर्ष को राजस्थान के प्रति उनकी एक महान देन के रूप में स्वीकार किया है। इसके साथ ही डॉ. शर्मा ने यह सही निष्कर्ष निकाला है कि यदि गजनबियों को परास्त करने के उपरान्त राजपूत कुछ कम आत्म-संतुष्ट रहते, सीमान्त नीति की ओर कुछ विशेष ध्यान दिया होता, और ऐसी राजनीतिक व्यवस्था का विकास किया होता जो उनकी अपनी शक्ति संयुक्त रूप से शत्रु के विरूद्ध प्रयुक्त करने में सहायक सिद्ध होती तो यह देन और भी महान हो सकतीं थी।

धार्मिक अवस्था की विवेचना करते हुए डॉ. शर्मा ने यह निष्कर्ष निकाला है कि धार्मिक क्षेत्र में पाशुपात और पांचरात्र जैसी पद्धतियों की पर्याप्त प्रगति हुई और इससे भी अधिक प्रगति हुई जैन धर्म की। विधिचैत्य आंदोलन इसी काल की उपज था

जिसने जैनधर्म को उस मार्ग की ओर जाने से रोका जिस पर चलकर बौद्ध धर्म पतनोन्मुख हुआ। डॉ. शर्मा के अनुसार राजस्थान ने गुर्जर, मालव और मारव संस्कृतियों में समन्वय स्थापित करके एक विलियन पात्र के रूप में कार्य किया। यहीं पर जाति व्यवस्था के स्थान पर वर्ण व्यवस्था को कहीं अधिक उदारतापूर्वक अपनाया गया।

डॉ. शर्मा ने राजपूतों की पराजय के कारणों पर अपने विचार व्यक्त करते हुए स्पष्ट किया है कि भारतीय जलवायु, जाति व्यवस्था का घातक प्रभाव, साहस और सम्मान का मिथ्याभिमान, जैन एवं बौद्ध धर्मों द्वारा प्रचारित अहिंसा का सिद्धांत, मध्य एशिया के वर्बर घुमक्कड़ और भूखे आक्रमणकारियों की लूटमार की अतृप्त प्यास जो कि इस्लाम की उनकी स्वयं की व्याख्या द्वारा और भी अधिक तीव्र हो गई थी, हमारे देशवासियों की उदासीनता, युद्ध की नवीन प्रणालियों को सीखने की हमारी अयोग्यता, दीर्घकाल से चली आ रही स्त्रियों की हीनावस्था, नैतिक नियमों में व्याप्त शिथिलता, तंत्रवाद आदि अंततः राजपूतों की पराजय एवं पराभव के कारण बने। डॉ. शर्मा ने ठीक ही लिखा है कि सन् 1316 ई. का भारत चौराहे पर खड़ा था। पुरातन लीक पर चलने का तात्पर्य था गतिहीनता और यही गतिहीनता राजनीतिक पतन का कारण सिद्ध हुई।

डॉ. शर्मा ने विवादास्पद विषयों की विवेचना पाद टिप्पणियों या सम्बन्धित अध्यायों के अंत में दिए गए परिशिष्टों में की है। नवीन सामग्री से परिपूर्ण वंशावली बताने वाली सारणियां तथा स्रोत ग्रन्थों की तालिका भी सामान्य पाठकों एवं उन विद्वानों की पूर्ति करेगी जो मौलिक ग्रन्थों का अध्ययन कर अपना स्वतन्त्र निष्कर्ष स्थापित करना चाहते हैं।

डॉ. रघुवीरसिंह सीतामऊ ने लिखा है कि "डॉ. दशरथ शर्मा ने राजस्थान के उस समूचे पूर्वकालीन इतिहास को सुव्यस्थित ही नहीं किया परन्तु उसकी न्याय संगत समुचित व्याख्या भी सविस्तार की है। उनका यह ग्रन्थ पर्याप्त काल तक तत्कालीन इतिहास के संशोधकों के लिए स्थायी ठोस आधार, एक महत्वपूर्ण संदर्भ-ग्रंथ तथा अत्यावश्यक मार्गदर्शक भी बना रहेगा।"[1]

डॉ. दशरथ शर्मा भारत के प्रमुख इतिहासकारों की सम्मानित पंक्ति में सुप्रतिष्ठित है। आपकी विद्वत्तापूर्ण कृतियों से राजस्थान ही नहीं, सम्पूर्ण भारत गौरवान्वित है।

1– राजस्थान के प्रमुख इतिहासकार पृ. 52–53 बीकानेर।

परिशिष्ट

राजस्थान इतिहास सामग्री के सर्वेक्षणकर्त्ता डॉ. लुइजिपिओ तैस्सितोरी

प्रद्युम्न कुमार सिंह चुण्डावत
व्याख्याता – इतिहास
भूपाल नोबल्स कॉलेज,
उदयपुर (राज.)

राजस्थान में इतिहास सामग्री संकलित और सम्पादित करने की परम्परा प्रारम्भ करने का श्रेय जिस व्यक्ति को है वह स्वयं राजस्थानी नहीं था, वह भारतवासी भी नहीं था। इतिहासज्ञ होने के लिये उसने शिक्षा भी नहीं पायी थी और न जिन वर्षों में उसने अपनी इतिहास पुस्तक के लिये तैयारी की, फिर भी वह राजस्थान के इतिहास पर अपने प्रकार की और आज तक की सबसे महत्वपूर्ण मानी जाने वाली पुस्तक तैयार कर सका और आज उसे विशेषज्ञ तक राजपूतों के इतिहास के पिता के रूप में याद करते हैं। वह व्यक्ति था इंग्लैण्ड का निवासी कर्नल जेम्स टॉड जिसका नाम सदा राजस्थान के इतिहास लेखकों में प्रथम स्थान पर लिखा रहेगा। इसी प्रकार इस प्रदेश के इतिहास मातृभाषा और साहित्य को संसार के सामने लाने, उसके बिखरे सूत्रों को संजोने, संवारने और विद्वद् मण्डली का उसकी ओर ध्यान आकृष्ट करने का श्रेय एक अन्य विदेशी विद्वान को ही है और वह है इटली निवासी डॉ. लुइजिपिओ तैस्सितोरी। राजस्थान के इतिहास–यज्ञ का प्रारम्भ कर्नल जेम्स टॉड ने किया था। उसके इतिहास, भाषा, साहित्य की पुनर्प्रतिष्ठा डॉ. लुइजिपिओ तैस्सितोरी ने किया।

राजस्थान के गौरवमय अतीत के सम्बन्ध में अभी राजस्थानेत्तर जनता जिज्ञासा और कुतूहल की दृष्टि ही रखती है। इस कला और सौन्दर्य, इतिहास, साहित्य और शौर्य के विस्तृत प्रदेश के आगे साधारण जन के लिए एक विराट् प्रश्न चिन्ह ही लगा हुआ है। इतिहास के पृष्ठों में झांक कर देखने का और गवेषणा के मोती चुनने का आग्रह सबमें नहीं होता, हो भी नहीं सकता। किन्तु इस आग्रह के अभाव में यदि हम अंधकार में ही रह जाय तो वह भी कुछ शोभन नहीं होगा। अतीत की यह गाथा सर्वजन सुलभ होनी ही चाहिये। अस्तु प्रस्तुत प्रयास हमें अंधकार से प्रकाश में लाने की चेष्टा भर है। मेरा यह प्रयास ऐसे साधक तथा उसकी साधना कृतियों से परिचित कराना है जिन्होंने राजस्थान को पढ़ा, समझा और अपने अध्ययन को हमारे लिए

सुलभ किया। ऐसा ही प्रयास महान् इटली निवासी डॉ. लुइजिपिग्रो तैस्सितोरी का था।

जिस प्रकार कर्नल जेम्स टॉड एक राजस्थान एवं विशेष रूप से राजस्थान प्रेमी थे उसी प्रकार डॉ. तैस्सितोरी भी राजस्थान प्रेमी थे। परन्तु एक प्रकार से तैस्सितोरी का राजस्थान प्रेम ग्रधिक उत्कृष्ट श्रेणी का था। कर्नल जेम्स टॉड यहां राजस्थान का इतिहास लिखने की ग्राकांक्षा से नहीं ग्राये थे। यहां उनके ग्राने का उद्देश्य राजनैतिक था ग्रौर उनका यहां ग्राना हो गया। फिर उन्होंने यहां के लोगों से परिचय प्राप्त किया ग्रौर उनसे उन्होंने इस भूमि का इतिहास जाना जिससे वे प्रभावित हुए। तैस्सितोरी ग्रपने ही देश में रहते हुए भी राजस्थान के ग्रौर उसके इतिहास एवं साहित्य के भक्त हो गये थे।

राजस्थानी इतिहास भाषा ग्रौर साहित्य के वैज्ञानिक ग्रनुसंधान के पथ-प्रशस्त करने वाले इस महान् इटेलियन विद्वान तैस्सितोरी का जन्म इटली के नगर उदीने (Udine) में 13 दिसम्बर, 1887 को हुग्रा। बचपन से ही वे कुशाग्र बुद्धि के थे। उन्होंने बिना शिक्षक के ग्रनेक भाषाग्रों का ग्रध्ययन कर लिया था। ग्रंग्रेजी, लेटिन, ग्रीक, जर्मन, संस्कृत, प्राकृत, पुरानी गुजराती, नई गुजराती, ग्रपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी, ब्रज ग्रादि भाषाग्रों का ग्रच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। 21 वर्ष की ग्रायु तक फ्लोरेण्ट विश्वविद्यालय इटली से शिक्षा प्राप्त की। उन्हें रामचरित मानस विषय पर पी.एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई। उनके कई लेख पत्र-पत्रिकाग्रों में छपे, जिससे ग्रल्प समय में ही उनकी ख्याति सर्वत्र फैल गई।[1]

डॉ. ग्रियर्सन उनकी योग्यता से बड़े प्रभावित हुए ग्रौर उन्होंने तैस्सितोरी को बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता के लिए 1914 ई. में भारत बुला लिया। वे यहां हिस्टोरिकल सर्वे ग्रॉफ राजपूताना के सुपरिन्टेंडेण्ट के पद पर नियुक्त हुए। पहले उन्होंने जोधपुर में ग्रपना कार्यक्षेत्र बनाकर हस्तलिखित ग्रन्थों के सर्वेक्षण का कार्य किया। उनको यहां के लोगों से विशेष लगाव हो गया था ग्रौर वे यहीं शोध साधना करना चाहते थे, परन्तु लोगों की कानाफूसी के कारण वे ग्रधिक समय तक यहां नहीं टिक सके ग्रौर उन्हें बीकानेर जाने के लिये मजबूर होना पड़ा। वहां महाराजा गंगासिंहजी का भरपूर सहयोग उन्हें मिला।[2] बीकानेर में रहकर उन्होंने ग्रन्थों के सर्वेक्षण का महत्वपूर्ण कार्य किया। राजस्थानी भाषा के विद्वान डॉ. नारायणसिंह भाटी ने उनके सर्वेक्षण के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए लिखा है :—

1– डॉ. नरेन्द्र कुमार भानावत; डॉ. एल.पी. तैस्सितोरी पर लेख, राजस्थान भारती, भाग 5, 1957.

2– राजस्थान भारती, भाग 5, 1957.

"सर्वेक्षणकर्त्ता का यह प्रयास आधुनिक सर्वेक्षणकर्त्ताओं के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करता है। अत्यन्त श्रम और धैर्यपूर्वक किया गया इस प्रकार का विस्तृत और प्रामाणिक सर्वेक्षण ही उत्तम कोटि के अप्रकाशित साहित्य से विद्वानों का परिचय सही रूप से करा सकता है तथा मूल ग्रन्थ उपलब्ध न होने पर भी आगे आने वाली पीढ़ियों के लिये यह अमूल्य निधि किसी न किसी रूप में सुरक्षित रखी जा सकती है। इस सर्वेक्षण के रूप में जो प्रारम्भिक कार्य तैस्सितोरी ने किया है वह उनकी वैज्ञानिक दृष्टि के विकास क्रम का सूचक है"।[1]

भारत में डॉ. तैस्सितोरी द्वारा प्रकाशित रामचरित मानस और रामायण (जो पहले इटली में छप चुकी थी) परम ज्योति स्रोत और सिंहसेन दिवाकर के कल्याण मंदिर स्रोत का पुरानी ब्रजभाषा में रूपान्तर गुजराती और जैपुरी में सुलेमान का न्याय के दो जैन रूपान्तर, पश्चिमी राजस्थानी व्याकरण, अपभ्रंश (गुजराती एवं मारवाड़ी के उल्लेखों सहित), वर्तमान जैनाचार्य विजयधर्म सूरि, राजस्थान का चारण साहित्य और ऐतिहासिक हस्तलिखित प्रतियां जोधपुर स्टेट गद्य भाग–1, विवरणात्मक सूची, चारणी साहित्य और ऐतिहासिक हस्तलिखित प्रतियां बीकानेर गद्य भाग–2, इसी प्रकार पद्य में लिखित प्रतियां भाग–1, वचनिका राठौड़ रतन महेशदासोत री खिड़िया जगा री कही, डिंगल नोट्स और कोष सहित वेलि कृष्ण रुक्मणी री महत्वपूर्ण रूप से उल्लेखनीय है। उनकी साहित्यिक रचनाओं में "इन्द्रिय पराजय" और "नासिकेत की कथा" का इटेलियन भाषा में अनुवाद मीर अम्मान कृत "कुत्तों की पूजा करने वाला व्यापारी" तथा हाल–रचित प्रणय प्रधान काव्य ग्रन्थ "गाथा, सप्तशती" आदि प्रमुख हैं।

डॉ. तैस्सितोरी की जैन धर्म के प्रति भी अटूट श्रद्धा थी। कर्नल जेम्स टॉड और डॉ तैस्सितोरी में एक बड़ी समानता थी। दोनों को ही दो विद्वान जैन धर्माचारियों से ही सहायता मिली थी और दोनों उनको अपना गुरू मानते थे। टॉड के प्रयत्न के पीछे जैन गुरू यति ज्ञानचन्द्र का बड़ा हाथ था। और डॉ. तैस्सितोरी को आचार्य विजयधर्मसूरि से प्रेरणा और सहायता मिली थी। वे जैनाचार्य विजयधर्मसूरि के अनन्य उपासक एवं शिष्य थे। जैन धर्म के सिद्धान्तों को उन्होंने जीवन में उतारा। जैन साहित्य का व्यापक अध्ययन कर उन्होंने विभिन्न ग्रन्थों का सम्पादन किया। इटली में रहते हुए भी अपने आचार्य से पत्र–व्यवहार चलता रहा। सर्वप्रथम प्रो. जैकोबी के प्रेरणा करने पर आपने 11 अप्रेल, 1913 को इटली में उदीने से आचार्य के नाम एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने धर्मदास की "उपदेशमाला" श्रेणिक की कथा और जयवल्लभ कृत वज्जालग के सम्पादन व भाषानुवाद करने की उत्कृष्ट अभिलाषा व्यक्त की और साथ में यह भी लिखा कि मुझे पूरा विश्वास है कि भारत, उसके

1– परम्परा, भाग 28–29, सम्पादकीय, पृ. 1–2.

साहित्य तथा जैन धर्म के प्रति मेरा प्रेम देखकर आप मुझे अवश्य सहायता देंगे। फलतः आचार्यप्रवर ने उनको "उपदेश-माला" और "श्रेणिक की कथा" की हस्त-लिखित प्रतियां भेजी।

इटली में रहकर उन्होंने जैन साहित्य विषयक सम्पादन कार्य करना चाहा। आचार्य ने आपको अहिंसा-दिग्दर्शन, "जैन शिक्षा" "जैन तत्व" आदि पुस्तकें भेजी। "जैन-शासन" नामक समाचार पत्र पाकर तो वे इतने अधिक हर्षित हुए कि तुरन्त वार्षिक चन्दा भेजने को उद्यत हुए। समय-समय पर आचार्य विजयधर्मसूरि के द्वारा प्रेषित जिनकीर्तिसूरि कृत षड्भाषा स्तवन, महाजन वंश मुक्तावली, चित्तौड़ की गजल, राजा गजसिंह का निर्वाण, पद्मणी चौपाई (अपूर्ण), ऐजन (पूर्ण) गौडी पार्श्वनाथ स्तवन आदि पुस्तकों का मन्थन कर उन्होंने जैन साहित्य के प्रति श्रद्धा प्रकट की।[1]

जैन साहित्य का विश्व-व्यापी प्रचार करने में उन्होंने महान योग दिया। उपदेश-माला, भववैराग्य शतक, करकण्डु री कथा तथा इन्द्रिय पराजय शतक का इटालियन भाषा में भाषान्तर किया। श्रेणिक की कथा, जिनमाणिक्यसूरि कृत कुम्भापुत्तकहा, नेमिचन्द्र कृत "सट्टिसयं" सोमसूरि कृत "पज्जंता सहणं" "पुण्या-श्रावक कथा कोष" कल्याणमन्दिर स्रोत आदि कई जैन सूत्रों एवं ग्रन्थों का आलोचनात्मक सम्पादन किया। इसके अतिरिक्त अहिंसा दिग्दर्शन आदि कई पुस्तकों की समालोचना इटालियन भाषा में की जिनका प्रकाशन जर्नल डेला सोसायटा एशियाटिका इटालियना के पत्रों में हुआ। इस प्रकार जैन धर्म की निर्मलता और निष्कपटता, संयमता और सरलता उनके जीवन और कृतित्व में पद-पद पर दृष्टिगत होती है।

डॉ. तैस्सितोरी द्वारा लिखे गये पत्र में उनके भारत प्रेम एवं निडरता की झलक सुस्पष्ट होती है। वे लिखते हैं—"जितना बन सकेगा मैं भारतीयों के हृदय में मिल-जुल जाऊंगा। मैं भारत में इसलिए आया हूं क्योंकि मुझे भारत के लोगों व उनकी भाषा इतिहास और साहित्य से प्रेम है। और इसलिए जितना भी ज्यादा इसके बारे में जान सकूंगा उतनी ही मुझे अधिक प्रसन्नता होगी। मैं कोई अंग्रेज नहीं हूँ जो उन सब चीजों को हेठी निगाहों से देखते हैं जो इंगलैण्ड की या कम से कम यूरोप की नहीं है। मेरे मन में भारतवासियों के प्रति उच्चतम आदर और सराहना के भाव हैं।"

राजस्थान के इतिहास, साहित्य एवं संस्कृति की सेवा करने आये इटली के इस सपूत को जब 1919 ई. में उसकी माता की गम्भीर बीमारी का समाचार मिला तो उसे स्वदेश लौट जाना पड़ा। 17 अप्रेल, 1919 को बम्बई से रवाना होकर जहाज द्वारा एक माह बाद 16 मई को जब वे अपने गांव पहुंचे तो उससे पहले ही उनकी

1— राजस्थान भारती, भाग 5, 1957.

माता का देहान्त हो चुका था इससे उन्हें बड़ा आघात लगा। छः माह अपने घर रहकर पुनः 1 नवम्बर, 1919 को वह भारत आ गया। मार्ग की थकावट व माता के देहान्त से वह टूट गये थे और केवल 22 दिन की बीमारी के बाद ही 22 नवम्बर, 1919 को बीकानेर में ही उनका देहान्त हो गया। इस प्रकार राजस्थानी साहित्य का वह विदेशी सपूत "धरती धोरां री" में ही समा गया।

डॉ. तैस्सितोरी का 31 वर्ष का जीवन सचमुच एक स्फुलिंग की तरह था। चिरज्वलित, चिरजागृत जो रात-दिन जलता रहा, धधकता रहा और अन्त में अपनी उष्मा और दीप्ति को विकीर्ण करता हुआ ज्ञान के मन्दिर में पूजा के दीप की तरह बुझ गया और बुझकर भी इसने चारों ओर आलोक भर दिया। जिसके प्रकाश में आज भी पथ-सन्धान किया जा सकता है जैसा कि डॉ. तैस्सितोरी के लिए प्रसिद्ध इटेलियन विद्वान प्रो. एटीलीओ बोनेटो ने कहा था—"डॉ. तैस्सितोरी वास्तव में विज्ञान की वैदी पर एक प्रचण्ड अग्नि था क्योंकि उसकी देह उसकी आध्यात्मिक तीव्रता से इस तरह जली कि लगभग वह भड़क उठी जिस समय कि उसकी आत्मा भौतिक बन्धनों से मुक्त होकर अमरत्व की ओर ऊपर उठ रही थी, उनके जीवन के लिए कितने सत्य थे।"

इटली के गांव उदीने में रहने वाले इस इटालियन युवक की पलकों में सिन्धु के पास सुदूर भारत के और विशेषतः राजस्थान के स्वप्न थे। भारत सपनों का देश था, उसकी कल्पना का, उसकी भावना का, उसके चिन्तन का देश। इटली में रहकर तुलसी व वाल्मीकि का तुलनात्मक अध्ययन करना और इस विषय में शोध प्रबन्ध करना अद्भुत प्रतिभा, असाधारण मेधा और असीम साहस का परिचय था। 15 वर्ष की उम्र में ही इस नवयुवक ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, वैसवाडी, पुरानी राजस्थानी, गुजराती, मारवाड़ी आदि विविध भाषाओं का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने डॉ. तैस्सितोरी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था—"जिन विदेशी साहित्य प्रेमियों और पुरातत्व अनुरागियों ने भारत में रहकर उपयोगी अनुसंधान कार्य किया है उनमें डॉ. तैस्सितोरी का नाम सदा शीर्ष स्थान पर रहेगा।[1]

डॉ. तैस्सितोरी गम्भीर भाषा वैज्ञानिक एवं व्याकरण के धुरन्धर अध्येता थे। इटली में रहते हुए भारत में आने से पूर्व इन्होंने प्राचीन पश्चिम राजस्थानी का व्याकरण, अपभ्रंश, गुजराती और मारवाड़ी भाषा के उद्धरण देते हुए जो निबन्ध प्रस्तुत किया है वह इनके अध्यवसाय, चिन्तन, प्रतिभा और भाषा ज्ञान का ज्वलन्त

1– रेवाशंकर शर्मा, मानस मर्मज्ञ डॉ. तैस्सितोरी, राजस्थान पत्रिका, 13 दिसम्बर, 1987.

प्रमाण है । जैसा कि प्रसिद्ध भाषा शास्त्री डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने डॉ. तैस्सितोरी की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए कहा था– "पुरानी राजस्थानी की उच्चारण रीति, रूपतत्व और वाक्य रीति के पूरे विचार के साथ तैस्सितोरी की आलोचना ऐसी महत्व-पूर्ण है कि इसे मारवाड़ी तथा भाषातत्व की बुनियाद कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।"

इस प्रकार राजस्थान में रात और दिन जलती लुओं के बीच ऊंचे–ऊंचे धोरों पर तम्बू ताने सैंकड़ों असुविधाओं–कठिनाइयों का सामना करते हुए अलमस्त फकीर की तरह इस तरूण ने राजस्थान के इतिहास, साहित्य, व्याकरण, संस्कृति के क्षेत्र में जो कार्य किया उसकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती । मारकोपोलो के चरण चिन्हों पर चलकर उन्होंने घुमक्कड़ जीवन जिया । डॉ. तैस्सितोरी के बारे में हिन्दी के मूर्धन्य विद्वान डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में– "डॉ. तैस्सितोरी का कार्य भारत और यूरोप के बीच चिन्मय सेतु" सिद्ध होगा । उनका कार्य इस तथ्य की अमर-वाणी है कि सरस्वती के मन्दिर में विश्व–बंधुत्व का गुम्बद है । देशकाल और वर्ग-भेद की दीवारों के लिए इसमें कोई स्थान नहीं है ।

राजस्थानी पोशाक और ऊंट की सवारी उन्हें बहुत पसन्द थी । राजाओं के विलासितापूर्ण जीवन और राजस्थान के गांवों और कस्बों के जन-जीवन के बीच समरस की अनुभूति का ही परिणाम था कि डॉ. तैस्सितोरी राजस्थान में कुछ वर्षों तक रहकर ही इतना काम कर गये जिनकी आज तो कल्पना ही असम्भव है ।

इस प्रकार डॉ. लुइजिपिओ तैस्सितोरी ने राजस्थान के इतिहास, साहित्य एवं संस्कृति की जो सेवा की उसका राजस्थान हमेशा ऋणी रहेगा एवं इनकी सेवायें राजस्थान के लिए हमारे साधना के रूप में अनन्त काल तक चिरस्मरणीय रहेगी ।

संस्कृत एवं राजस्थानी की ऐतिहासिक कृतियों का विवेचन

डॉ. हुकमसिंह भाटी

अब नई विचारधाराओं को लेकर इतिहास का क्षेत्र बड़ा व्यापक हो गया है। केवल राजा–महाजाओं और बादशाहों के जन्म, राज्यारोहण, युद्ध अभियानों तक ही इतिहास सीमित नहीं रहा है बल्कि राजनीतिक घटनाओं और परिस्थितियों के अलावा सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पहलुओं का विवेचन भी इतिहास–लेखन का अंग बन गया है। तदर्थ स्थानीय स्रोतों का गहराई से अध्ययन करने की आवश्यकता अब महसूस की जाने लगी है। ऐसे में संस्कृत व राजस्थानी की ऐतिहासिक कृतियों की महत्ता और बढ़ गई है।

ऐतिहासिक कृतियों के विवेचन के पूर्व संस्कृत व राजस्थानी भाषा के बारे में कुछ जानकारी देना समीचीन होगा। भाषा शास्त्रियों की यह मान्यता रही है कि मध्य एशिया को छोड़कर जिस समय हमारे पूर्वपुरूष भारत में आकर बसे थे और उस समय जो भाषा वे बोलते थे उससे वैदिक संस्कृति की उत्पत्ति हुई। आगे चलकर इस संस्कृति का साहित्यिक रूप संस्कृत कहलाया और बोलचाल की भाषा प्राकृत कहलाई। बाद में प्राकृत को जब साहित्यिक स्वरूप दिया गया तो एक नवीन भाषा ने जन्म लिया जो अपभ्रंश नाम से प्रसिद्ध हुई। विक्रम की छठी शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश का प्रचार रहा। गुर्जर देश (आधुनिक गुजरात व राजस्थान) में जो भाषा बोली जाती थी वह गुर्जरी अपभ्रंश कहलायी और इसी से राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति हुई। इस भाषा का प्रादुर्भाव कब हुआ, ठीक से बताना कठिन है, फिर भी डॉ. मोतीलाल मेनारिया का अनुमान है कि ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राजस्थानी भाषा प्रचार में आई। परन्तु इसका हमें कोई प्रमुख प्रमाण नहीं मिलता।

इतिहास विषयक संस्कृत की कृतियाँ मूलतः काव्य रूप में ही मिलती हैं, परन्तु राजस्थानी कृतियां गद्य व पद्य दोनों में ही पायी जाती हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी के लगभग चार सौ वर्षों के काल में यहां विधर्मियों के साथ जो अनेकानेक युद्ध हुए उनका सविस्तार वृत्तांत राजस्थानी की कृतियों में मिलता है।

इन कृतियों के रचयिता दो प्रकार के हुए हैं। एक वे जिनको राज्याश्रय प्राप्त था और जिन्होंने अपने आश्रयदाता की छत्रछाया में रहकर यशोगान किया तथा दूसरे वे जिन्होंने अपनी स्वेच्छा से किसी आदर्श पुरूष का चयन कर अपनी लेखनी चलाई।

यों तो काव्य कृतियों में मूलतः कवि का उद्देश्य प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत करने का नहीं बल्कि उनका यशोगान करना ही होता था फिर भी उनकी रचनाओं में कतिपय ऐतिहासिक घटनाओं के अतिरिक्त उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों, सामाजिक गतिविधियों, धार्मिक मान्यताओं और युद्ध के तौर-तरीकों आदि विविध पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है। इतिहासकार गुण-गान करने वाली ऐसी कृतियों से परहेज करते आये हैं और इतिहास लेखन में वे फारसी तवारीखों को अधिक महत्व देते रहे हैं जिससे यहाँ का इतिहास एकपक्षीय ही अधिक रहा है।

वस्तुतः यहां पाई जाने वाली संस्कृत और राजस्थानी साहित्य की ऐतिहासिक रचनाओं के सम्पादन का कार्य अभी तक पूर्ण नहीं हुआ है। कुछ कृतियों के तो मूल पाठ ही छपे हैं। ऐसी स्थिति में शोधार्थी अपने विषय के उपयोगी संदर्भ ढूंढ निकालने में सर्वथा असफल ही रहे हैं। इसके अतिरिक्त 30–40 वर्ष पूर्व छपी कृतियां इतिहास–प्रेमियों व संशोधकों को सहज सुलभ नहीं होती। अतः आज आवश्यकता है समूची महत्वपूर्ण कृतियों का वैज्ञानिक ढंग से सम्पादन करने की। इन कृतियों की महत्ता तब ही भलीभांति उजागर होगी और इनका पूर्णरूपेण उपयोग इतिहास लेखन में तभी सम्भव होगा।

संस्कृत की कृतियाँ मूलतः काव्य रूप में ही मिलती हैं, अतः शिलालेखों के रूप में प्राप्य प्रमुख प्रशस्तियां और लिपिबद्ध काव्य ग्रन्थों को प्रारम्भ में स्थान दिया गया है। इसके बाद राजस्थानी–ऐतिहासिक कृतियों का विवरण दिया है। राजस्थानी की कृतियों का स्वरूप वैविध्य रहा है इसलिये अलग–अलग शीर्षक देकर उनका प्रस्तुतीकरण किया है।

संस्कृत की कृतियां

उत्कीर्ण प्रशस्तियां

राजस्थान का इतिहास जानने के साधनों में प्रशस्तियों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये प्रशस्तियाँ मूलतः मंदिरों, दुर्गद्वारों, कीर्तिस्तम्भों पर उत्कीर्ण की हुई मिलती हैं। इनमें राजाओं की उपलब्धियों का प्रशंसायुक्त वृत्तांत मिलता है, इसलिये इन्हें प्रशस्ति कहते हैं। राजस्थान में सर्वाधिक मेवाड़ राज्य में प्रशस्तियां सुलभ होती हैं। यहां पर प्रशस्तियां उत्कीर्ण करने की स्वच्छ परम्परा रही है। इस प्रकार की कृतियों में राजाओं का वंशक्रम, युद्ध अभियानों, पाड़ोसी राज्यों से सम्बन्ध, बनाये गये मन्दिरों, जलाशयों, बाग-बगीचों, राजप्रासादों का वर्णन मिलता है जो बाद में लिखी गई ख्यातों, काव्य ग्रन्थों से कहीं अधिक प्रामाणिक है। अनेक एतिहासिक कड़ियों को जोड़ने में ये बड़ी सहायक सिद्ध हुई हैं। प्रतिभा सम्पन्न कवियों द्वारा रची गई प्रशस्तियों से उस समय के बौद्धिक स्तर का भी पता चलता है। राज्य आश्रय में लिखी जाने के कारण यद्यपि इनमें अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण मिलता है, अतः उपयोगी शोध सूत्रों का चयन बड़ी सावधानी से करना चाहिये। कुछ महत्वपूर्ण प्रशस्तियों का विवरण यहां दिया जा रहा है।

1- लूणवसदी (आबू-देलवाड़ा) की प्रशस्ति (वि.सं. 1287)

आबू के देलवाड़ा गांव के लूणवसदी के मन्दिर की इस प्रशस्ति में आबू के परमार शासकों और उनके मंत्री वस्तुपाल के बारे में जानकारी मिलती है। इसमें उत्कीर्ण है कि सोमसिंह के समय मंत्री वस्तुपाल के अनुज तेजपाल ने लूणवसदी नामक नेमिनाथ का मन्दिर बनाया और सोमसिंह ने डबाणी गांव मन्दिर की पाट पूजा के लिये भेंट किया। समय-समय पर आयोजित किये जाने वाले उत्सवों का उल्लेख करते हुए प्रबन्धकर्त्ताओं के नाम भी दिये हैं।

2- नेमिनाथ के मंदिर की प्रशस्ति (सोमेश्वरदेव/वि.सं. 1287)

तेजपाल द्वारा निर्मित यह प्रशस्ति आबू पर देलवाड़ा गाँव के नेमिनाथ के मन्दिर में लगी हुई है। इसमें परमार शासकों के बारे में अच्छी जानकारी मिलती है। आबू के परमारों में धारावर्ष का नाम पराक्रमी शासक के रूप में हुआ है। धारावर्ष के अनुज प्रह्लाददेव की वीरता व विद्वता का वर्णन भी

किया है और गुजरात के सोलंकियों के साथ उसके सम्बन्धों का विवरण दिया है। धारावर्ष के पुत्र सोमसिंह के मंत्री वस्तुपाल तथा तेजपाल की कार्य-कुशलता व दानशीलता पर प्रकाश डालते हुए उनके द्वारा गांव-गांव में बावड़ियां, कुए, तालाब, मन्दिर, धर्मशालाएं बनवाने का उल्लेख किया है। उस समय के शासन प्रबन्ध, सामाजिक मान्यताओं और राजनीतिक गतिविधियों की जानकारी हेतु यह प्रशस्ति महत्वपूर्ण है।

3– सुण्डा पर्वत की प्रशस्ति (जयमंगलाचार्य/वि.सं. 1319)

जोधपुर के जसवंतपुरा गांव से दस मील की दूरी पर स्थित सुण्डा पर्वत पर यह प्रशस्ति शिलाओं पर खुदी हुई मिली है। प्रशस्ति में 59 श्लोक हैं और भाषा संस्कृत है। जालोर के शासक चाचिगदेव सोनगरा चौहान की उपलब्धियों पर अच्छा प्रकाश डालते हुए उसके पूर्वजों और पड़ौसी शासकों की प्रामाणिक जानकारी दी है। अन्हणदेव द्वारा नाडोल में शिवालय का निर्माण कराने, केल्हण द्वारा सुवर्ण तोरण बनाने, समरसिंह द्वारा जालोर गढ़ का निर्माण करने व समरपुर बसाने, उदयसिंह द्वारा अपने राज्य का विस्तार करने तथा उदयसिंह के पुत्र चाचिगदेव द्वारा तुरूष्कों को परास्त कर ख्याति अर्जित करने का विवरण दिया है। चाचिगदेव ने श्रीमाल (भीनमाल) में कई कर माफ कर दिये थे उसका उल्लेख भी है। उस समय की राजनीतिक हलचलों और सामाजिक मान्यताओं की जानकारी हेतु यह प्रशस्ति बड़ी महत्वपूर्ण है।

4– चीरवे की प्रशस्ति (रत्नप्रभसूरि/वि.सं. 1330)

51 श्लोक का यह लेख उदयपुर से 8 मील उत्तर में चीरवा गांव के एक मन्दिर में लगा हुआ है। इसमें मुख्य रूप से पद्मसिंह, जैत्रसिंह, तेजसिंह और समरसिंह के सैनिक अभियानों का वर्णन है। इसके अलावा चीरवा गांव की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए वहां के जन-जीवन, धार्मिक व्यवस्था और व्यवसाय इत्यादि अनेक पहलुओं की जानकारी दी गई है। उस समय की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व धार्मिक स्थिति के अध्ययन हेतु यह प्रशस्ति बड़ी महत्व-पूर्ण है।

5– रसिया की प्रशस्ति (वि.सं. 1331)

इस प्रशस्ति का नाम रसिया की छत्री का लेख दिया है क्योंकि यह लेख इस छत्री के दोनों ओर ताकों में लगा हुआ है। परन्तु अब एक ही ताक वाली शिला बची है। इसमें बापा से नरवर्मा तक के गुहिल वंशीय मेवाड़ के शासकों की उपलब्धियों का वर्णन करते हुए मेवाड़ की प्राकृतिक स्थिति, उपज और नगर निर्माण की जानकारी दी गई है। वैदिक यज्ञों व शिक्षा प्रणाली पर भी

काफी कुछ प्रकाश पड़ा है। उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक स्थिति के अध्ययन के लिये यह प्रशस्ति उपयोगी है।

6– अचलेश्वर (आबू) की प्रशस्ति (वेद शर्मा / वि.सं. 1342)

यह प्रशस्ति अचलेश्वर के मन्दिर के पास बने मठ के चौपाल में लगी हुई है। इसमें बापा से लेकर समरसिंह तक मेवाड़ के शासकों की वंशावली दी है। इसमें बापा के शौर्य, मेवाड़ व आबू की भौगोलिक स्थिति का जहां बोध होता है वहां उस समय की धार्मिक परम्पराओं की जानकारी भी मिलती है। अचलेश्वर शिवालय की प्रशस्ति (वि. सं. 1377) भी महत्वपूर्ण है, जिसमें चन्द्रावती, अर्बुद व शाकम्भरी के शासकों पर प्रकाश डाला गया है।

7– पार्श्वनाथ मन्दिर की प्रशस्ति जैसलमेर (वि. सं. 1473)

यह प्रशस्ति जैसलमेर के पार्श्वनाथ मन्दिर में लगी हुई है। इसमें उकेश वंशीय रांका श्रेष्ठि परिवार के व्यक्तियों द्वारा किये गये धार्मिक कार्यों का वृत्तांत है। उस समय के जैसलमेर के शासक लक्ष्मणराज का नाम भी इसमें दिया है। इस प्रशस्ति से जहां संयुक्त परिवार प्रणाली व धार्मिक आस्थाओं की जानकारी मिलती है वहां जैसलमेर के शासक लक्ष्मणराज के काल निर्धारण में भी इसका उपयोग किया जा सकता है। जैसलमेर में इस प्रकार की प्रशस्तियां बहुत कम मिलती हैं। इस दृष्टि से भी इस प्रशस्ति का अपना महत्व है।

8– समाधीश्वर मन्दिर की प्रशस्ति (एकनाथ भट्ट / वि॰सं. 1485)

यह प्रशस्ति चित्तौड़ दुर्ग के समाधीश्वर मन्दिर में लगी हुई है। इसमें गुहिलवंशीय शासकों की उपलब्धियों का विवरण दिया है। हमीर की प्रशंसा करते हुए उसकी तुलना अच्युत, ब्रह्मा, शंकर व कर्ण से की है। लाखा के शौर्यपूर्ण कार्यों का उल्लेख है। मोकल की विजयों का अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण है। मोकल द्वारा राजप्रासादों का निर्माण और तुलादान आदि धार्मिक कार्यों का वर्णन भी है। लाखा द्वारा झोटिग भट्ट को प्रश्रय देने का उल्लेख हुआ है। प्रशस्ति में राजनीतिक व सामाजिक पहलुओं पर अच्छा प्रकाश पड़ा है।

9– राणकपुर की प्रशस्ति (वि. सं. 1496)

यह प्रशस्ति राणकपुर के चौमुख मन्दिर में लगी हुई है। इसमें प्रारम्भ से कुम्भा तक के मेवाड़ शासकों के शौर्यपूर्ण कार्यों का वर्णन है। कुम्भा की बूंदी, गागरोण, सारंगपुर, नागोर, चाटसू, अजमेर, मांडलगढ़ आदि विजयों का उल्लेख हुआ है। परन्तु प्रशस्तिकार ने मेवाड़ की वंशावली में अनेकानेक भूलें की हैं।

इसमें श्रेष्ठि घराने की वंश परम्परा का भी पता चलता है। सब मिलाकर उस समय की धार्मिक व सामाजिक स्थिति की जानकारी हेतु यह प्रशस्ति बड़ी महत्वपूर्ण है।

10– कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्तियां (महेश भट्ट/वि. सं. 1517)

महाराणा कुम्भा की आज्ञा के अनुसार ये प्रशस्तियां कीर्तिस्तम्भ की शिलाओं पर उत्कीर्ण की गई थी। इनमें मेवाड़ के शासकों की वंशावली महाराणा कुम्भा तक देते हुए उनकी उपलब्धियों पर प्रकाश डाला गया है। हमीर की चेलावाट विजय का उल्लेख है। कुम्भा के लिये प्रयुक्त विरूद्, दानगुरू, शैलागुरू का उल्लेख है। इसमें जहां कुम्भा द्वारा रचित चण्डिशतक, संगीतराज आदि कृतियों का उल्लेख हुआ है वहां कुम्भा के युद्ध अभियानों की भी जानकारी दी है। उस समय के राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक पहलुओं के अध्ययक हेतु प्रशस्ति का उपयोग किया जा सकता है।

11– कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति (वि. सं. 1517)

यह प्रशस्ति पांच शिलाओं पर उत्कीर्ण की गई थी, जिसमें से अब पहली, तीसरी और चौथी शिलाएं उपलब्ध हैं। पहली और तीसरी शिला उदयपुर संग्रहालय में संगृहीत है। इसमें तत्कालीन मन्दिरों, बाजारों, राजप्रासादों, तीर्थ स्थलों, नदियों, पहाड़ों, बागों, जलाशयों का वर्णन करते हुए जनजीवन पर भी प्रकाश डाला गया है। सामंतसिंह का जालौर के शासक कीर्तिपाल से संघर्ष व चित्तौड़ के प्रथम साके का वर्णन दिया है जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। मोकल और क्षेत्रसिंह की विजयों का विवरण है। कुम्भा द्वारा कुम्भलगढ़ और अनेक मन्दिर व जलाशय बनाये जाने का उल्लेख है। प्रशस्तिकार के बारे में कोई सुनिश्चित जानकारी नहीं मिलती तथापि डॉ. ओझा की यह मान्यता है कि इस प्रशस्ति का रचयिता महेश होना चाहिये। परन्तु डॉ. गोपीनाथ की यह धारणा है कि इसका रचयिता कान्ह व्यास हो सकता है क्योंकि इनके रचनाकाल में वह कुम्भलगढ़ में ही रहता था।

12– रायसिंह (बीकानेर) की प्रशस्ति (जइता/वि. सं. 1650)

बीकानेर दुर्ग द्वार पर लगी हुई यह प्रशस्ति बीकानेर दुर्ग से सम्बन्ध रखती है। दुर्ग के भवनों को समय-समय पर कब किसने बनाया इसका विवरण दिया है। बीकानेर के शासकों की वंशावली रायसिंह तक देकर उनकी मुख्य उपलब्धियों पर प्रकाश डाला गया है। रायसिंह की गुजरात, काबुल चढ़ाइयों का विवरण देते हुए उसके शौर्य का बखान किया है। प्रशस्तिकार ने साहित्य, कला व धर्म आदि अनेक विषयों पर रोशनी डालने का प्रयास किया है।

बीकानेर राज्य के इतिहास के अध्ययन हेतु यह प्रशस्ति महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है।[1]

13– राजप्रशस्ति[2] (रणछोड़ भट्ट[3] / वि. सं. 1718)

महाराणा राजसिंह की आज्ञा के अनुसार राजप्रशस्ति की रचना की गई। इसको राजसमुद्र की ताकों पर खुदवाने का आदेश महाराणा जयसिंह ने दिया था। यह संसार का सबसे बड़ा शिलालेख है। इसके प्रथम तीन सर्गों में मेवाड़ के प्राचीन इतिहास का विवरण है। फिर हमीर से महाराणा जगतसिंह तक के शासकों का कुछ विस्तार से वर्णन है। बाद में राजसिंह के जीवन का विवरण विस्तार से दिया है। राजसमुद्र के निर्माण कार्य पर हुए खर्च व उसकी प्रतिष्ठा आदि का इसमें यथातथ्य वृत्तांत दिया है। तत्कालीन मेवाड़ की संस्कृति, वेशभूषा, शिल्पकला, मुद्रा, दान प्रणाली, युद्ध नीति आदि अनेकानेक पहलुओं पर अच्छा प्रकाश पड़ा है। मेवाड़ के इतिहासकार के अध्ययन हेतु यह प्रशस्ति बड़ी उपयोगी है।

काव्य ग्रन्थ

1– नवसाहसाँक चरित्त[4] (पद्मगुप्त परिमल/वि.सं. 1057 लगभग)

इसमें मालवा के परमार राजाओं की वंशावली वाक्पतिराज (प्रथम) से सिन्धुराज तक दी है तथा उनकी मुख्य उपलब्धियों का विवरण भी दिया है। पौराणिक वर्णन प्रणाली और अलंकृत काव्यशैली के बीच ऐतिहासिक तथ्यों की

1– विशेष विवरण के लिये देखें – राजस्थान के इतिहास के स्रोत, डॉ. गोपीनाथ शर्मा.

2– प्रकाशित साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, सम्पादक मोतीलाल मेनारिया.

3– रणछोड़ कठौड़ी कुलोत्पन्न तैलंग ब्राह्मण था। मेवाड़ राज्य से रणछोड़ भट्ट के घराने का बहुत पुराना सम्बन्ध था। उसके पूर्वज लक्ष्मीनाथ (प्रथम) और छीतू भट्ट को महाराणा उदयसिंह ने भूरवाड़ा नामक गांव और तुलादान देकर सम्मानित किया था। रणछोड़ भट्ट के पिता मधुसूदन को महाराणा जगतसिंह (प्रथम) ने महागोदान दिया था। रणछोड़ भट्ट महाराणा राजसिंह का विश्वासपात्र था।

4– प्रकाशित, संस्कृत सीरीज बम्बई.

खोज की जाये तो तत्कालीन इतिहास के अनेक विश्वनीय तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है, जिनकी पुष्टि शिलालेखों और अन्य बहीरंग प्रमाणों से होती है। इसमें सिन्धुराज द्वारा विजीत जिन राजाओं और देशों का उल्लेख हुआ है, उनकी ऐतिहासिकता स्वीकृत हो चुकी है। सिन्धुराज से पूर्ववर्ती समस्त परमार वंशी राजाओं का कालक्रम से वर्णन है, जिसकी पुष्टि भी शिलालेखों से हो चुकी है। इस प्रकार यह काव्य परमारों के इतिहास के लिये उपादेय है।

2– विक्रमाङ्कदेव चरित (बिल्हण)

इसमें चालुक्य वंशी राजा विक्रमादित्य का चरित्त वर्णित है। इसमें उसके पिता की मृत्यु, राजकुमारी चन्द्रलेखा से विवाह, उनके दो भाइयों तथा चोलों की पराजय आदि घटनाओं का कवित्वमय वर्णन किया गया है। प्राचीन भारत के ऐतिहासिक ग्रन्थों से कल्हण की राजतरंगिणी और बाण के हर्षचरित के बाद 'विक्रमाङ्कदेव चरित' ही विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कल्याण के चालुक्य वंशी राजाओं के शिलालेखों से बिल्हण द्वारा वर्णित घटनाओं की पुष्टि होती है। दक्षिण भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का विशद परिचय इसमें उपलब्ध होता है। चोलों और चालुक्यों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा दक्षिण के तत्कालीन राज्यों के विस्तार का भी अच्छा परिचय मिलता है। बिल्हण ने अपने देशाटन का जो रोचक वर्णन किया है, इससे उस समय की भारतीय सामाजिक अवस्था पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

3– राजतरंगिणी[1] (कल्हण, जोनराज, श्रीवर, प्राज्यभट्ट व शुक)

काश्मीर के इतिहास पर विशद प्रकाश डालने वाला यह ग्रन्थ समय–समय पर अलग–अलग लेखकों द्वारा लिखा गया है। इसका प्रथम खण्ड अमात्य-चंपक के पुत्र कल्हण पंडित ने 1148 ई. में लिखा था। इसमें पहले महाभारत की कथा दी है फिर गोमंद से जयसिंह तक का विवरण है। दूसरा खण्ड जोनराज पण्डित द्वारा लिखा गया, जिसमें जयसिंह से कोटाराणी तक का इतिहास है और इसके साथ ही काश्मीर के हिन्दू राज्य की समाप्ति हो जाती है। तीसरा खण्ड श्रीवर पण्डित ने 1477 ई. में लिखा। अगला खण्ड प्राज्यभट्ट ने लिखा पर इसका अंश उपलब्ध नहीं होता। अन्तिम भाग कवि शुक द्वारा तैयार किया गया है जिसमें सम्राट अकबर की आज्ञा से भगवानदास की काश्मीर चढ़ाई करने और आम्बेर नरेश मानसिंह द्वारा काश्मीर के राज-

---

1– एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता से यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। बाद में डॉ. स्टीन ने प्रथम खण्ड छपवाया। तदनन्तर पं. दुर्गाप्रसाद व प्रो. पीटर्सन ने इसे छपवाया।

कुमार याकूबशाह को बन्दी बनाने आदि कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण है। काश्मीर व राजस्थान के सम्बन्धों की जानकारी हेतु यह ग्रन्थ उपयोगी है।

4– पृथ्वीराज विजय[1] (कवि जयानक[2]/वि.सं. 1247)

इसमें चहमान से लगाकर पृथ्वीराज तक की वंशावली और यत्र–तत्र ऐतिहासिक विवरण भी मिलता है। चौहानों के प्राचीन इतिहास व पृथ्वीराज की उपलब्धियों के अध्ययन हेतु यह काव्य बहुत उपयोगी है। शाहबुद्दीन गौरी ने जब पृथ्वीराज पर चढ़ाई की उस समय कवि जयानक इस ग्रन्थ को लेकर अपनी मातृभूमि काश्मीर चला गया था।

5– सुकृत संकीर्तन (अरिसिंह/वि.सं. 1285 लगभग)

इस काव्य में अणहिलवाड़े के संस्थापक राजा वनराज से भूमट (सामन्तसिंह) तक के चावड़ों की वंशावली अंकित है। इसके बाद मूलराज से भीमदेव (द्वितीय) तक के यहां के सोलंकियों का वृत्तांत है। इसके अलावा अर्णोराज से वीरधवल तक धोलका के बघेलों का विवरण भी दिया है। सोलकियों के इतिहास अध्ययन हेतु ग्रन्थ महत्वपूर्ण है।

6– कीर्तिकौमुदी (सोमेश्वर/वि.सं. 1300 लगभग)

इस काव्य में अणहिलवाड़े पाटण के सोलंकियों का इतिहास मूलराज से भीमदेव (द्वितीय) तक वर्णित है। इसके अलावा धोलका के राजा अर्णोराज से वीरधवल तक के बघेला सोलंकियों का परिचय भी इसमें मिलता है। वीरधवल के मंत्री वस्तुपाल का अच्छा चित्रण दिया है।

7– प्रबंधचिंतामणि (जैन आचार्य मेरुतुंग/वि.सं. 1362)

इस गद्य–पद्य कृति में गुजरात के चावड़ों व सोलंकियों का वर्णन है जो ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। यद्यपि इसमें रह गई त्रुटियों का निराकरण मेरुतुंग ने अपने विचार श्रेणी ग्रन्थ में किया है फिर भी आधुनिक शोध के अनुसार कितने ही स्थलों पर नवीन टिप्पण देने की आवश्यकता है।

1– प्रकाशित, वैदिक यन्त्रालय. अजमेर, सं. डॉ. गौरीशंकर हीराचंद ओझा।

2– यह पृथ्वीराज चौहान का दरबारी कवि था।

8- कुमारपाल चरित (जयसिंह सूरि/वि.सं. 1422)

इस ग्रन्थ में मूलराज से कुमारपाल तक के गुजरात के सोलंकियों का इतिहास है ।

9- कुमारपाल चरित (मंडनोपाध्याय/वि.सं. 1435)

गद्य में लिखे गये इस ग्रन्थ में 36 राजवंशों की नामावली दी है । इसके बाद वनराज से सामन्तसिंह तक के गुजरात के चावड़ों की वंशावली तथा मूलराज से कुमारपाल तक के गुजरात के सोलंकियों का वर्णन है । गुजरात के सोलंकियों के इतिहास अध्ययन हेतु यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है ।[1]

10- कुमारपाल चरित (चरित्रसुन्दर गणि)

14वीं शताब्दी के लगभग रचे इस काव्य में मूलराज से कुमारपाल तक का सोलंकियों का वृत्तांत दिया है ।

11- हम्मीर महाकाव्य (नयचन्द्र सूरि/वि.सं. 1447 लगभग)

प्रारम्भ में चौहानों के मूल पुरूष चहमान से पृथ्वीराज तक की वंशावली देकर पृथ्वीराज के बारे में कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं की जानकारी दी है । पृथ्वीराज के भाई हरिराज को विलासी बताते हुए उसका शकेश्वर के आक्रमण के समय स्त्रियों सहित अग्नि में जल कर मारे जाने का उल्लेख है । इसके बाद पृथ्वीराज के पुत्र गोविन्द (रणथम्भोर) से लेकर हम्मीर के पिता जैतसिंह तक के रणथम्भोर के शासकों की मुख्य उपलब्धियों का चित्रण दिया है । तदनन्तर हम्मीर की दिग्विजय का वर्णन है। अलाउद्दीन की रणथम्भोर पर की गई चढ़ाइयों का विशद विवेचन दिया है । चौथे आक्रमण के समय हम्मीर ने वीरतापूर्वक युद्ध किया और अन्त में घायल होकर उसने स्वयं अपने हाथों अपना प्राणांत किया । काव्य के अनुसार दुर्ग का पतन श्रावण कृष्णा 6, रविवार संवत् 1358 को हुआ । फारसी ग्रन्थों में अलाउद्दीन के पहले व दूसरे आक्रमण का उल्लेख तो नहीं मिलता परन्तु तीसरे व चौथे आक्रमणों की पुष्टि हो जाती है । नसरतखां की मृत्यु व अलाउद्दीन की अस्थायी पराजय का उल्लेख फरिश्ता व बर्नी ने भी किया है । राजनीतिक घटनाओं के साथ

1- प्रकाशित, संस्कृत सीरीज, बम्बई ।

कवि हेमचन्द्र ने वि.सं 1217 के लगभग प्राकृत भाषा में कुमारपाल चरित की रचना की । उसमें भी गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल का वृत्तांत मिलता है । यह ग्रन्थ प्राकृत व्याकरण के अध्ययन हेतु उपयोगी है ।

जनसाधारण की स्थिति का परिचय भी इसमें मिलता है। विशेष रूप से रण-थम्भोर के चौहानों के इतिहास अध्ययन हेतु यह काव्य उपयोगी है।

12– वस्तुपाल चरित (जिनहर्ष गणि/वि.सं. 1497)

इसमें मूलराज से वीरधवल तक के सोलंकियों की उपलब्धियों का अच्छा चित्रण हुआ है। मुख्यरूप से मंत्री वस्तुपाल के जीवन चरित्र पर प्रकाश डाला गया है इसलिये इस ग्रन्थ का नाम वस्तुपाल चरित रखा गया है। इसमें जहां सोलंकियों के इतिहास की जानकारी मिलती है वहां मंत्री के अधिकार और तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का विशद परिचय भी उपलब्ध होता है।

13– मंडलीक काव्य (गंगाधर कवि)

वि. सं. की 16वीं शताब्दी के प्रारम्भ में रचे गये इस ग्रन्थ में गिरनार (काठियावाड़) के यादव नृप मंडलीक का जीवन वृत्तांत दिया है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से उपयोगी है।

14– राजविनोद महाकाव्यम्[1] (उदयराज[2])

इसमें अहमदाबाद के सुल्तान महमूद बेगड़ा के जीवन चरित्र का वर्णन है। इसमें वर्णित घटनायें दोहाद के शिलालेख (1488 ई.) से मिलती-जुलती हैं। इसमें पहले महमूद के पूर्वजों के पराक्रम का वर्णन किया है, बाद में महमूद के पावागढ़ आदि युद्ध अभियानों का वृत्तांत है। राजस्थान की तात्कालिक स्थिति आदि के विषय में अनेक सूचनाएं मिलती हैं, जो ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण हैं।

15– अमर भूषण

महाराणा अमरसिंह प्रथम (वि.सं. 1653–1676) के समय लिखे गये इस ग्रन्थ में ज्योतिष विद्या पर अच्छा प्रकाश पड़ा है। उक्त महाराणा की रुचि इस विद्या में विशेष रूप से थी। उन्हीं की आज्ञा से यह ग्रन्थ लिखा गया प्रतीत होता है। ज्योतिष विद्या पर शोध करने वालों के लिये यह कृति उपयोगी है।

1– प्रकाशित, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, सम्पादक गोपालनारायण बहुरा।

2– यह महमूद बेगड़ा का दरबारी कवि था। उसने यह ग्रन्थ महमूद के शासनकाल (1458 ई. से 1511 ई.) में कभी लिखा था।

16– संग्रामसिंह महोदयम् (पण्डित बिहारी)

यह ग्रन्थ महाराणा संग्रामसिंह के राज्यकाल (वि. सं. 1767–1790) में लिखा गया। इसमें महाराणा के यशोगान के साथ उनकी धार्मिक नीति तथा साहित्य व कला के प्रति उनके अनुराग आदि की जानकारी मिलती है। सचिव बिहारीदास, अधिकारी कृपाराम तथा राजपुरोहित सुखाराम के व्यक्तित्व व उदयपुर नगर और पिछोला जलाशय का उत्तम विवरण है। इसकी प्रति प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर शाखा में विद्यमान है।

17– जगतसिंह काव्य (कवि रघुनाथ)

इसमें मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह प्रथम (वि. सं. 1684–1709) के विद्याप्रेम, उनकी न्याय प्रणाली, राजस्व व्यवस्था, शासन प्रबन्ध और धार्मिक प्रवृत्तियों के अलावा उनके जीवन की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं का विवरण मिलता है। समकालीन लेखक द्वारा लिखे जाने से इसका ऐतिहासिक महत्व है। इसकी प्रति प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर शाखा में विद्यमान है।

18– जगतसिंहाष्टक[1] (कवि मोहन भट्ट/वि.सं. 1684)

इस लघु कृति में विशेषरूपेण जगतसिंह (प्रथम) की धार्मिक प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है। उसके द्वारा जनहित के लिए धर्मशालाएं स्थापित करने, दान देने आदि बातों का वर्णन है। समसामयिक रचना होने के कारण महाराणा जगतसिंह कालीन मेवाड़ के इतिहास के अध्ययन हेतु उपयोगी है।

19– अमरसार (पण्डित जीवाधर/वि.सं. 1685)

इसमें महाराणा प्रताप, अमरसिंह (प्रथम) और कर्णसिंह के जीवन पहलुओं का प्रामाणिक विवरण मिलता है। कवि ने विशेष रूप से महाराणा अमरसिंह (प्रथम) की उपलब्धियों को उजागर करने का प्रयास किया है, इसलिये इसका नाम अमरसार रखा गया है। उक्त महाराणा की दिनचर्या को दर्शाते हुए उसके विलासमय जीवन की ओर भी संकेत किया है। सैन्य प्रबन्ध व शासन व्यवस्था की जानकारी जहां इसमें मिलती है वहां उस समय की आर्थिक व सामाजिक स्थिति का भी बोध होता है। सब मिलाकर मेवाड़ के इतिहास अध्ययन हेतु कृति उपयोगी है।

1– प्रकाशित, शोध पत्रिका, वर्ष 14, अंक 1 जनवरी, 1963.

20– हरि भूषण महाकाव्य[1] (गंगाराम भट्ट/वि.सं. 1710–1712)

इसमें देवलिया (प्रतापगढ़) राज्य के महारावत हरिसिंह तक के राजाओं की मुख्य उपलब्धियों, युद्ध अभियानों का वर्णन है। अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण के बावजूद भी यह कृति महत्वपूर्ण है। महारावत हरिसिंह के मंत्री व कोषाध्यक्ष आदि अधिकारियों का उल्लेख है। मेवाड़ व प्रतापगढ़ राज्य के इतिहास अध्ययन हेतु ग्रन्थ उपयोगी है। ओझाजी ने इस कृति का रचनाकाल 1653-1655 ई. के बीच होना अनुमानित किया है।

21– राज रत्नाकर (पण्डित सदशिव)

इसमें प्रारम्भ से लेकर महाराणा राजसिंह प्रथम तक का संक्षिप्त इतिहास दिया है। मेवाड़ मुगल संघर्ष का इसमें अच्छा विवरण मिलता है। राजप्रशस्ति और अमरकाव्यम् में हल्दीघाटी के युद्ध में शक्तिसिंह द्वारा अपने भाई प्रताप की रक्षा करने का उल्लेख हुआ है, परन्तु इस काव्य में ऐसा कहीं उल्लेख नहीं है। इसकी हस्तलिखित प्रति प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर शाखा में सुरक्षित है।

22– राजसिंह प्रमोर्वर्णनम् (लालभट्ट[2]/वि.सं. 1737 के लगभग)

महाराणा राजसिंह के समय रची गई इस कृति में उक्त महाराणा के वैभव का वर्णन है। उस समय लिखी गई कृतियों में वर्णित घटनाओं के अलावा कुछ विशेष जानकारियां मिलती हैं। इसकी हस्तलिखित प्रति साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर के संग्रहालय में सुरक्षित है।

23– राजसिंहाष्टक (मुकुन्द श्रोत्रिय)

महाराणा राजसिंह के समय लिखी गई इस लघु कृति में उक्त महाराणा के वैभव का वर्णन है।[3]

24– अमरकाव्यम्[4] (रणछोड़ भट्ट)

रणछोड़ भट्ट ने राजप्रशस्ति के बाद इसकी रचना की थी। इसमें राजप्रशस्ति के अनुसार मेवाड़ राजवंश की वंशावली दी है। बाद में महाराणा

1– प्रतापगढ़ महारावत रामसिंह की आज्ञानुसार रघुनाथ यन्त्रालय (प्रतापगढ़) से प्रकाशित, सम्पादक पं. जगन्नाथ शास्त्री।

2– यह महाराणा राजसिंह के समकालीन नागर जाति के ब्राह्मण थे।

3– प्रकाशित, शोध पत्रिका, वर्ष 14, अंक 1, जनवरी 1963.

4– प्रकाशित, साहित्य संस्थान. उदयपुर, प्र. सं. डॉ. देव कोठारी, सं. डॉ. राजेन्द्र प्रकाश भटनागर व डॉ. शक्तिकुमार शर्मा।

सांगा, उदयसिंह, प्रतापसिंह, अमरसिंह, कर्णसिंह, जगतसिंह के राज्यकाल का विस्तार से विवरण दिया है। राजसिंह के राज्याभिषेक का उल्लेख है। राणाओं के मुगलों के साथ हुए युद्ध, संधि और अन्य पहलुओं पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। अलाउद्दीन खिलजी व अकबर की चित्तौड़ चढ़ाइयों का वर्णन भी इसमें उपलब्ध होता है। इस प्रकार सामाजिक मान्यताओं, युद्धों के तौर-तरीकों, जौहर प्रणाली, तीर्थ यात्राओं, प्रचलित तुलादानों, यज्ञों आदि अनुष्ठानों का इसमें अच्छा चित्रण हुआ है।

25- अमरसिंहाभिषेक काव्य[1] (पण्डित बैकुण्ठ व्यास/वि.सं. 1800 लगभग)

इसकी रचना महाराणा अमरसिंह द्वितीय (वि. सं. 1714-1808) के राज्याभिषेक के समय में की गई। इसमें उक्त महाराणा के राज्य वैभव का अच्छा चित्रण हुआ है। मेवाड़ की राज्याभिषेक परम्परा के अलावा तत्कालीन राजनैतिक गतिविधियों की जानकारी भी मिलती है।

26- अमरनृप रत्न काव्य (पण्डित मंगल, संस्कृत/वि. सं. 1800 लगभग)

साहित्य संस्थान, उदयपुर में संगृहीत इस लघु काव्य की रचना महाराणा अमरसिंह द्वितीय (वि.सं. 1755-1808) के समय की गई। उक्त महाराणा के शासनकाल की प्रमुख घटनाओं का वर्णन इसमें हुआ है। उस समय के सामाजिक पहलुओं पर भी प्रकाश डाला गया है।

27- अजितोदय महाकाव्यम्[2] (जगजीवन भट्ट/वि. सं. 1764 लगभग)

32 सर्ग के इस बृहत् ग्रन्थ में जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह के सम्पूर्ण जीवन का विस्तृत एवं प्रामाणिक विवरण मिलता है। यद्यपि कहीं-कहीं अनावश्यक प्रशंसा व पक्षपातपूर्ण वर्णन दिया है, फिर भी तत्कालीन ग्रन्थ होने के कारण इसका विशेष महत्व है। तत्कालीन समाज व्यवस्था, नागरिक एवं सैनिक जीवन, रीति-रिवाज, धार्मिक आस्थाओं, राजनीतिक परिस्थितियों और केन्द्रीय सत्ता से उनके संघर्षों का विवेचन दिया है जो बड़ा उपयोगी है। मारवाड़ के उमरावों की महत्वपूर्ण भूमिका पर भी विशद प्रकाश डाला गया है। राजकीय पुरालेखागार, बीकानेर बस्ता नं. 43 में इस ग्रन्थ का राजस्थानी भाषा में अनुवाद प्राप्य है।

1- प्रकाशित, मरूभारती, वर्ष 1, अंक 3, सं. डॉ. दशरथ शर्मा.

2- प्रकाशित, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर, सम्पादक पं. नित्यानन्द दाधीच.

28– ईश्वर विलास महाकाव्यम्[1] (कृष्ण भट्ट)

इसमें जयपुर राज्य के राजवंश, महाराजा सवाई जयसिंह के पराक्रम और ईश्वरसिंह की उपलब्धियों का विस्तृत विवरण है। जयसिंह का मुगलों के साथ सम्बन्ध, जयपुर की स्थापना, जयगढ़ व जयसागर बनाने, पड़ोसी राज्यों से सम्बन्ध, त्यौहारों का वर्णन और औरंगजेब की मृत्यु के बाद उत्पन्न हुई परिस्थितियों का वर्णन किया है। जयसिंह की निधन तिथि 1800 आश्विन शुक्ला 4, दी है। इसके बाद ईश्वरसिंह का जीवन परिचय देते हुए उनका मराठों के साथ युद्ध का वृत्तांत दिया है। राजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक पहलुओं को समझने में यह ग्रन्थ उपयोगी है।

29– जयवंश महाकाव्यम्[2] (सीताराम भट्ट)

इसमें कछवाहावंशीय आमेर–जयपुर के शासकों की वंशावली के साथ ऐतिहासिक घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण दिया है। कई ऐतिहासिक पुरूषों के बारे में जानकारी दी है जो महत्वपूर्ण है। कछवाह शासकों और मुगलों के बीच सम्बन्धों पर भी इसमें प्रकाश पड़ा है। जयपुर राज्य के इतिहास अध्ययन हेतु यह ग्रन्थ उपयोगी है।

30– कछवंश महाकाव्यम् (कृष्णराम भट्ट)

इसमें मूलत: कछवाह वंश के शासकों की गद्दीनशीनी, उनकी रानियों, कुंवर, कुंवरियों की जानकारी देते हुए प्रत्येक शासक की मुख्य उपलब्धियों का विवरण दिया है। वर्णित घटनाओं से ऐसा लगता है कि लेखक ने ख्यातों, बातों, वंशावलियों, ऐतिहासिक काव्यों का अध्ययन कर इस ग्रन्थ की रचना की है। यह ग्रन्थ अधिक प्राचीन नहीं है और 19वीं शताब्दी में ही लिखा गया है, फिर भी विशद सामग्री समेटे हुए होने के कारण उपयोगी है।

31– वीरतरंग रंग (पं. यमुनादत्त शास्त्री/वि. सं. 1981)

इस ग्रन्थ में शाहपुरा के संस्थापक राजा सुजानसिंह से लेकर राजा नाहरसिंह तक का विवरण दिया है। शाहपुरा के शासकों के बारे में कहीं–कहीं पर विशेष सूचनाएं भी मिलती हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

1– प्रकाशित, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान। सम्पादक मथुरानाथ शास्त्री.

2– प्रकाशित, राजस्थान विश्वविद्यालय, 1952 ई.

राजस्थानी गद्य कृतियां

राजस्थानी में ऐतिहासिक गद्य की कृतियाँ प्रभूत मात्रा में पाई जाती हैं। ख्यात, बात, विगत, वंशावली, हाल, हकीकत, याददास्त आदि गद्य कृतियों से हमें उपयोगी ऐतिहासिक जानकारी उपलब्ध होती है। यों तो ऐसी कृतियां बहुलता से मिलती हैं और सबका यहां उल्लेख करना सम्भव नहीं है, अतः कुछ महत्वपूर्ण कृतियों का विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

ख्यात

ख्यात शब्द संस्कृत के 'ख्याति' शब्द से बना है। ख्याति प्राप्त, प्रख्यात एवं लोकविश्रुत पुरुषों की जीवन घटनाओं के संग्रह को ख्यात की संज्ञा दी गई है। राजस्थान के राज्यों पर लिखी गई ख्यातों में वहां के शासकों की जीवन घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण मिलता है। इसलिये राजस्थान के इतिहास के अध्ययन हेतु ख्यात ग्रन्थों का सर्वाधिक महत्व रहा है। कुछ महत्वपूर्ण ख्यातों के बारे में यहां जानकारी प्रस्तुत की जा रही है।

1– मुहणोत नैणसी री ख्यात[1]

इसमें राजस्थान के सभी राज्यों के अलावा सिंध, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र इत्यादि राज्यों का भी विवरण मिलता है। राठौड़, सिसोदिया, चौहान, भाटी, कछवाह, झाला, सोलंकी, दाहिया, पंवार आदि क्षत्रियों की विविध शाखाओं का विवेचन इसमें दिया है। विभिन्न राज्यों के शासकों के अतिरिक्त यहां के स्थानीय योद्धाओं की मुख्य उपलब्धियों पर भी प्रकाश डाला गया है। इसके अलावा मन्दिरों, मठों, किलों का निर्माण कार्य, तीर्थस्थलों का भी विवरण दिया है। इतना ही नहीं, यहां के रीति–रिवाज, पर्व, त्यौहार, सामाजिक व धार्मिक मान्यताओं आदि सांस्कृतिक पहलुओं का चित्रण प्रस्तुत किया है। कुछएक राजवंशों का इतिहास क्रमबद्ध लिखने का प्रयास किया है परन्तु अधिकांश सामग्री बातों के रूप में ही संकलित की गई है जिसमें उस समय

1– प्रकाशित, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सम्पादक बदरी प्रसाद साकरिया.

की लोक धारणाओं का हमें आभास होता है। इस प्रकार राजपूताने के विभिन्न नरेशों के जन्म, राज्यारोहण तथा मृत्यु समय के अतिरिक्त उनके जीवन सम्बन्धी प्रमुख घटनाओं के संवत् और तिथियों का ब्यौरा जहां मिलता है वहां योद्धाओं के उदात्त वीरोचित कार्यों के साथ उन्हें जागीर व पट्टे मिलने के संवत व तिथियां भी इस ख्यात में सुलभ होती हैं।

नैणसी को जिस रूप में जो ऐतिहासिक सामग्री मिली वह उसने ख्यात में में संगृहीत कर ली। इसकी जांच-पड़ताल कर उसमें काट-छांट कर शेष रहे ऐतिहासिक तथ्यों को सुव्यवस्थित करने का अवसर नैणसी को नहीं मिला था। यदि ऐसा सम्भव होता तो नैणसी की ख्यात का रूप कुछ और ही होता।

यद्यपि नैणसी की ख्यात की रचना ईसा की 17वीं सदी के उत्तरार्द्ध के प्रारम्भिक युग में हुई परन्तु यह ख्यात 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में प्रकाश में आई। कर्नल जेम्स टॉड को यह ख्यात सुलभ नहीं हुई। नहीं तो उसके राजस्थान के इतिहास में इतनी भूलें नहीं रहती। मुंशी देवीप्रसाद, गौरीशंकर, हीराचंद ओझा आदि विद्वानों ने इस ख्यात का इतिहास लेखन में भरपूर उपयोग किया।

इस ख्यात में दी गई प्राचीन घटनाओं की तिथियां अशुद्ध हैं क्योंकि वे प्रायः बहीभाटों और बड़वों की वंशावलियों तथा सुनी-सुनाई बातों पर आधारित हैं फिर भी जहां प्राचीन घटनाओं के बारे में शिलालेखीय अथवा कोई प्रामाणिक सामग्री सुलभ नहीं होती वहां इतिहासकार इस ख्यात के सन्दर्भ स्वीकार कर संतोष करते हैं। मुगलकाल की घटनाएं, जिनका सम्बन्ध यहां के इतिहास से रहा, उनके संवत काफी सही जान पड़ते हैं। अपवाद स्वरूप ही कहीं-कहीं त्रुटियां रह गई हैं।

2– मुरारीदान री ख्यात (उदेभांण चांपावत री ख्यात)

यह ख्यात कविराज मुरारीदान जोधपुर के संग्रह में से प्राप्त हुई इसलिये 'मुरारीदान री ख्यात' के नाम से सुज्ञात है। महाराजा जसवन्तसिंह (प्रथम) जोधपुर के समय उदैभांण चांपावत ने इसका संकलन किया था। इस ख्यात की मूल प्रति मारवाड़-मुगल संघर्ष के समय जोधपुर शहर के परकोटे की ताक में बन्द कर दी गई थी जो 19वीं शताब्दी के अन्त में उस परकोटे के तोड़ने पर सुलभ हुई। इसकी प्रति श्री नटनागर शोध संस्थान में संगृहीत है तथा राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में इसका हिन्दी रूपान्तर उपलब्ध है। इसमें मारवाड़ के राठौड़ शासकों का प्रारम्भ से महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम तक क्रमबद्ध इतिहास लिपिबद्ध है। राजनीतिक घटनाओं के अलावा राजाओं के

कुंवर, कुंवरियों, रानियों का ब्यौरा भी दिया है। जोधपुर के संस्थापक राव जोधा तक की घटनाएं तो दूसरी ख्यातों से मिलती जुलती ही हैं परन्तु बाद के शासकों के बारे में काफी नया प्रकाश पड़ा है। राठौड़ों की खांपों यथा मेड़तिया, महेचा, जोधा आदि का विवरण बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से दिया है। राठौड़ उमराव कब किसकी सेवा में रहे तथा महत्वपूर्ण सेवाओं के बदले उन्हें पट्टे में कौनसी जागीरें मिली आदि महत्वपूर्ण उपलब्धियों का विवरण दिया है। उस समय की जागीरदारी प्रथा को समझने में यह ख्यात विशेष रूप से उपयोगी है।

3- जोधपुर राज्य री ख्यात

मारवाड़ के राठौड़ वंश पर विशद प्रकाश डालने वाले इस ख्यात ग्रन्थ में प्रारम्भ से लेकर महाराजा मानसिंह तक का क्रमबद्ध इतिहास है। इसमें जहां प्रत्येक शासक की मुख्य उपलब्धियों का विवरण दिया है वहां उनकी संतति, वैवाहिक सम्बन्धों का भी अच्छा चित्रण हुआ है। विशेष रूप से युद्ध अभियानों का विस्तार से वर्णन है। युद्ध में मारे जाने वाले योद्धाओं के बारे में सूचनायें दी गई हैं जो महत्वपूर्ण हैं। यहां के महाराजाओं की शाही सेवाओं के बारे में भी समुचित जानकारी दी है। जोधपुर राजघराने का मुगल सम्राटों के साथ हुए वैवाहिक सम्बन्धों का भी उल्लेख हुआ है।

राव जोधा के पूर्व की घटनायें सुनी-सुनाई बातों के आधार पर लिखी गई हैं जिससे राठौड़ों का प्रारम्भिक इतिहास प्रामाणिक नहीं लिखा जा सका परन्तु बाद की घटनाओं का यथातथ्य विवरण दिया है। ओझा आदि इतिहासकारों ने न केवल इस ख्यात का भरपूर उपयोग किया बल्कि इसके संदर्भ भी स्वीकार किये हैं। इस ख्यात की प्रतिलिपि राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी में सुलभ है।

4- मूंदियाड़ री ख्यात

यह ख्यात मूंदियाड़ ग्राम (मारवाड़) से प्राप्त हुई इसलिये इसका नाम मूंदियाड़ री ख्यात रखा गया है। इसमें मारवाड़ के राठौड़ राजाओं का सारगर्भित विवरण दिया है। यत्र-तत्र कुछ ऐसी जानकारियां मिलती हैं जो दूसरे ग्रन्थों में नहीं है। विभिन्न युद्ध अभियानों में प्राणोत्सर्ग करने वाले योद्धाओं के वतन जागीर का उल्लेख करते हुए उनके अधीनस्थ मारे जाने वाले पुरुषों की संख्या भी दी है। इसकी प्रतिलिपि राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में सुरक्षित है।

5- राठौड़ां री ख्यात

यह ख्यात अब तक सुलभ हुई सभी ख्यातों में सबसे बड़ी है जो बृहदाकार बहीनुमा ग्रन्थ में समय-समय पर भिन्न-भिन्न लिपिकर्ताओं द्वारा लिपिबद्ध की

गई है । इसमें आदिनारायण से राव सीहा तक की वंशावली देकर मारवाड़ के राठौड़ राजाओं का विस्तृत विवरण महाराजा मानसिंह तक दिया गया है । इसमें प्रत्येक शासक के समय की राजनीतिक गतिविधियों, सामाजिक मान्यताओं और धार्मिक विचारों आदि पहलुओं पर विस्तृत प्रकाश पड़ा है । राजाओं की रानियों, पड़दायतों व संतति का विवरण भी दिया है । इसमें दी हुई अधिकांश घटनाएं जोधपुर राज्य की ख्यात से मिलती-जुलती हैं परन्तु कुछ विशिष्ट घटनाएँ और इसमें जोड़ दी गई प्रतीत होती हैं जिससे इस ख्यात का महत्व बढ़ गया है । इसका हिन्दी रूपान्तरण कर कुछएक राजाओं की अलग-अलग ख्यातें बना ली हैं जैसे राव मालदेव री ख्यात, महाराज गजसिंहजी री ख्यात, महाराज अभयसिंह जी री ख्यात आदि । ये ख्यातें प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर संग्रहालय में प्राप्य हैं ।

6– दयालदास री ख्यात

इतिहास लिखने के लिये दयालदास को बीकानेर राज्य में संगृहीत की गई सभी प्रकार की ऐतिहासिक सामग्री सुलभ कराई गई । ख्यातों, ऐतिहासिक बातों, फरमानों, पट्टे-परवानों, बंशावलियों एवं ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों के आधार पर दयालदास ने राव सीहा से महाराजा सरदारसिंह के राज्यारोहण तक का इतिहास लिखा जो दयालदास री ख्यात के नाम से प्रसिद्ध है । यह ख्यात 1852 ई. के लगभग सम्पूर्ण हुई । ख्यात गद्य में लिखी गई है परन्तु इसमें घटनाओं के समसामयिक कवियों द्वारा लिखे गये अनेक वीर गीत, कवित्त, निसाणी, वचनिका, दोहे इत्यादि भी दिये हैं जिससे घटनाओं की पुष्टि हो सके । मूलतः राजा का जन्म, राज्यारोहण, उसके जीवन की प्रमुख घटनाएं, उसकी रानियों, कुंवरों, कुंवरियों का विवरण दिया है ।

वैसे राठौड़ों का प्रारम्भिक इतिहास जोधपुर राज्य की ख्यात के आधार पर ही लिखा है फिर भी राजाओं की रानियों, कुंवरों, कुंवरियों के नामों में काफी अन्तर देखने को मिलता है । बीकानेर के इतिहास सम्बन्धी घटनाओं के बारे में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि 16वीं व 17वीं शताब्दी की घटनाओं के बनिस्पत 18वीं शताब्दी की घटनाएँ अधिक प्रामाणिक हैं । पड़ौसी राज्यों से संघर्ष, केन्द्रीय सत्ता से बीकानेर घराने के सम्बन्ध आदि अनेक महत्वपूर्ण पहलुओं का भी विवेचन ख्यात में दिया है । बीकानेर के राठौड़ों की मर्यादा को ठेस नहीं पहुंचे, इसका लेखक ने पूरा ख्याल रखा है इसलिए उसने बीकानेर राजघराने में हुए मुगलों के वैवाहिक सम्बन्धों का भी जिक्र तक नहीं किया ।

कर्नल पाउटेड ने अपने गैजेटियर ऑफ दि बीकानेर स्टेट तैयार करने में इसका भरपूर उपयोग किया । इटली निवासी टैसीटरी ने ऐशियाटिक सोसाइटी

ऑफ बंगाल. कलकत्ता के लिये अनूप संस्कृत पुस्तकालय के ग्रन्थों का विस्तृत सर्वेक्षण किया। उसमें इस ख्यात की महत्ता को उसने स्वीकार किया है। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने बीकानेर राज्य के इतिहास–लेखन में इस ख्यात के ही ज्यादातर सन्दर्भ स्वीकार किये हैं।

7– जैसलमेर री ख्यात[1]

ख्यातकार अजीतसिंह मेहता ने आदिनारायण से श्रीकृष्ण तक वंशावली दी है। फिर प्रद्युम्न से जैसलमेर के रावल बैरीसाल तक के शासकों का संक्षिप्त विवरण दिया है। लाहौर, हिसार, भटनेर, मारोठ, तन्नोट, लुद्रवा और जैसलमेर पर राज्य करने वाले भाटी शासकों की मुख्य उपलब्धियों पर प्रकाश डाला गया है। शासकों की रानियां, उसके कुंवर–कुंवरियों के विवरण के अतिरिक्त राजनैतिक घटनाओं का भी वृत्तांत दिया है। उस समय की लोकमान्यताओं, धारणाओं व सामाजिक आदर्शों का भी अच्छा चित्रण हुआ है। विद्वानों एवं कलाओं को प्रश्रय देने वाले शासकों की ओर भी लेखक ने संकेत दिये हैं जो महत्वपूर्ण हैं। भाटी शासकों के कुंवरों से अंकुरित होने वाली भाटियों की शाखाओं के अतिरिक्त इससे निकलने वाली अन्य जातियों का भी नामोल्लेख हुआ है।

ख्यात में रावल रणजीतसिंह के बाद रावल बैरीसाल तक का वृत्तांत वि. सं. 1921 तक का दिया है। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि यह ख्यात संवत् 1921 के लगभग लिखी गई। अजीतसिंह मेहता ने वि. सं. 1945 में जो इतिहास जी. वाल्टर को भेजा वह इसी की नकल रही होगी, कुछ आवश्यक सन्दर्भ उसने और जोड़ दिये होंगे।

ख्यातकार ने मुख्य रूप से प्रत्येक शासक के राज्याभिषेक और उसकी मृत्यु का समय दिया है। इसके अतिरिक्त कुछ मुख्य घटनाओं के संवत् व तिथियां भी अंकित की है। जहां तक इसमें दी गई घटनाओं के संवत् व तिथियों का प्रश्न है, इसके बारे में कहा जा सकता है कि प्राचीन घटनाओं के संवत् अशुद्ध हैं परन्तु विक्रम की 17वीं शताब्दी और उसके आगे की घटनाओं के संवत् काफी सही जान पड़ते हैं। लिखमीचन्द ने जैसलमेर की तवारीख इस ख्यात के बाद लिखी थी। तवारीख में दी गई विभिन्न घटनाओं के संवत् इस ख्यात से मेल खाते हैं, अतः उसकी मूलभूल आधार सामग्री में जैसलमेर की यह ख्यात भी रही होगी। सब मिलाकर भाटियों के इतिहास अध्ययन हेतु यह ख्यात उपयोगी है।

1– प्रकाशित, राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी, सम्पादक डॉ. नारायणसिंह भाटी.

बात

ऐतिहासिक घटनाओं, इतिहास प्रसिद्ध पात्रों और पौराणिक आख्यानों को लेकर अनेक बातें लिपिबद्ध की गई हैं। प्रारम्भ में बातों का स्वरूप मौखिक ही रहा लेकिन कालान्तर में याद रखने की सुविधा व राजा-महाराजाओं के पठनार्थ बातें लिपिबद्ध की गई। इन बातों के अध्ययन से तत्कालीन समाज की विभिन्न प्रवृत्तियों की जानकारी मिलती है। प्रायः इतिहास के शोधक राजस्थानी बातों में अतिशयोक्तिपूर्ण वृत्तांत देखकर यह धारणा बना लेते हैं कि इन बातों में शोध सम्बन्धी सामग्री नहीं है लेकिन सामाजिक मूल्य व मानव आदर्श के अनेक उदाहरण इन बातों में भरे पड़े हैं। प्राचीन समय में बातों के माध्यम से ही समाज को आवश्यक ज्ञान दिया जाता था। बातों में बाल विवाह प्रथा, बहु विवाह प्रथा, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा और सती प्रथा आदि स्त्री समाज के अनेक पहलुओं का चित्रण मिलता है।

ऐतिहासिक घटनाओं और पुरुषों को लेकर अनेक बातें लिखी गई हैं जो बड़ी महत्वपूर्ण हैं। इस प्रकार की कुछ बातों की सूची यहां दी जा रही है :—

1. राणा प्रताप री बात[1]
2. अचलदास खीची री बात
3. अनंतराय सांखला री बात
4. बिरमदे सोनगरा री बात[2]
5. राव रिणमल री बात
6. राव चंद्रसेन री बात
7. राव जोधा रै बेटां री बात
8. राव मालदेव री बात
9. राजा उदयसिंह री बात
10. महाराजा सूरसिंह रै राज री बात
11. सोजत रै मंडण री बात
12. राव लाखै री बात
13. बीकाजी कूंपावत री बात
14. भाटी सुन्दरदास वीकूपुरी री बात[3]

विगत

विगत शीर्षक की कुछ बड़ी और अनेक छोटी कृतियां प्रकाश में आई हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से उपयोगी हैं। कुछ ऐसी महत्वपूर्ण कृतियों का विवरण प्रस्तुत है :—

1– प्रकाशित, महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ, सम्पादक डॉ. देवीलाल.

2– प्रकाशित, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर.

3– बात संख्या 5 से 12 परम्परा, भाग 11 और बात संख्या 13 व 14 परम्परा भाग 73 में प्रकाशित.

1– मारवाड़ रा परगनां री विगत[1]

जिस प्रकार आईन-इ-अकबरी में मुगल साम्राज्य के विभिन्न सूबों एवं प्रशासनिक पहलुओं का क्रमबद्ध विस्तृत विवरण दिया है उसी प्रकार विगत में मारवाड़ के 7 परगनें जोधपुर, सोजत, जैतारण, फलोदी, मेड़ता, सीवाना और पोकरन का भौगोलिक, आर्थिक, राजनैतिक, प्रशासनिक, सांस्कृतिक और धार्मिक पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक परगने का विवरण बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से नैणसी ने प्रस्तुत किया है। परगना कब किसके अधिकार में रहा, परगने के अन्तर्गत पड़ने वाले गांवों की रेख, भूमि की किस्म, फसलों का हाल, सिंचाई के साधन, आबादी, परगने से गांवों की दूरी, सांसण व डोली के गांवों की सूची आदि अनेकानेक महत्वपूर्ण सूचनायें दी गई हैं। परगनों का जो वृत्तांत दिया है वह ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। मुगल शासकों के राठौड़ों से सम्बन्ध, मनसबदारी प्रथा, विभिन्न युद्ध अभियानों में भाग लेने वाले एवं प्राणोत्सर्ग करने वाले योद्धाओं के नाम आदि विविध प्रकार की सामग्री विगत ग्रन्थों में मिलती है जो दूसरी स्थानीय ख्यातों से कहीं अधिक प्रामाणिक है।

2– जालोर परगना री विगत[2]

जालोर परगना की दो बहियें कान्हराज छोगालाल मेहता के संग्रह से प्राप्त हुई जो अब श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ में सुरक्षित हैं। इसमें जालोर परगना का संक्षिप्त इतिहास दिया है। फिर 1647 ई. से 1677 ई. तक जालोर परगने के गांवों की आय का उल्लेख है। साथ में जालोर से प्रत्येक गांव की दूरी और दिशा, निवास करने वाली जातियों के नाम, सिंचाई के साधन आदि की जानकारी "मारवाड़ रा परगना री विगत" की तरह दी गई है। विभिन्न प्रकार के करों का उल्लेख भी हुआ है। इस प्रकार तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक इतिहास अध्ययन हेतु यह सामग्री उपयोगी है।

3– राठौड़ वंश री विगत[3]

इसमें राठौड़ों की उत्पत्ति, राठौड़ों की 13 शाखाओं और मारवाड़ में राठौड़ आये इसकी विगत दी है। इसके बाद राव सीहा से जोधपुर के

1– प्रकाशित, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, सम्पादक डॉ. नारायणसिंह भाटी.

2– भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद् नई दिल्ली के लिये ड़ॉ. रघुवीरसिंह के निर्देशन में इसका सम्पादन किया जा चुका है।

3– प्रकाशित, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सम्पादक डॉ. फतहसिंह.

महाराजा अभयसिंह तक के राजाओं का संक्षिप्त विवरण है जिसमें मुख्य रूप से उनकी सन्तति व युद्ध अभियानों का उल्लेख हुआ है ।

4– महाराजा श्री जसवंतसिहजी रे परधान कामदार हुवा तारी विगत[1]

इसमें जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह (प्रथम) कालीन विभिन्न प्रशासनिक अधिकारियों के जागीर के गांव, दैनिक भत्ता और उनको दी गई सुविधाओं का उल्लेख है। कब किस अधिकारी की कहां नियुक्ति हुई और किसको कब पदच्युत किया गया इसका उल्लेख संवत् व तिथि अंकित करके किया है।

5– बीकानेर रे ठिकाणां री पीढ़ियां ने पट्टा री विगत[2]

इसमें बीकानेर के उमरावों की वंशावलियां देकर उनके पट्टे के गांवों का उल्लेख हुआ है। सामग्री वहां की जागीर प्रथा को समझने में सहायक सिद्ध होगी।

6– महाराजा अनोपसिंह रै मनसब नै तलब री विगत[3]

इसमें बीकानेर के महाराजा अनोपसिंह के मनसब और उनकी शाही सेवाओं का विवरण है।

7– जैसलमेर रावल अमरसिंहजी रा मरण पर टीकौ मेलियो तिण री विगत[4]

जैसलमेर रावल अमरसिंह की मृत्यु के बाद इसके उत्तराधिकारी को बादशाह की ओर से भेजे गये टीके का उल्लेख है।

कमठा री विगत, नीवांणा री विगत, डावी ने जीवणी मिसलां री विगत, जोधपुर चाकरां री विगत, हिन्दू उमरावां री विगत आदि इस प्रकार की कृतियाँ ऐतिहासिक दृष्टि से उपयोगी हैं।

1– राजस्थानी ग्रन्थों का विस्तृत सर्वेक्षण भाग 3 (टंकित), सम्पादक डॉ. नारायणसिंह भाटी

2– डॉ. टैसीटरी का राजस्थानी ग्रन्थ सर्वेक्षण, परम्परा भाग 28–29, पृ. 77.

3– वही पृष्ठ 39.

4– वही पृष्ठ 165.

वंशावली

वंशावली लिखने का कार्य बहीभाट किया करते थे। इनमें एक के बाद एक गद्दी पर आसीन होने वाले शासकों का वंश क्रम लिखा जाता था। उनके गद्दीनसीनी व मृत्यु समय के अलावा कहीं–कहीं पर रानियों व संतति का उल्लेख भी कर दिया जाता था। कुछ ऐसी वंशावलियाँ भी मिली हैं जिनमें उनकी उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। ठिकाने के ठाकुरों की भी ऐसी वंशावलियां मिलती हैं। किसी वंश अथवा स्थान विशेष के इतिहास लेखन के लिये सर्वप्रथम वहां के वंशक्रम की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है। इस दृष्टि से इस प्रकार की वंशावलियाँ बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है। पुराने शासकों की वंशावलियां तो सही नहीं मिलती परन्तु 16वीं शताब्दी के बाद के राजाओं की वंशावलियां शुद्ध रूप से लिखी मिल जाती हैं। इनमें अपवाद स्वरूप कहीं–कहीं पर त्रुटियां रह गई हैं।

1– राठौड़ां री वंशावली

इसमें राव सीहा से जोधपुर के शासक महाराजा अभयसिंह तक वंशावलियां दी है और राय सीहा से महाराजा विजयसिंह तक के शासकों की संतति का वर्णन दिया है।

2– जागीरदारां री वंशावलियां

इसमें मारवाड़ के प्रमुख जागीरदारों के वंशक्रम और उनके पट्टे के गांव का उल्लेख है। क्षेत्रीय इतिहास के अध्ययन हेतु सामग्री महत्वपूर्ण है। यह ग्रन्थ राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी में सुरक्षित है।[1]

3– जागीरदारां री पीढ़ियां[2]

इसमें मांडणोत, भादावत, बालावत, ऊदावत, मेड़तिया, चांपावत, करणोत, रूपावत, पुनावत, भीयोत, देवराजोत, गोगादे, महेचा, मंडला, पातावत, कूंपावत, जैंतावत और जोधा राठौड़ों की वंशावलियाँ व उनके पट्टे के गांवों की सूची दी है जो महत्वपूर्ण है।

हाल

"विगत" की तरह किसी स्थान विशेष अथवा किसी घटना विशेष का हवाला दर्ज करने वाली कृतियों का नाम "हाल" शब्द से जुड़ा मिलता है। जैसे परगने जालोर

1– राजस्थानी ऐतिहासिक ग्रन्थों का विस्तृत सर्वेक्षण, भाग 1 (टंकित).

2– देखें मारवाड़ रा परगना री विगत, भाग 3, परिशिष्ट.

रो हाल, परगने भीनमाल रो हाल, परगने नागोर रो हाल, परगने मारोठ रो हाल, परगने सीवाणे रो हाल[1] आदि । इन परगनों के बारे में जो विवरण मिलता है वह अनेक तथ्यों को प्रमाणित करने में उपयोगी सिद्ध होगा ।

हकीकत

हकीकत का अर्थ वास्तविकता से है । इस प्रकार की लघु कृतियों का उद्देश्य किसी घटना, स्थान विशेष अथवा राजवंश के बारे में सही जानकारी का बोध कराना है । कुछ ऐसी कृतियों का विवरण प्रस्तुत है :—

1– मनसब री हकीकत[2]

इसमें नागोर परगने का ऐतिहासिक व भौगोलिक विवरण 1937 की जनगणना के आधार पर प्रस्तुत किया गया है ।

2– बीकानेर री हकीकत धणियां री[3]

इसमें बीकानेर के राव बीका से अनूपसिंह तक का संक्षिप्त विवरण दिया है । इसमें मुख्य रूप से उनकी उपलब्धियों का वर्णन है । यह भी लिखा है कि राव बीका जोधपुर छूटने पर पहले चूंडासर ग्राम आया । उसके साथ आने वाले कांधल व उदावत आदि राठौड़ों की वंशावलियां भी इसमें दी है । सब मिलाकर बीकानेर राज्य के इतिहास के लिए यह सामग्री उपयोगी है ।

3– हाड़ा री हकीकत[4]

चौहानों की हाड़ा शाखा का प्रादुर्भाव कैसे हुआ, इसके बारे में लिखा है कि चौहान देवा बागावत ने एक पीर की हाड़ी बकरी को मार दिया । इस पर पीर की इच्छानुसार उसे उस बकरी की हड्डियों की माला पहननी पड़ी और तब से उसके वंशज हाड़ा कहलाये । देवा का मूल स्थान मेवाड़ का भैंसरोड़ बता कर उसके वीरतापूर्ण कार्यों का विवरण दिया है ।

1– देखें मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग 2, परिशिष्ट.

2– डॉ. टैसीटरी का राजस्थानी ग्रन्थ सर्वेक्षण, परम्परा, पृष्ठ 166.

3– वही पृष्ठ 24.

4– वही पृष्ठ 62.

याददास्त

स्मृति स्वरूप फुटकर टिप्पण के रूप में लिखी गई बातों व घटनाओं को याददास्त कहा गया है। कुछ इस प्रकार हैं :—

1– दिल्ली रै धणियांरी याद[1], दिल्ली रै पातसाहां री याद[2]

इसमें दिल्ली के हिन्दू सम्राटों व मुगल बादशाहों का विवरण दिया है।

2– रतलाम, सैलाणा, सीतामऊ, जांबूवौ, आबझेरी, किशनगढ़, ईडरयांरी याददास्त[3]

इनमें इन राठौड़ राज्यों की संक्षिप्त जानकारी दी गई है।

3– राव जोधा रै वेढ़ां किया री याद[4]

जाधपुर के संस्थापक राव जोधा के युद्ध अभियानों का उल्लेख है।

4– गढ़, कोट बणियां री याददास्त

राजस्थान के दुर्ग, कोट व कोटड़ियें कब किसने बनाई इसका उल्लेख हुआ है। यह ग्रन्थ पोकरन ठाकुर के निजी संग्रह में उपलब्ध है।

गढ़ जोधपुर नीवांण (जलाशय) छै जिकां की याददास्त, जोधपुर रा ओदा-दारां री याददास्त, श्री हजूर उमरावों ने कुरब इनायत करै सो याददास्त आदि इस प्रकार की कृतियों में कई महत्वपूर्ण सूचनाएं मिलती है।

बही

एक विशेष प्रकार की बनावट के रजिस्टर को बही कहते हैं, जिसमें इतिहास सम्बन्धी कई उपयोगी सामग्री दर्ज की हुई मिलती है। राव व बड़वे अपनी बही में आश्रयदाताओं के नाम और उनकी मुख्य उपलब्धियों का ब्यौरा लिखते थे। इसी प्रकार "राणी मंगा" कुंवरानियों व ठकुरानियों के नाम और उनकी संतति का विवरण अपनी बही में लिखते थे। यह कार्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता था।

1– डॉ. टैसीटोरी का राजस्थानी ग्रन्थ सर्वेक्षण, परम्परा, पृष्ठ 15, 33.

2– वही पृष्ठ 78.

3– वही पृष्ठ 15.

4– देखें, मारवाड़ रा परगना री विगत, भाग 1 व 2, परिशिष्ट.

1– चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा री बही

बड़ोदिया गांव (रामपुरा) के दलीचन्द्र के संग्रह में संगृहीत चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा की जैराक्स प्रति श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ में सुलभ है। इसमें महाराणा शम्भूसिंह तक के मेवाड़ के महाराणाओं का राजनैतिक इतिहास और सीसोदिया जागीरदारों की विस्तृत जानकारी मिलती है। मूलतः जागीरदारों का विवरण उपयोगी है, क्योंकि इस प्रकार की सामग्री अभी तक प्रकाश में नहीं आई है। इसमें राणावत (संग्रामसिंहोत, जगन्नाथसिंहोत, करणसिंहोत, अमरसिंहोत, प्रतापसिंहोत, कचरावत, भोपतोत, पुरावत), उदयसिंहोत व शक्तावत व चूण्डावत जागीरदारों का विस्तृत विवरण दिया है।[1] उमरावों के पट्टे, गांव, सैनिक अभियानों का विवरण, निर्माण कार्य व उनकी संतति का हाल दिया है। सगतरासो के सम्पादन व प्रकाशन के समय शक्तावतों के पाटनामे का अध्ययन किया गया। इसमें प्रायः घटनाओं के संवत् अशुद्ध दिये हैं, युद्ध अभियानों की ठीक से जानकारी नहीं दी गई है और शक्तावतों के कुरब–कायदों का विवरण काफी बढ़ा–चढ़ा कर लिखा है, परन्तु संतति का विवरण कुछ ठीक दिया है। इसका मिलान टोकरा गांव जाकर राव पृथ्वीसिंह की बही से किया तो पता लगा कि पाटनामा के लेखक ने उनकी बही में से नकल करते समय अनेक भूलें की हैं।

2– आसलपुर राव उदयसिंह री बही

आसलपुर के राव उदयसिंह के संग्रह में संगृहीत इस बही में संखवास, राखी, होटलू, रोहीचा आदि मारवाड़ के सांचोरा चौहानों के ठिकानों के ठाकुरों व उनकी संतति का विवरण दिया है, जिससे उनके वंशक्रम पर अच्छा प्रकाश पड़ा है। इसमें अनेक बातें राजस्थान अभिलेखागार, बीकानेर से संगृहीत गांवों की ख्यातों से मेल खाती हैं। चौहानों के वंशक्रम, उनके पट्टे के गांव आदि बातों की जानकारी हेतु सामग्री महत्वपूर्ण है।

3– पाबूदान री बही

कोटड़ा (गुजरात) के पाबूदान के संग्रह में संगृहीत इस बही में साँचोर के सांचोरा चौहान जागीरदारों का विवरण दिया है जो महत्वपूर्ण है। इसमें ऐसे अनेक मृत्यु स्मारक लेखों की जानकारी भी मिलती है जो अब नष्ट हो गये हैं। सांचोरा चौहानों के इतिहास अध्ययन हेतु यह सामग्री उपयोगी है।

1– विस्तृत विवरण के लिये देखें शोध–साधना, वर्ष 3, 1982 ई.

4– लाछ ड़ा राणीमंगा री बही

लाछूड़ा गांव के राणीभंगा की बही में सांचोरा चौहानों की ठकुरानियों व उनकी संतति का विवरण दिया है। वैवाहिक सम्बन्धों पर अच्छा प्रकाश पड़ा है। नाम लिखाने के बदले 'राणीमंगा' को नेग इत्यादि प्रदान किया जाता था। उसका उल्लेख भी हुआ है। उस समय के रीति–रिवाजों को समझने हेतु बही उपयोगी है।

5– जोधपुर राणीमंगा री बही

इस बही की नकल महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर में संगृहीत है। इसमें जोधपुर राठौड़ राजघराने की रानियों व उनकी संतति का ब्यौरा दिया है जो उपयोगी है।

इस प्रकार की बहियें राठौड़ों, भाटियों, कछवाहों, चौहानों, झालों, तंवरों आदि राजवंशों की भी उनके रावों व भाटों के पास मिलती हैं, जो इतिहास लेखन में बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

इसके अलावा हुकूमत री बही[1], पट्टा बही[2], रीति–रिवाज री बही, कपड़े रै कोठार री बही, रणवास री बही[3] आदि अनेक प्रकार की बहियें मिलती हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण हैं।

1– प्रकाशित, सम्पादन डॉ. सतीशचन्द्र, डॉ. रघुवीरसिंह, डॉ. घनश्यामदत्त शर्मा.

2– महाराणा राजसिंह की पट्टा बही का सम्पादन भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद् नई दिल्ली के लिये मेरे निर्देशन में किया जा रहा है।

3– इस प्रकार की बहियें महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश में संगृहीत हैं।

राजस्थानी पद्य कृतियां

राजस्थानी काव्य की सुदीर्घ परम्परा में समय-समय पर यहां अनेक ऐतिहासिक कृतियों की रचनाएं हुई। घटना विशेष अथवा ऐतिहासिक पुरुष के नामकरण से कवियों ने जहां अपनी कृतियों के रोचक शीर्षक दिये हैं, वही छन्द वैविध्य के आधार पर उन्होंने अपनी छोटी-मोटी रचनाओं को अनेक नामों से अभिहित किया है। यहां कुछ महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कृतियों के बारे में जानकारी दी जा रही है।

रासो

रासो काव्य में युद्ध अभियानों तथा वीरत्वपूर्ण कृत्यों का विस्तृत वर्णन मिलता है। राजस्थान के इतिहास जानने के साधनों में रासो काव्य का विशिष्ट स्थान रहा है। सर्वाधिक मेवाड़ में रासोकाव्य लिखे गये। कुछ महत्वपूर्ण इस प्रकार के काव्यों का विवरण यहां दिया जा रहा है।

1- बीसलदेवरासो[1] (नरपति नाल्ह)

इस ग्रन्थ के रचनाकाल के बारे में विद्वानों में मतभेद है। यद्यपि अगरचंद नाहटा ने हस्त प्रतियों के आधार पर इसकी रचना के भिन्न-भिन्न संवत् दिये हैं, परन्तु ओझा ने इस ग्रन्थ का रचनाकाल 1272 संवत् स्थिर किया है। डॉ. मोतीलाल मेनारिया की मान्यता हैं कि सौलहवीं शताब्दी में नरपति नाम का एक कवि गुजरात में हुआ। गुजराती व राजस्थानी मिश्रित भाषा में रचा यह ग्रन्थ सम्भवतः उसी काल का लिखा जान पड़ता है। इसमें मूलतः वीसलदेव (तृतीय) चौहान के साथ परमार भोज की पुत्री राजदेवी अथवा राजमती के विवाह की घटना वर्णित है। विवाह के समय भोज का आलीसर, कुंडाल, मंडोर, सौराष्ट्र, गुजरात, सांभर, टोड़ा, टोंक, चित्तौड़ आदि भू-भाग वीसलदेव को देना लिखा है, जो अशुद्ध है। बीसलदेव के उड़ीसा विजय की घटना दी है जो कल्पित है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ इतना उपयोगी नहीं हैं फिर भी इसमें तत्कालीन सामाजिक व सांस्कृतिक पहलुओं पर काफी कुछ प्रकाश पड़ा है।

1- प्रकाशित, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी.

2– रायमलरासो

यह ग्रन्थ मेवाड़ के महाराणा रायमल की प्रशंसा में लिखा गया है। रायमल और गयासुद्दीन के सेनापति जफरखां के बीच हुए युद्ध का विवरण दिया है। युद्ध के समय योद्धाओं को घोड़े दिये गये, उसका सुन्दर विवरण है। इसमें युद्ध में भाग लेने वाले योद्धाओं की समुचित जानकारी मिलती है। इस कृति का उल्लेख वीर-विनोद में हुआ है।

3– क्यामखांरासो[1] (कविजान/वि.सं. 1691)

इसमें फतेपुर के क्यामखांनी मुसलमानों का इतिहास है। प्रारम्भ में पौराणिक ढंग ने सृष्टि की उत्पत्ति और चौहान वंश का विवरण दिया है। चौहानों की शाखाओं में क्यामखानियों की गणना की है। चौहान वंश के छत्रपति राजाओं का वर्णन करते हुए ददरेवे के चोहात राजा मोटेराय के पुत्र करमचंद से क्यामखां शाखा का प्रादुर्भाव होना बताया है। दिल्ली के बादशाह फिरोजशाह ने करमचंद को मुसलमान बनाया और उनके वंशज क्यामखां नाम से जाने गये। करमचंद के कुछ अभियानों का उल्लेख करते हुए उसकी संतति का विवरण दिया है। क्यामखां के पौत्र व ताजखां के पुत्र फतहखां द्वारा वि.सं. 1508 चैत्रशुक्ला 5 के दिन फतहपुर शहर बसाने का उल्लेख है। फतहखां से सरदारखां तक के नवाबों का विस्तृत विवरण है जो ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। झाबरमल शर्मा के अनुसार शजतुल मुसलमीन और तरीख खान जहानी ग्रन्थ इस रासो के आधार पर लिखे गये हैं।

4– शत्रुसालरासो (डूंगरसी[2])

इसमें बूंदी के राव राजा शत्रुसाल (वि.सं. 1688–1715) के राज्य वैभव और युद्ध अभियानों का विस्तृत वर्णन मिलता है। शत्रुसाल धोलपुर के युद्ध (वि.सं. 1715) में औरंगजेब के विरूद्ध लड़ता हुआ काम आया था। बूंदी के इतिहास के लिए ग्रन्थ उपयोगी है। डॉ. मोतीलाल मेनारिया के अनुसार इसमें करीब 500 छंद हैं और इसकी भाषा-शैली चंदकृत पृथ्वीराज रासो से मिलती-जुलती है।[3]

1– प्रकाशित, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, सम्पादक डॉ. दशरथ शर्मा.

2– यह बूंदी के राव राजा शत्रुसाल के आश्रित था। उक्त राजा की ओर से उसे नैनवा गांव मिला था.

3– राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ 210

5– बिन्हैरासो[1] (राव महेशदास)

ब्रज भाषा प्रभावित डिंगल की इस रचना में राजगद्दी के लिये बादशाह शाहजहां के पुत्रों की लड़ाई का विवरण दिया है परन्तु कवि का उद्देश्य अपने आश्रयदाता राजगढ़ के शासक अर्जुन गौड़ की वीरता व रण-कौशल का गुण-गान करना रहा है। इस प्रकार शाहजहां के विद्रोही पुत्र शाहजादा सूजा, मुरादबख्श और औरंगजेब के तीन युद्धों– बनारस, उज्जैन व धोलपुर का वर्णन हुआ है। युद्ध में भाग लेने वाले योद्धाओं की अच्छी जानकारी मिलती है। रासोकार ने अपने आश्रयदाता अर्जुन को महत्व देने की लालसा में घटनाक्रम के विपरीत उसके युद्ध का वृत्तांत अन्त में दिया है जो अशुद्ध है।

बिन्हैरासो में युद्धारम्भ के पूर्व महाराजा जसवन्तसिंह की मनःस्थिति का सटीक परिचय मिलता है जो वचनिका में नहीं मिलता। रासोकार ने युद्ध में से भागने वाले योद्धाओं की सूची दी है जो वचनिका में नहीं है। इसमें दोनों सेनाओं की व्यूहरचना का विशद वर्णन मिलता है। इस प्रकार बिन्हैरासो उक्त युद्ध सम्बन्धी जानकारी का एक महत्वपूर्ण स्रोत है।

6– रतनरासो[2] (कवि कुम्भकर्ण[3]/वि.सं. 1735)

इस काव्य की रचना में कवि को बारह वर्ष लगे। कुंभकर्ण दिल्ली सम्राट, चित्तौड़ के राणा, जोधपुर, बीकानेर, आमेर, बूंदी, रतलाम, जैसलमेर आदि राजाओं तथा शिवा पुत्र शंभाजी, डूँगरपुर, परबतसर और बांसवाड़ा के रावलों आदि बारह व्यक्तियों के पास बारह वर्ष तक रहा और धरमात के युद्ध के कोई बीस वर्ष बाद इस ग्रन्थ की रचना की। कवि ने छः भाषाओं, बारह रूपकों व बत्तीस शृंगारों का समावेश कर अपने पुत्र को यह ग्रन्थ पढ़ा कर उसे रतलाम नरेश के समक्ष उपस्थित किया। इसमें कवि ने अपना वंश परिचय दिया है। इसके बाद कन्नोज के जयचंद से रतनसिंह तक के राजाओं का उल्लेख है। रतनसिंह के पिता महेशदास का महाबतखां की सेवा में रहना और देवगिरि आदि युद्ध अभियानों का विवरण है। तदनन्तर कवि ने महेशदास के पूर्वजों का

1– प्रकाशित, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, सम्पादक सौभाग्यसिंह शेखावत.

2– इसकी प्रस्तावना छप गई है। मूलपाठ प्रकाशनाधीन है। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सम्पादक काशीराम शर्मा एवं डॉ. रघुवीरसिंह.

3– यह प्रसिद्ध कवि सांदूमाला का पौत्र व ईश्वरदास का पुत्र था। इसका जन्म नागौर परगने के भदौरा गांव में हुआ था। जोधपुर व रतलाम घराने के साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था।

परिचय दिया है। महेशदास व रतनसिंह का जालोर आगमन, महेशदास की मृत्यु व रतनसिंह का उत्तराधिकारी होना व उसकी कंधार विजय का वर्णन है। अन्त में धरमात के युद्ध का विस्तृत विवरण है। इसमें विभिन्न युद्ध अभियानों में भाग लेने वाले राठौड़ों, चौहानों व भाटियों आदि योद्धाओं का भी विवरण दिया है जो महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार सन् 1625 ई. का बुरहानपुर का घेरा, सन् 1633 ई. में दौलताबाद के किले का घेरा, सन् 1647 ई. में बल्ख पर चढ़ाई तथा 16 अप्रेल, 1658 ई. के हुए धरमात के निर्णायक युद्ध का वर्णन दिया है। दौलताबाद के घेरे का यद्यपि विस्तार से वर्णन दिया है परन्तु वहां के शासक का नाम नहीं दिया। योद्धाओं का परिचय देते समय यत्र-तत्र कुछ भूलें हुई हैं। धरमात के युद्ध अभियान का वर्णन करते हुए कवि ने रतनसिंह की कार्यवाहियों पर विशेषरूपेण ध्यान दिया है और शाही सेवा के प्रमुख सेनापति महाराजा जसवन्तसिंह की हलचलों का वृत्तांत दिया है जिससे यह मुगल इतिहास के लिये भी महत्वपूर्ण आधार सामग्री बन गया है।

7– पृथ्वीराजरासो (चंदबरदाई भाट)

ऐसा प्रसिद्ध है कि पृथ्वीराज चौहान के समय अर्थात् ई.स. की 12वीं शताब्दी के अन्त में चन्दबरबाई ने इस ग्रन्थ की रचना की परन्तु इसके द्वारा रचा मूल ग्रन्थ अब नहीं मिलता है। बाद के कवियों ने कई बातें इसमें और जोड़ दी हैं जिससे इसकी ऐतिहासिकता नष्ट हो गई है। ओझाजी ने इसका रचनाकाल 15वीं शताब्दी के आसपास माना है।[1] पुरातन प्रबन्ध संग्रह में पृथ्वीराज और जयचंद विषयक प्रबन्धों में चंद के रचे चार छप्पय मिलते हैं[2] जो वि. सं. 1528 में लिपिबद्ध किये गये थे। इससे यह स्पष्ट है कि चंद नामक कोई कवि वि. सं. 1528 के पूर्व हुआ।

इसके बाद पृथ्वीराज रासो का उल्लेख राजप्रशस्ति महाकाव्यम् में मिलता हैं।[3] डॉ. मोतीलाल मेनारिया के अनुसार महाराणा राजसिंह के समय कई ऐतिहासिक ग्रन्थ रचे गये। उस समय चंद का कोई वंशज अथवा उसकी जाति का कोई दूसरा व्यक्ति रासो लिखकर सामने लाया प्रतीत होता है। उसने

1– ओझा निबन्ध संग्रह, प्रथम भाग, पृष्ठ 51

2– देखें सिंधी जैन ग्रन्थमाल पुश्य 2, भारतीय विद्या भवन बम्बई. सम्पादक मुनिजिनविजय.

3– राजप्रशस्ति महाकाव्यम्, तृतीय सर्ग, पृष्ठ 35, साहित्य संस्थान, उदयपुर.

इतिहास के लिये उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशित करने के लिये इसमें अपना नाम नहीं देकर चंद रचित ही बतलाया। इस प्रकार इसका रचनाकाल संवत् 1700 के आसपास माना जा सकता है।[1] वस्तुतः महाराणा अमरसिंह (प्रथम) ने करूणोदधि जैन को पृथ्वीराज रासो के बिखरे संस्करणों को संकलित करके सम्पादन का कार्य सोंपा था। करीब पचास वर्ष के बाद महाराणा राजसिंह के समय करूणोदधि के शिष्य खेतसी द्वारा यह कार्य पूरा हुआ।[2] तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति के अध्ययन हेतु काव्य उपयोगी है।

8– सगतरासो[3] (गिरधर आसिया)

उदयपुर के महाराणा राजसिंह के समय लिखे गये सगतरासो में महाराणा प्रताप के अनुज शक्तिसिंह व उसके वंशजों का विस्तृत विवरण दिया गया है। प्रारम्भ में हमीर से महाराणा उदयसिंह तक वंशावली दी हैं। इसके बाद महाराणा उदयसिंह द्वारा निष्कासित किये जाने पर शक्तिसिंह का अकबर की सेवामें जाना, जयमल व पत्ता द्वारा उसका विरोध करना तथा इस पर उसका डूंगरपुर सहसमल की सेवामें जाकर रहना, फिर वैंणगढ़ जाकर शक्ति बढ़ाना, पुनः शाही सेवा में रहना और हल्दीघाटी के युद्ध में अपने अग्रज प्रताप की रक्षा करना, मानसिंह कछवाह से विवाद होने पर भैंसरोड़गढ़ जाकर अपना स्थान कायम करना और वहीं मृत्यु को प्राप्त होना वर्णित है।

इसके बाद भांण, अचलदास, राजसिंह, मदनसिंह, चतुर्भुज, जोध, बल्लू, भोपत, दलपत आदि शक्तिसिंह के पुत्रों की महत्ती भूमिका का वर्णन है। तत्पश्चात् भांण के पुत्र नरहरिदास के नेतृत्व में लड़े मैनाल के युद्ध का विस्तृत विवरण दिया हैं। इसमें भाग लेने वाले योद्धाओं पर भी समुचित प्रकाश पड़ा है। अभी तक यह ग्रन्थ प्रकाश में नहीं आया था इसलिये इतिहासकार इसका उपयोग नहीं कर सके। अब यह ग्रन्थ छप गया है। इसके अध्ययन से मेवाड़ के इतिहास पर न केवल नया प्रकाश पड़ेगा अपितु अनेकानेक इतिहास विषयक उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने में भी यह ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध होगा। इसमें जहां शक्तावतों की महत्वपूर्ण भूमिका उजागर हुई है, वहां यहां के स्थानीय योद्धाओं के क्रियाकलापों पर भी समुचित जानकारी मिल जाती है। इसमें

1– राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ 125.

2– महाराणा भूपालसिंह मेवाड़, डॉ. ब्रजमोहन जावलिया का लेख पृष्ठ 33, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर.

3– प्रकाशित, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, विद्या प्रचारिणी सभा, उदयपुर, सम्पादक डॉ. कृष्णचन्द्र श्रोत्रिय.

तत्कालीन खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा, सामाजिक मान्यताओं व विचार-धाराओं का भी बोध होता है। इतिहास और समाज शास्त्रीय अध्येताओं दोनों के लिये यह ग्रन्थ उपयोगी है।

9– राणारासो[1] (दयालदास)

प्रारम्भ के छंदों में महाराणा जयसिंह (वि. सं. 1737–1755) तक के मेवाड़ शासकों का नामोल्लेख है परन्तु महाराणा कर्णसिंह (वि. सं. 1676–1684) तक का ही वर्णन दिया है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि यह ग्रन्थ कर्णसिंह के समय लिखा गया परन्तु आरम्भ में दी गई वंशावली से पता चलता है कि ग्रन्थ महाराणा जयसिंह के समय लिखा गया। इसमें महाराणा कुम्भा, महाराणा उदयसिंह, महाराणा प्रताप और महाराणा अमरसिंह का वर्णन विस्तारपूर्वक दिया है। मेवाड़-मुगल संघर्ष की घटनाओं पर विशद प्रकाश डाला गया है। उस समय के राजनैतिक इतिहास के अध्ययन हेतु यह काव्य विशेषरूपेण उपयोगी है।

10– हमीररासो[2] (महेश)

इस काव्य का उद्देश्य हमीर व अलाउद्दीन का यशोगान करना है। जोधराज की तरह अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करना नहीं है। इसमें हमीर व अलाउद्दीन के अलावा हमीर की कुलोत्पत्ति व उसके पूर्वजों का उल्लेख भी है। इसमें कई काल्पनिक बातें लिखी गई हैं। घटनाओं की तिथियां भी गलत दी हुई हैं। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ हमीर महाकाव्य जितना उपयोगी नहीं है।

11– हम्मीररासो (जोधराज/वि. सं. 1785)

इसकी रचना नीमराणा के शासक चन्द्रभान की प्रेरणा से वि.सं. 1785 में हुई। इसमें प्रायः महेशकृत हम्मीर रासो जैसा ही वर्णन है।

12– महाराणा सुजाणसिंहजी रो रासो (जोगीदास/वि. सं. 1769)

68 पद्यों की इस लघु रचना में बीकानेर के महाराजा सुजानसिंह की वरसलपुर के भाटियों पर की गई चढ़ाई का विवरण दिया है। यहां के भाटियों ने मुलतान से आने वाले एक काफिले को लूट लिया था। लड़ाई में सुजाणसिंह

1– प्रकाशनाधीन, साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर.

2– प्रकाशित, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, सम्पादक अगरचंद नाहटा.

की ओर से फतेसिंह मारा गया। अन्त में वहां के भाटी राव लखधीर के साथ समझौता होने पर सेनायें हटा ली गई।

13– खुमाणरासो (दौलत विजय[1]/वि.सं. 1770–1790)

खुमाणरासो में बापा रावल से लेकर महाराणा राजसिंह तक के मेवाड़ के महाराणाओं की मुख्य उपलब्धियों एवं उनके जीवन का विस्तृत विवरण दिया है। इसमें यह वर्णित है कि महाराणा प्रताप द्वारा कछवाही रानी को तंग करने पर उक्त रानी ने अपने भाई मानसिंह को मेवाड़ पर चढ़ाई करने के लिये उकसाया। हल्दीघाटी के युद्ध में शक्तिसिंह ने महाराणा प्रताप के प्राणों की रक्षा कर कर्तव्य-परायणता का परिचय दिया। महाराणा अमरसिंह के समय हुए मेवाड़–मुगल संघर्षों का वर्णन है। बाद के महाराणाओं पर विशद प्रकाश डाला गया है।[2] मेवाड़ राज्य के इतिहास अध्ययन हेतु ग्रन्थ उपयोगी है।

14– प्रतापरासो (जाचीक जीवण/वि.सं. 1847)

इसमें अलवर के संस्थापक रावराजा प्रतापसिंह का जीवन–वृत्त है। राव वरसिंह के पुत्र महीराज हुए। उनके पुत्र नरू से नरूका कहलाये। नरू से मोहब्बतसिंह तक वंशावली दी है। इस ग्रन्थ का लेखन कार्य वि.सं. 1837 में प्रारम्भ किया गया और वि.सं. 1847 में यह पूर्ण हुआ। अतः इन दस वर्षों में जो ऐतिहासिक घटनाएं घटी और जिनका सम्बन्ध प्रतापसिंह से रहा, उनका विधिवत विवरण दिया है। आमेर अधिपति माधवसिंह की सेवा से राव प्रताप का पृथक होना और उसका भरतपुर के राजा की सेवा में जाना, मावड़ा का युद्ध, राजगढ़ की स्थापना, लछमनगढ़ का युद्ध, जयपुर–राजगढ़ के सम्बन्ध आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। प्रतापसिंह द्वारा बनाये गये भवन व बगीचों का उल्लेख है। अलवर, जयपुर व भरतपुर के इतिहास अध्ययन हेतु यह रचना उपयोगी है।

15– जवानरासो (सीताराम रतनू)

इसमें ठाकुर जवानसिंह खंगारोत कछवाह (उगरासव व बोराज के ठाकुर स्योदानसिंह का कनिष्ठ पुत्र) और महादजी सिन्धिया के सेनानायक रायजी पटेल

1– यह श्वेताम्बर जैन तपागच्छीय साधु शान्ति विजय के शिष्य थे.

2– डॉ. कृष्णचन्द्र श्रोत्रिय ने खुमाणरासो पर शोध प्रबन्ध लिखा था। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रति भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना के संग्रहालय में सुरक्षित है।

के बीच बोराज के रणक्षेत्र में हुए युद्ध का वर्णन है, जिसमें जवानसिंह अनेक खंगारोत योद्धाओं के साथ काम आया। यह युद्ध वि.सं. 1843 में हुआ था। कवि ने आंखों देखा हाल दिया है इसलिये उक्त युद्ध सम्बन्धी जानकारी के लिये यह एक प्रामाणिक साक्ष्य ग्रन्थ के रूप में उपयोगी है। इसकी दो प्रतियां दुर्गादास बोराज के संग्रह में थी जो अब राघवेन्द्र मनोहर ने सम्पादन करने के लिये प्राप्त कर ली है।[1]

विलास

विलास शीर्षक की काव्य कृतियों में राजनीतिक घटनाओं के अलावा आमोद-प्रमोद विषयक पहलुओं का भी वर्णन मिलता है। कुछ महत्वपूर्ण इस प्रकार के ऐतिहासिक काव्यों का विवरण प्रस्तुत है।

1- राजविलास (कवि मान)

इसमें महाराणा राजसिंह का टीकादौड़ का उत्सव, राजसमुद्र के निर्माण और युद्ध अभियानों आदि राजसिंह कालीन घटनाओं का विस्तृत विवरण मिलता है। जगतसिंह के समय शासन प्रणाली का भी समुचित वर्णन दिया है। समकालीन इतिहास व संस्कृति के विवेचन के लिये इसका महत्व है।

2- बुद्धिविलास[2] (बखतराम साह)

जयपुर की स्थापना सवाई जयसिंह ने की थी। उन्होंने बड़े आधुनिक ढंग से जयपुर शहर को बसाया था। कवि ने इसका आंखों देखा हाल लिखा है। उस समय के नगर निर्माण की योजनाओं के अध्ययन हेतु कृति बड़ी महत्वपूर्ण है।

3- वृतविलास[3] (कवि जदुनाथ)

इसमें राजा विजयपाल से गोपालसिंह तक करौली के राजवंश की वंशावली दी है, जो महत्वपूर्ण है। इसके बाद करौली नरेश गोपालसिंह का यशोगान किया गया है। अन्त में कवि ने अपने को चंदबरदाई का वंशज बतलाकर

1- मरु-भारती, वर्ष 35, अंक 2, जुलाई 1987, पृष्ठ 59-60.

2- प्रकाशित, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सम्पादक डॉ. पद्मधर पाठक.

3- विशेष विवरण के लिये देखें- ओझा निबन्ध संग्रह, तीसरा भाग, पृष्ठ 1-9.

अपना परिचय दिया है । रचना छोटी होते हुए भी करौली के इतिहास अध्ययन हेतु उपयोगी है ।

4– विजयविलास

इसमें मारवाड़ के शासक महाराजा अभयसिंह की अहमदाबाद पर चढ़ाई और रामसिंह तथा बख्तसिंह के बीच चले संघर्ष का विवरण दिया है । फिर महाराजा विजयसिंह के समय चले मराठों के साथ संघर्ष का वृत्तांत दिया है । महाराजा विजयसिंह कालीन जोधपुर राज्य के इतिहास अध्ययन हेतु ग्रन्थ उपयोगी है । इसकी अपूर्ण प्रति राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी में संगृहीत है ।

2– कहवाटविलास[1] (रचना वि.सं. 1854)

गद्य–पद्य की इस रचना में कोयलापुर पाटण के शासक अनंतराय सांखला और गिरनारगढ़ के राजा कहवाट सरवहिया (यादव) की कथा वर्णित है । अनंतराय ने छल–कपट से कहवाट को कैसे बन्दी बनाकर उसे तंग किया तथा तारापुर पाटण के ऊंका ने युक्ति से अपने मामा कहवाट को कैसे मुक्त कराया आदि घटनाओं का वर्णन है । क्षेत्रीय इतिहास पर अभी तक पर्याप्त अनुसन्धान कार्य नहीं हुआ है इसलिये इस ग्रन्थ में वर्णित घटनाओं की पूर्णरूपेण जांच करना सम्भव नहीं है परन्तु इस कृति के प्रकाश में आने पर खोजबीन करने का मार्ग कुछ सुगम अवश्य हुआ है । मूलत: इसमें सामाजिक व सांस्कृतिक पहलुओं पर अच्छा प्रकाश डाला गया है ।

6– भीमविलास[2] (किसना आढ़ा[3]/वि.सं. 1880 के लगभग)

इसमें महाराणा भीमसिंह के वैभव व पराक्रम का विस्तार से वर्णन है । पहले मेवाड़ के महाराणाओं की वंशावली दी है फिर अरिसिंह की जीवन–घटनाओं का वृत्तांत है । इसके बाद महाराणा भीमसिंह के सामन्तों के साथ सम्बन्धों, मराठों के साथ लड़ाइयों व संधि समझौतों का विवरण दिया है । तत्कालीन मेवाड़ की सामाजिक व राजनीतिक स्थिति के अध्ययन हेतु यह कृति उपयोगी है । इस ग्रन्थ की दो हस्तलिखित प्रतियां साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर में सुरक्षित है ।

1– प्रकाशित, साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, सम्पादक सौभाग्यसिंह शेखावत व डॉ. देव कोठारी.

2– साहित्य संस्थान, उदयपुर में इसका सम्पादन किया जा रहा है.

3– यह महाराणा भीमसिंह का आश्रित कवि व डिंगल भाषा का विद्वान था.

प्रकास

किसी वंश अथवा व्यक्ति विशेष की उपलब्धियों या घटना विशेष पर प्रकाश डालने वाली कृतियों का नाम 'प्रकास' रखा गया है। दूसरे प्रबन्ध काव्य की तरह इसमें कवि अपनी सुविधानुसार छन्दों का प्रयोग करता है। इस प्रकार की कुछ रचनाएं समसामयिक कवियों द्वारा रची गई हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। कुछ महत्वपूर्ण कृतियों का विवरण प्रस्तुत है।

1– राजप्रकास (किशोरदास/वि.सं. 1719)

इसमें रावल बापा से महाराणा राजसिंह तक का वृत्तांत दिया है। महाराणा प्रताप से राजसिंह तक के महाराणाओं का विवरण कुछ विस्तार से दिया है। ऊंटाले के युद्ध का वर्णन प्रस्तुत करते हुए उसमें भाग लेने वाले योद्धाओं के बारे में जानकारी दी है जो महत्वपूर्ण है। महाराणा राजसिंह के विलास–वैभव और शौर्य-पराक्रम का अच्छा विवरण मिलता है। डिंगल भाषा का बहुत ही उच्चकोटि का ग्रन्थ है।

2– महावयशप्रकास[1] (आशिया मानसिंह[2]/वि.सं. 1768)

इसमें दूसरे काव्यों की तरह वंशक्रम नहीं दिया है बल्कि सीधा ग्रन्थ नायक महासिंह सारंगदेवोत (अजा का वंशज) के पिता मानसिंह का उल्लेख है। इसमें महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) के राजत्वकाल में बादनवाडे (अजमेर प्रान्त में) के पास महाराणा की ओर से लड़े गये महासिंह व रणबाजखां की लड़ाई का वृत्तांत है। महासिंह व रणबाजखां दोनों एक दूसरे के हाथों मारे गये वर्णित है। युद्ध में भाग लेने वाले अन्य योद्धाओं के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी दी गई है।

3– सूरजप्रकास[3] (कविया करणीदान)

जोधपुर के महाराजा अभयसिंह (वि. सं. 1781–1806) के आदेशानुसार कविया करणीदान ने यह ग्रन्थ लिखा। महाराजा की अहमदाबाद के सर बुलन्दखां पर चढ़ाई (वि.सं. 1787) का विस्तृत विवरण इसमें दिया है। सर्वप्रथम सूर्यवंश की वंशावली दी है, तत्पश्चात् संक्षेप में रामायण की कथा और राठौड़ों की 13 शाखाओं का उल्लेख हुआ है। इसके बाद जयचंद से महाराजा

1– सम्पादनाधीन, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर.

2– यह सगतरासो के रचयिता गिरधर आशिया का प्रपौत्र था.

3– प्रकाशित, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सम्पादक–सीताराम लालस.

अजीतसिंह तक के राजाओं का विवरण दिया है। महाराजा सूरजसिंह, गजसिंह, जसवन्तसिंह तथा अजीतसिंह का वर्णन कुछ विस्तार से दिया है। सातवें प्रकरण में महाराजा अभयसिंह की नागोर चढ़ाई का विवरण है। इसके बाद सर बुलन्दखां पर की गई चढ़ाई का विस्तृत वृत्तांत दिया है।

इसमें राव जोधा तक की वंशावली और घटनायें ख्यात ग्रन्थों के आधार पर दी हैं अतः प्रामाणिक नहीं है। बाद के शासकों का विवरण काफी सही दिया है परन्तु कहीं-कहीं पर घटनाओं की जानकारी देने में कवि चूक गया है। सर बुलन्दखां के समय करणीदान महाराजा के साथ था, अतः युद्ध की गतिविधियों का आंखों देखा हाल दिया है। इसमें अत्युक्तिपूर्ण वर्णन होते हुए भी बहुत कुछ इतिहास विषयक प्रामाणिक सामग्री का समावेश हुआ है। मारवाड़ व मध्यकालीन राजस्थान पर कार्य करने वाले शोधार्थियों के लिये यह ग्रन्थ उपयोगी है।

4– भीमप्रकास (रामदान लालस[1])

संक्षेप में मेवाड़ का प्राचीन इतिहास देते हुए महाराणा भीमसिंह के जीवन परिचय का चित्रण दिया है। महाराणा के महल, राजदरबार, गणगौर की सवारी का बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। इसकी प्रति सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता में सुरक्षित है।

5– पाबूप्रकास[2] (मोडा आशिया)

इसमें राव सीहा के पौत्र धांधल के बेटे पाबू का जीवन वृत्त दिया है जिसमें मुख्य रूप से उसके वीरतापूर्ण कार्य-कलापों का वर्णन हुआ है। पाबू राठौड़ ने विवाह मण्डप में से उठकर गायों के रक्षार्थ लड़ाई की और प्राणोत्सर्ग कर अपने वचन का निर्वाह किया। वह लोकदेवता के रूप में पूजा जाने लगा और उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। इस प्रकार इस काव्य में मुख्य प्रसंग राज्य प्राप्ति के लिए युद्ध करने का नहीं बल्कि वचन-बद्धता के लिए बलिदान और प्राणोत्सर्ग है। कवि ने पाबू के जीवन चरित्र के साथ राजस्थान की संस्कृति का बड़ा ही जीवन्त चित्रण प्रस्तुत किया है। पाबू की उदारता, सहिष्णुता और शुद्र जाति के लोगों से उसका गहरा लगाव आदि कई प्रेरणा-दायक तथ्यों का वर्णन है। इसमें वर्णित घटनायें नैणसी की ख्यात से कुछ भिन्न हैं।

1– यह जोधपुर के चारण फतेदान का पुत्र था.

2– प्रकाशित, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर। सम्पादक डॉ. नारायण-सिंह भाटी.

6– उदयप्रकास (कवि किशन सिंढायच)

इसमें डूंगरपुर के शासकों का विवरण प्रस्तुत करते हुए महारावल उदयसिंह के जीवन की मुख्य घटनाओं का वर्णन है। डूंगरपुर के इतिहास अध्ययन के लिये यह ग्रन्थ उपयोगी है।

7– केहरप्रकास[1] (कविराव बख्तावर[2])

इसमें कवि ने देवगढ़ बाहरिया के चौहानों का संक्षिप्त विवरण दिया है, जिसमें मदनपाल व विजयपाल की गौलकुंडे के शाह के साथ हुई लड़ाइयों का विवरण मुख्य है। विजयपाल के बाद क्रमशः भांण और भीम हुए। भीम के पुत्र केसरीसिंह के नाम से यह ग्रन्थ रचा गया। यों तो इसमें मुख्य रूप से केसरीसिंह व कमला नाम की प्रेयसी का वृत्तांत है परन्तु छोटे–मोटे युद्धों का विवरण भी दिया है जिससे स्थानीय घटनाओं पर कुछ नूतन प्रकाश पड़ा है।

8– दीपंगकुलप्रकास (कमजी दधवाड़िया)

19वीं शताब्दी में रचे गये इस ग्रन्थ में लावा सरदारगढ़ के डोडिया राजपूतों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। मेवाड़ के सामन्तों के साथ इनके सम्बन्धों की जानकारी भी मिलती है। इसकी अपूर्ण प्रति साहित्य संस्थान, उदयपुर में और पूर्ण प्रति डॉ. ब्रजमोहन जावलिया के व्यक्तिगत संग्रह में सुलभ है।[3]

रूपक

रूप से रूपक शब्द बना है। वंश अथवा व्यक्ति विशेष की उपलब्धियों के स्वरूप को दर्शाने वाली काव्य कृतियों का नाम रूपक रखा गया है। इतिहास जानने के साधनों में इस प्रकार की कृतियों का भी महत्व है।

1– प्रकाशित, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, वि.सं. 1991, सम्पादक कविराव मोहन।

2– इसका जन्म बसी ग्राम में सुखराम के घर वि. सं. 1870 के लगभग हुआ। बसी ठाकुर अर्जुनसिंह अच्छे साहित्य प्रेमी और राजस्थानी भाषा के ज्ञाता थे। उनके सान्निध्य में रहकर बख्तावर ने शिक्षा प्राप्त की। उसने महाराणा शम्भूसिंह, स्वरूपसिंह, सज्जनसिंह व फतेहसिंह की सेवा में रहकर ख्याति अर्जित की। यश प्रकाश नाम से उसने इन चारों महाराणाओं पर कविताएं लिखी। उसका देहान्त फाल्गुन सुदि 7, 1951 को हुआ।

3– राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस सोवीनियर, 1976, उदयपुर, पृष्ठ 30.

1– गजगुण रूपक-बन्ध[1] (केशवदास गाडण[2])

इसमें कवि ने पहले मारवाड़ के संस्थापक राव सीहा के पुत्रों का विवरण दिया है फिर आस्थान से महाराजा गजसिंह तक की वंशावली दी है। महाराजा सूरसिंह के समय के राज–प्रासादों, बाजारों, जलाशयों, बगीचों का वर्णन करते हुए उनके राज्य वैभव पर प्रकाश डाला है। राजकुमार गजसिंह के द्वारा नाडोल, जोजावर, चाणोद, खोड़, सादड़ी, कुम्भलमेर पर अधिकार करने का उल्लेख है। शाही सेना के साथ महाराजा सूरसिंह का मेवाड़ पर आक्रमण तथा मुगलों के साथ संधि करने के लिये महाराणा अमरसिंह को तैयार करने का वर्णन है। इस प्रकार संधि कराने का श्रेय जोधपुर के महाराजा सूरसिंह को ही दिया है।

किशनगढ़ का संस्थापक किशनसिंह किस प्रकार महाराजा के प्रधान गोविन्ददास भाटी को मार कर स्वयं मारा गया, इसका विवरण भी दिया है। इसके बाद गजसिंह की जालोर के बिहारी पठानों पर चढ़ाई और वहां पर अधिकार करने का उल्लेख है। महाराजा सूरसिंह की मृत्यु पश्चात् गजसिंह का उत्तराधिकारी होने और उनके दक्षिण के युद्ध अभियानों का विस्तृत वर्णन है। हाजीपुर पटना के पास टॉस नदी के तट पर बागी खुर्रम और महाराजा गजसिंह के मध्य हुए युद्ध का सांगोपांग विवरण दिया है। युद्ध में भाग लेने वाले यौद्धाओं के बारे में जानकारी दी है। युद्ध के विभिन्न आयामों का वर्णन करते हुए कवि ने तत्कालीन सामाजिक जीवन एवं राजनीतिक परिस्थितियों का भी चित्रण किया है। ग्रन्थ समकालीन लेखक द्वारा लिखा गया है और ऐतिहासिक घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण इसमें मिलता है। इसलिये यह ग्रन्थ उस समय की राजनीतिक हलचलों की जानकारी हेतु बड़ा उपयोगी है।

2– रूपक गोगादेजी रो[3] (आढा पाड़खांन)

इसमें मालानी के रावल मल्लिनाथ के पुत्र वीरमदेव राठौड़ व जोहियों के बीच हुए झगड़े का वर्णन है। इसके बाद गोगादे द्वारा जोहियों से लड़ाई कर

1– प्रकाशित, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। सम्पादक सीताराम लालस।

2– सदमल गाडण का पुत्र केशवदास महाराजा गजसिंह की सेवा में रहा और युद्ध अभियानों में साथ रहकर उनकी रणकौशल का विवरण अपने काव्य ने किया।

3– प्रकाशित, वीरवांण, राजस्थांन प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, परिशिष्ट 1.

अपने पिता का वैर लिये जाने का विवरण दिया है। घटनायें नैणसी की ख्यात और जोधपुर राज्य की ख्यात से मिलती-जुलती हैं। मारवाड़ के राठौड़ों के इतिहास अध्ययन हेतु कृति महत्वपूर्ण है।

3- राजरूपक[1] (वीरभाण)

जोधपुर के महाराजा अभयसिंह की सर बुलन्दखां पर की गई चढ़ाई का विस्तृत विवरण इसमें दिया है। वीरभांण ने घटनाओं का उल्लेख सही तिथि, मास व वर्ष देकर क्रमबद्ध किया है। युद्ध में भाग लेने वाले योद्धाओं के बारे में समुचित जानकारी प्रस्तुत करते हुए उनकी भूमिका को दर्शाने का कवि ने सफल प्रयास किया है। यद्यपि एक ही घटना को लेकर सूरजप्रकाश और राजरूपक दोनों ग्रन्थ लिखे गये परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से राजरूपक का महत्व अधिक है।

वचनिका

वचनिका शब्द संस्कृत वचन से बना है परन्तु राजस्थानी साहित्य में मुख्यतः गद्य-पद्य मिश्रित एक विशिष्ट काव्यरूप के अर्थ में हुआ है। वचनिका संज्ञक रचनाओं को चम्पू काव्य की कोटि में रखा जा सकता है। वचनिका के दो भेद होते हैं- (क) पद्यबद्ध व (ख) गद्यबद्ध। पद्यबद्ध में आठ-आठ अथवा बीस-बीस मात्राओं के तुक-युक्त खण्ड होते हैं जबकि गद्यबद्ध में मात्राओं का नियम लागू नहीं होता। इस प्रकार की कृतियों में स्थानीय योद्धाओं पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

1- अचलदास खीची री वचनिका[2] (शिवदास)

इसमें सुल्तान होशंगाशाह की गागरोण के अचलदास खींची पर की गई चढ़ाई का वर्णन है। शिवदास ने अचलदास के शौर्य और स्वाभिमान तथा उसके पराक्रम का अत्यन्त ओजस्वी वाणी में चित्रण किया है। वचनिका के अनुसार यह युद्ध महाष्टमी (आश्विन शुक्ल) से दूसरी अष्टमी (कार्तिक शुक्ल) तक हुआ था। ये महाष्टमियां सोमवार, 13 सितम्बर, 1423 तथा कार्तिक कृष्ण 8 सोमवार, 27 सितम्बर, 1423 ई, को पड़ी थी। अतः डॉ. शम्भूसिंह मनोहर ने अचलदास खीची की मृत्यु का समय 1480, कार्तिक कृष्ण 8 तदनुसार 27 सितम्बर, 1423 ई. स्थिर किया है।[3]

1- प्रकाशित, नागरी प्रचारिणी सभा। सम्पादक रामकर्ण आसोपा।

2- प्रकाशित। सम्पादक दीनानाथ खत्री।

3- वचनिका राठौड़ रतनसिंघ जी महेसदासौत री, पृष्ठ 10-11.

2– वचनिका राठौड़ रतनसिंधजी महेसदासौत री[1] (खिड़िया जगा)

शाहजहां और उसके पुत्र औरंगजेब के बीच लड़े धरमात के युद्ध का वृत्तांत है। रतलाम का राठौड़ रतनसिंह औरंगजेब की सेना से लड़ता हुआ युद्ध में काम आया था। इसी के नाम से यह ग्रन्थ लिखा गया है। खिड़िया जगा ने पहले रतनसिंह का गुणगान किया है। अनन्तर शाहजहां के पुत्रों द्वारा विद्रोह करने पर उनके विरूद्ध महाराजा जसवन्तसिंह की अध्यक्षता में सेना भेजने का वर्णन है। इसके बाद धरमात के युद्ध का विस्तृत विवरण दिया है। समसामयिक ग्रन्थ होने के कारण यह इतिहासकारों के लिए एक प्रथम कोटि के प्रामाणिक व विश्वसनीय आधार ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित है।

3– वचनिका राठौड़ रूपसिंहजी री (वृन्द[2]/वि.सं. 1762)

वृन्द ने किशनगढ़ के महाराजा मानसिंह की आज्ञा से महाराजा रूपसिंह की कीर्ति को अक्षय रखने के लिये वचनिका की रचना की। इसमें राव सीहा से रूपसिंह तक के राजाओं की वंशावली दी है। इसके बाद धोलपुर के युद्ध में औरंगजेब के विरूद्ध लड़े गये युद्ध का वर्णन है। रूपसिंह ने दारा का पक्ष लेकर बड़ी वीरता से युद्ध किया था। रूपसिंह औरंगजेब की सेना को चीरते हुए ठेठ औरंगजेब की सवारी के हाथी तक पहुंच गया और हौदे की रस्सियों पर तलवार से वार करने लगा उस समय तुर्कों द्वारा वह मारा गया, वर्णित है।

वैलि

वेलि का अर्थ वेल, लता व वल्लरी है। वल्लरी संस्कृत शब्द है, जिसका अपभ्रंश रूप वेल अथवा वेलि है। न्याय वल्लरी, वेदान्त वल्लरी आदि इसी वेलि

1– इस ग्रन्थ का सर्वप्रथम सम्पादन डॉ. एल.पी. टैसीटरी ने किया फिर डॉ. रघुवीरसिंह व काशीराम शर्मा ने सम्पादन किया। इसके बाद डॉ. शम्भूसिंह मनोहर ने इस कृति का संशोधित मूलपाठ, पाठान्तर, शब्दार्थ, विवेचन व ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत कर इसका सांगोपांग अध्ययन किया।

2– इसका जन्म मेड़ता में रूपजी ब्राह्मण के घर में वि. सं. 1700 में हुआ था। जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह ने सांसण के रूप में भूमि प्रदान कर इसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। बाद में वह नवाब मुहम्मदखां के मार्फत शाही दरबार में उपस्थित हुआ। औरंगजेब को कविता में रुचि नहीं थी परन्तु जब उसने वृन्द की कविता सुनी तो वह बड़ा खुश हुआ और उसने अपना दरबारी कवि बनाकर मुअज्जम (बहादुरशाह) का अध्यापक नियुक्त किया। बाद में किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह ने वृन्द को बहादुरशाह से मांग कर अपनी सेवा में रखा। उसका देहान्त वि.सं. 1780 में हुआ।

परम्परा के संस्कृत साहित्य के ग्रन्थ हैं। कुछ विद्वानों की यह धारणा रही है कि "वेलि" ग्रन्थ वेलियों छन्द में लिखे गये हैं, इसलिये इसका नाम "वेलि" पड़ा है, परन्तु ऐसी बात नहीं है। वेलि ग्रन्थों में वेलियों छन्द के अलावा दूसरे छन्दों का प्रयोग भी हुआ है, परन्तु जहां तक ऐतिहासिक वेलियों का प्रश्न है वे प्रायः वेलियों छन्द में ही लिखी हुई मिलती है। इस प्रकार की कृतियों में जहां राजनीतिक घटनाओं का विवरण मिलता है वहां सामाजिक मान्यताओं की अच्छी जानकारी भी मिलती है।

1- दईदास जैतावत री वेलि (अक्खा भांणोत[1])

इसमें मारवाड़ के राव मालदेव के प्रसिद्ध उमराव देवीदास जैतावत द्वारा वि.सं. 1614 के लड़े गये हरमाड़ा के युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध में देवीदास ने असाधारण वीरता का परिचय दिया था। अभियान सम्बन्धी कई नवीन तथ्यों का हमें बोध होता है। कृति समसामयिक होने से ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

2- रतनसी खीवावत री वेल[2] (दूदो बिसराल)

जैतारण के स्वामी रतनसिंह उदावत द्वारा अकबर की सेना का मुकाबला कर प्राणोत्सर्ग करने का विवरण है। युद्ध के विविध पहलुओं का अच्छा चित्रण इसमें हुआ है। कवि रतनसिंह के समकालीन था, अतः ऐतिहासिक दृष्टि से यह कृति महत्वपूर्ण है।

3- राव रतन री वेलि (कल्यांणदास)

इसमें बूंदी के पराक्रमी राजा रतनसिंह (वि.सं. 1665-1688) के पूर्वजों का शौर्यपूर्ण वर्णन करते हुए रतनसिंह की अद्वितीय वीरता का विवरण दिया है। बूंदी के इतिहास के लिये उपयोगी है।

झमाल

झमाल राजस्थानी काव्य का मात्रिक छन्द है। इसमें पहले पूरा दोहा फिर पांचवें चरण में दोहे के अन्तिम चरण की पुनरावृत्ति होती है। छठे चरण में दस मात्राएं होती हैं। इस प्रकार दोहे के बाद चान्द्रायण फिर उल्लाला छन्द रख कर सिंहावलोकन रीति से पढ़ा जाता है।

1- यह जोधपुर के राव मालदेव का कृपापात्र व भाना बारहठ का पुत्र था।

2- प्रकाशित। परम्परा भाग 14, राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी। सम्पादक डॉ. नारायणसिंह भाटी।

राव इन्द्रसिंह री झमाल[1]

इसमें नागोर के राव अमरसिंह राठौड़ के पौत्र इन्द्रसिंह के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालते हुए उस समय की राजनीतिक घटनाओं का वर्णन किया गया है। राजस्थान की आन्तरिक राजनीति के साथ भारत की निर्णायक राजनीति पर भी प्रकाश पड़ा है। इसके अतिरिक्त जोरसिंह चांपावत री झमाल, करमसेण हिम्मतसिंघोत बीदावत री झमाल आदि वीर पुरुषों पर लिखी गई झमाल कृतियां महत्वपूर्ण हैं।

झूलणा

झूलणा राजस्थानी काव्य का मात्रिक छन्द है। इसमें 24 अक्षर के वर्णिक छन्द के अन्त में यगण होता है।[2]

1- अमरसिंह राठौड़ रा झूलणा (दुरसा आढ़ा)

नागोर के राव अमरसिंह राठौड़ के जीवन परिचय का उल्लेख करते हुए उसके शौर्यपूर्ण कार्यों का विस्तृत विवरण दिया गया है। अमरसिंह के साथ रहे अन्य योद्धाओं के बारे में भी इसमें जानकारी मिलती है। यद्यपि दुरसा आढ़ा ग्रन्थावली में इस कृति का उल्लेख नहीं हुआ है परन्तु इसकी हस्तप्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में सुरक्षित है।

2- राजा गजसिंह रा झूलणा[3] (बारह राजसी)

17 झूलणा छन्दों के इस काव्य में जोधपुर के राजा गजसिंह के मुख्य युद्ध अभियानों का विवरण है।

3- राव सुरतांण देवड़े रा झूलणा[4] (आढा दुरसा)

27 झूलणा छन्दों की कविता में सिरोही के राव सुरतांण देवड़ा की मुख्य उपलब्धियों का विवरण है।

1- प्रकाशित, परम्परा भाग 44.

2- राजस्थानी शबद कोष, भाग 2, पृष्ठ 1166, सम्पादक सीताराम लालस।

3- डॉ. टैसीटरी राजस्थानी ग्रन्थ-सर्वेक्षण, परम्परा, पृष्ठ 133.

4- डॉ. टैसीटरी का राजस्थानी ग्रन्थ-सर्वेक्षण, परम्परा, पृष्ठ 133.

4– झूलणा महाराणा प्रतापसिंहजी रा (सांदूमाला[1])

इसमें मेवाड़ के रावल बाप्पा से महाराणा उदयसिंह तक के शासकों की वंशावली दी है फिर महाराणा के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए हल्दीघाटी के युद्ध का विशद विवरण बड़ी ओजस्वी भाषा में दिया है।[2]

इसके अतिरिक्त सांदूमाला ने बीकानेर के महाराजा रायसिंह और बादशाह अकबर के जीवन-वृत्त को लेकर झूलणे लिखे थे। इतिहास की कई गुत्थियों को सुलझाने में ये झूलणा काव्य उपयोगी सिद्ध होंगे।

सिलोका

संस्कृत के श्लोक शब्द से सिलोका नाम पड़ा है। राजस्थानी भाषा में मूलतः धार्मिक, ऐतिहासिक और उपदेशात्मक सिलोके लिखे मिलते हैं। इनमें कतिपय प्रख्यात वीरों एवं कुछ ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर लिखे गये सिलोके बड़े महत्वपूर्ण हैं। राजस्थान के वीर पुरुषों ने यहां की सांस्कृतिक गरिमा की रक्षा हेतु किस प्रकार महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, ऐसे तथ्यों का विवरण सिलोका काव्यों में मिलता है। सिलोका साधारण पढ़े–लिखे लोगों द्वारा लिखे गये हैं, इसलिये जन–साधारण की भावनाओं का हमें बोध होता है।

1– राव अमरसिंह रा सिलोका

नागौर के प्रसिद्ध राव अमरसिंह राठौड़ ने शाहजहां के दरबार में सलावतखां के अपशब्द कहने पर उसने आत्म-सम्मान की रक्षा हेतु किस प्रकार प्राणों की आहूति दी, वर्णित है। जोधपुर के महाराजा गजसिंह द्वारा अमरसिंह को निष्कासित करने, अमरसिंह का शाही सेवा में प्रविष्ट होने, नागोर का पट्टा मिलने आदि घटनाओं का उल्लेख हुआ है।

2– अजमालजी रो सिलोको (पेमा)

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् महाराजा अजीतसिंह ने जोधपुर पर अधिकार कर तुर्कों के साथ कैसा व्यवहार किया, वर्णित हैं। फिर बादशाह के स्तर पर

1– यह बीकानेर के शासक महाराजा रायसिंह का आश्रित कवि था। उक्त महाराजा ने इसे दो बार पुरस्कृत किया था।

2– प्रकाशित। महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ 55–58, सम्पादक देवीलाल पालीवाल।

होने वाली राजनीतिक घटनाओं में महाराजा अजीतसिंह की भूमिका का चित्रण सरल भाषा में किया है ।

3– राठौड़ कुसलसिंह रो सिलोको (बखता)

आऊआ ठाकुर कुशलसिंह चांपावत के वीरतापूर्ण कार्यों का उल्लेख हुआ है । कुशलसिंह का अहमदाबाद के युद्ध में भाग लेने, उदयपुर महाराणा की सेवा में आने व सादड़ी का पट्टा पाने, पुनः मारवाड़ आने और मेड़ता के युद्ध (1750 ई.) में मारे जाने का विवरण दिया है । विवाह के समय आयोजित विभिन्न रश्मों का अच्छा चित्रण मिलता है ।

4– भाटी केहरसिंह रो सिलोको

लवेरा ग्राम का जैसा भाटी केहरसिंह जोधपुर के महाराजा विजयसिंह की सेवा में रहा था, इस सिलोके में उसकी मराठों पर की गई चढ़ाइयों का उल्लेख है । इसमें सिंघवी धनराज फता व रूपा भाटी आदि योद्धाओं के नाम भी आये हैं ।

5– महाराजा मानसिंह रो सिलोको (जोधराज)

जोधपुर के महाराजा मानसिंह पर जयपुर की छढ़ाई का विवरण है । इसये एक नवीन जानकारी यह मिलती है कि घेरात्र में से औरतों को छुड़ाने के लिये जोधपुर की जनता को पैसे देने पड़े थे । छः मास का घेराव रहा और अर्धरात्रि को घेराव उठाया गया, यह भी जानकारी मिलती है । सती प्रथा पर भी प्रकाश पड़ा है जिससे उस समय की मान्यताओं का हमें बोध होता है ।

दवावैत

राजस्थान में वैत और दवावैत दोनों प्रकार की रचनाएं मिलती हैं । गद्य–पद्य में लिखी गई तुकान्त रचनायें "दवावैत कहलाती हैं । गद्य के छोटे–छोटे वाक्य खण्डों के साथ पद्य में किसी एक घटना अथवा किसी पात्र का जीवन–वृत्त "दवावैत" में मिलता है ।

1– अखमाल देवड़ा री दवावैत (बिहारीदास मेहड़ू)

इसमें सिरोही के राव अखमाल देवड़ा की उपलब्धियों का विवरण है ।

1– विस्तृत विवरण के लिये देखें परम्परा, भाग 65, सम्पादक डॉ. नारायणसिंह भाटी ।

2– महाराणा जवानसिंह री दवावैत (तेजराम आशिया)

इसमें महाराणा जवानसिंह के सामन्तों, दरबारियों, शस्त्रों, बाग–बगीचों, घोड़े, हाथियों का वर्णन करते हुए उनके राज वैभव का वर्णन है। महाराणा की पोशाक का विवरण भी दिया है।

3– राजा जयसिंह री दवावैत (डूंगरसी)

जयपुर के नरेश जयसिंह की इस दवावैत में उनके बल्ख, कंधार, बीजापुर, गोलकुण्डा आदि युद्ध अभियानों का विवरण है। यह दवावैत राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी के संग्रहालय में सुरक्षित है।

इसके अलावा नरसिंहदास गौड़ री दवावैत (मालीदास भाट), महारावल लखपत री दवावैत (कुंअर कुशल), महाराजा रतनसिंहजी री दवावैत (दयालदास सिंढायच), ठाकुर रघुनाथसिंह री दवावैत (दुर्गादास बारहठ) ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

नीसांणी

नीसांणी राजस्थानी काव्य का मात्रिक छन्द है, जिसमें तेईस मात्राओं से छन्द बनता है। प्रबन्ध काव्यों में नीसांणी छन्द का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा कुछ स्वतन्त्र रचनाएं भी मिलती हैं।

राठोड़ अजबसिंघोत गंगासिंघोत री नीसांणी

इस 48 नीसांणी पद्यों की रचना में महाजन के ठाकुर अजबसिंह द्वारा भाटियों व जोइयों के साथ किये गये युद्ध का वर्णन है। अजबसिंह को भाटियों के पट्टे का गांव खरबड़ा महाराजा अनूपसिंह (बीकानेर) की ओर से मिल गया था, परन्तु भाटियों ने यह गांव जब देना स्वीकार नहीं किया तो अजबसिंह चढ़ाई कर काम आया। उस समय की क्षेत्रीय हलचलों की जानकारी हेतु कृति उपयोगी है। इसके अतिरिक्त महाराजा प्रतापसिंघ आबेर री नीसांणी, राव खंगार री नीसांणी और गोगेजी चहुवाण री नीसांणी आदि नीसांणी काव्य ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

मरस्या

मरस्या का तात्पर्य शोक काव्य से है। राजा या किसी व्यक्ति विशेष को मृत्योपरान्त शोक व्यक्त करने के लिये इस प्रकार के काव्यों की रचना की जाती थी। इससे

1– विशेष विवरण के लिये देखें डॉ. शंकरसिंह राणावत का शोध प्रबन्ध (अप्रकाशित)।

उस व्यक्ति के चारित्रिक गुणों के अलावा अन्य क्रिया-कलापों का जिक्र भी किया जाता था। इस प्रकार की कृतियां समसामयिक होने से ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती हैं।

राणे जगपत रा मरस्या

मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह की मृत्यु पर शोक प्रकट करने हेतु यह मरस्या लिखा गया है। इसमें उक्त महाराणा की उम्र का भी उल्लेख हुआ है– 45 वर्ष, एक महीना, 16 दिन। इस प्रकार के अनेक मरस्या कवित्त मिलते हैं।[1]

दूहा

राजस्थान में वीर तथा दानी पुरुषों पर असंख्य फुटकर दोहे लिखे मिलते हैं। इनमें उनके साहस, शौर्य, त्याग, कर्तव्यपरायणता, दानशीलता के जहां अनुकरणीय उदाहरण मिलते हैं वहां अनेकानेक ऐतिहासिक घटनाओं की भी जानकारी मिलती है। बहुत से दोहे समसामयिक होने से ऐतिहासिक दृष्टि से बडे महत्वपूर्ण हैं। अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर में दोहों का अच्छा संग्रह है। ऐतिहासिक दृष्टि से अखेराज सोनिगरै रा दूहा, अमरसिंघ गजसिंघोत रा दूहा, करण सगतसिंघोत रा दूहा, कान्ह सत्रसालौत रा दूहा, कान्हड़दे सोनिगरै रा दूहा, जगतसिंघ मानसिंघोत रा दूहा, जगमाल मालउत रा दूहा, जोधेराव रा दूहा, प्रताप राणै रा दूहा, भाषरसी सौढ़ै रा दूहा, भीम करणोत रा दूहा, मानसिंघ अखेराजोत (सोनगरा) रा दूहा, मोकल राणै रा दूहा, रामदास जैमलोत रा दूहा, विजे देबड़ा रा दूहा, सांगै राठौड़ रा दूहा आदि महत्वपूर्ण है।[2]

छंद, चौपाई, कवित्त

कवित्त, छन्द व चौपाई में लिखी गई लघु कृतियाँ ऐतिहासिक सन्दर्भ खोजने में उपयोगी सिद्ध हुई हैं। उदाहरण स्वरूप कुछ कृतियों का परिचय प्रस्तुत है।

1– विशेष विवरण के लिये देखें राजस्थानी ऐतिहासिक ग्रन्थों का विस्तृत सर्वेक्षण, जोधपुर।

2– देखें– डॉ. टैसीटोरी का राजस्थानी ग्रन्थ सर्वेक्षण. परम्परा भाग 28–29, पृष्ठ 125–126। सम्पादक डॉ. नारायणसिंह भाटी।

1– पंवार अखैराज, राठौड़ रतनसी रा कवित्त

इसमें पीसांगण के स्वामी पंवार अखैराज व मीरां के पिता रतनसिंह के बीच हुए युद्ध का वर्णन है। अखैराज इसमें मारा गया था। इस घटना की पुष्टि उदयभांण चांपावत री ख्यात से होती है।

2– हमीर रा कवित्त

21 छप्पय छन्द की इस रचना में हमीर व अलाउद्दीन के साथ संघर्ष का कारण, महिमा मंगोल का हम्मीर की शरण में आना बताया है। हमीर के 2 सेवक रणमल द्वारा दगा किये जाने पर अलाउद्दीन का रणथम्भोर पर अधिकार होने का उल्लेख हुआ है।

3– हम्मीर चउपई (भांण)

1538 ई. में रचे इस काव्य में अलाउद्दीन की हमीर पर की गई चढ़ाइयों का उल्लेख है। इसमें हमीर के मारे जाने का समय वि. सं. 1371 अंकित है, जो अशुद्ध है।

4– उमादे भटियाणी रा कवित्त (आशानंद[1])

जोधपुर के राव मालदेव की रानी उमादे भटियाणी अपने पति से जीवन भर रूठी रही, परन्तु मालदेव की मृत्यु होने पर वह उनके पीछे सती हुई। आशानंद ने उमादे भटियाणी के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए उसके सती होने की घटना को बड़ी खूबी से कवित्त में प्रस्तुत किया है। उस समय की सामाजिक धारणाओं व मान्यताओं का इसमें बोध होता है।

5– राव जैतसी रो छंद (बीठू सूजा)

यह कृति सूजा द्वारा वि. सं. 1592 से वि. सं. 1598 के बीच किसी समय रची गई प्रतीत होती है। बीकानेर के संस्थापक राव बीका लूणकर्ण और जैतसी के मुख्य युद्ध अभियानों का वर्णन है। बाबर के द्वितीय पुत्र कामराव और बीकानेर नरेश एवं राव जैतसी के युद्ध का वर्णन विस्तार से दिया है।

1– इसका जन्म जोधपुर राज्य के भाद्रेसर गांव में गीधा चारण के घर हुआ। भक्त कवि ईसरदास इसके भतीजे थे। यह जोधपुर के राव मालदेव के आश्रित रहा। वि.सं. 1589 में जब मालदेव ने बीकानेर पर चढ़ाई की उस समय आशानन्द साथ में था।

इसमें कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण बातों का उल्लेख हुआ है, फिर भी मूल कथन में संदेह नहीं किया जा सकता। सूजा के अनुसार यह युद्ध वि. सं. 1591 मार्गशीर्ष वदि 4 (ई. स. 1534, 20 अक्टोबर) को रात्रि के समय हुआ। डॉ. टैसीटरी के अनुसार यह ग्रन्थ उक्त घटना के एक वर्ष बाद लिखा गया इसलिये इस कृति का अपना महत्व है। डॉ. गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने बीकानेर राज्य के इतिहास में एक प्रामाणिक आधार स्रोत के रूप में इसका उपयोग किया है।

6– गोरा–बादल पद्मिनी चौपाई[1] (हेमरतन/वि.सं. 1645)

जायसी के पद्मावत के 48 वर्ष बाद इसकी रचना हुई। इसमें अलाउद्दीन खिलजी की चित्तौड़ चढ़ाई के समय गोरा व बादल के साहसिक कार्यों व भारतीय नारी के सतीत्व तथा कुल मर्यादा के रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग करने की घटना वर्णित है। इस वीर रस से काव्य में इस काल की लोक साहित्य परम्पराओं का चित्रण हुआ है।

परची

संत महात्माओं का जीवन परिचय जिस पद्यबद्ध रचना में मिलता है उसे राजस्थानी भाषा में परची कहा गया है। इनमें सन्त के जीवन प्रसंग के पूर्व संत का नाम, जाति, जन्मस्थान, माता-पिता एवं परिवार के अन्य सदस्यों का नामोल्लेख कर उनकी साधनागत उपलब्धियों का विवरण मिलता है। परची काव्य का उद्भव काल 17वीं शताब्दी का उत्तरार्ध स्वीकार किया जा सकता है।

संत नामदेव की परची, रांका बांका की परची, कबीर की परची, संत रैदास की परची, संत पीपा की परची, धनाजी की परची, तीलोकजी की परची, संत शेख फरीद की परची, संत दादू की परची, संत बुद्धराम की परची, मीरांबाई की परची, सिवरी बाई की परची, फूलीबाई की परची, मुक्ताबाई की परची, कमाबाई की परची, कस्तुरबाई की परची, रानाबाई की परची महत्वपूर्ण है।[2] संत साहित्य के इतिहास अध्ययन हेतु ये कृतियां बड़ी महत्वपूर्ण सिद्ध हुई हैं।

1– प्रकाशित, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, सम्पादक उदयसिंह भटनागर।

2– परम्परा, भाग 67–70 में विक्रमसिंह गूंदोज का लेख।

अन्य विविध कृतियां

उपरोक्त वर्णित कृतियों के अतिरिक्त कुछ और प्रबन्ध व मुक्तक ऐतिहासिक कृतियों की जानकारी यहां दी जा रही है ।

1– कान्हड़दे प्रबन्ध[1] (पद्मनाथ[2]/वि. सं. 1572)

इसमें जालौर के शासक कान्हड़दे सोनगरा चौहान के जीवन–चरित्र का वृत्तांत दिया है। कान्हड़दे सोनगरा और अलाउद्दीन के बीच हुए युद्धों का वर्णन विस्तार से दिया है और उसके साथ ही उस समय सिवाना, भीनमाल आदि जालौर के आस-पास जो लड़ाइयां लड़ी गई उनका भी हाल दिया है। समाजशास्त्र के अध्येताओं के लिये इसमें तत्कालीन रीति–रिवाजों, तौर–तरीकों, मान्यताओं व परम्पराओं के रूप में पर्याप्त सामग्री जुटाई गई है। मारवाड़ के इतिहास के लिये यह ग्रन्थ उपयोगी है।[3]

2– वीर मायण[4] (बादर ढाढी)

इस ग्रन्थ के रचनाकाल के बारे में विद्वानों के अलग–अलग मत हैं। डॉ. मोतीलाल मेनारिया ने इसका रचनाकाल अठारहवीं शताब्दी के मध्य होना बताया है,[5] तो ठा. भूरसिंह राठौड़ ने वि.सं. 1640 के आस-पास माना है।[6] प्रारम्भ में मारवाड़ के राव सलखा राठौड़ के पुत्रों मल्लीनाथ, जैतमल, वीरम और सोभत का परिचय देते हुए उनका गुणगान किया गया है। इसके बाद मल्लिनाथ के भाइयों, प्रधानों व सैन्य शक्ति का वर्णन करते हुए उनके वैभव पर प्रकाश डाला है। मल्लिनाथ के अनुज जैतमल का गुजरात की ओर जाकर राड़धरा प्रदेश के 48 गांवों पर कब्जा करने का उल्लेख है। मुसलमानों का मल्लिनाथ पर आक्रमण व मल्लिनाथ द्वारा तेरह तुंगा (तेरह दल) तोड़ने का

1– प्रकाशित, प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।

2– यह जालौर के अखेराज खत्री के आश्रित ब्राह्मण था। (बांकीदास री ख्यात)

3– विशेष विवरण के लिये देखें मेरा सोनगरा व सांचोरा चौहानों का इतिहास।

4– राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। सम्पादिका डॉ. लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत। ठा. भूरसिंह ने सम्पादन कर नया संस्करण 1976 ई. में निकाला।

5– राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ 226.

6– कवि बहादर और उसकी रचनाएं, सम्पादकीय वक्तव्य, पृष्ठ 5.

उल्लेख है। गुजरात के सूबेदार द्वारा मालानी की तीजणियों का अपहरण करने, जगमाल द्वारा खान की पुत्री गिंदोली को लाने, मल्लिनाथ के पंथ में आने, जगमाल द्वारा वीरमदेव को मारने, चूण्डा द्वारा मंडोर लेने और गोगादेव व जोइयां के बीच हुए युद्ध का वर्णन है। इस प्रकार चौदहवीं शती की घटनाओं का विवरण सौलहवीं शती में रचे इस ग्रन्थ में दिया गया है। कई घटनाएँ इतिहास से मेल नहीं खाती, फिर भी क्षेत्रीय इतिहास के अध्ययन हेतु यह कृति महत्वपूर्ण है।

3– पतायण

इसमें यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार राम–रावण युद्ध के आधार पर रामायण, हम्मीर और अलाउद्दीन के बीच हुए युद्ध के आधार पर हमीरायण और जालोर के कान्हड़दे व अलाउद्दीन के मध्य हुए युद्ध पर कान्हायण की रचना की गई, उसी प्रकार महाराणा प्रताप व अकबर के बीच हुए युद्ध की जानकारी हेतु पतायण की रचना की गई। हल्दीघाटी के युद्ध का वर्णन करते हुए लिखा है कि युद्ध में प्रयाण करने वाले योद्धा सुन्दर वस्त्र व आभूषण धारण किये हुए हैं। उनके कमर में तलवारें, कन्धों पर भाले, हाथों में फरसे और कुल्हाड़ियें हैं। इस युद्ध–सज्जा का अच्छा चित्रण हुआ है। दोनों सेनाओं में खमणोर के रणक्षेत्र में भयंकर युद्ध हुआ। यह कृति अपूर्ण है।

4– सुरतांण गुण वर्णन (पत्ता आशिया/वि. सं. 1772)

महाराणा जयसिंह व उनके कुंवर अमरसिंह के बीच हुए वैमनस्य का वर्णन है। इसके बाद बेदला के राव सुरतांणसिंह की मुख्य उपलब्धियों पर प्रकाश डालते हुए महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) व औरंगजेब के मध्य हुए समझौते में उनकी (राव सुरतांणसिंह) भूमिका को उजागर करने का प्रयास किया है। साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर में इसकी प्रति सुरक्षित है।

5– सईकी (जयचन्द्र/वि.सं. 1774)

जयचन्द्र ने वि. सं. 1700 से वि. सं. 1800 तक का मेवाड़ का इतिहास काव्यबद्ध करने का लक्ष्य रख कर इस कृति का नाम सईकी रखा गया। परन्तु वह पूरे 100 वर्ष का इतिहास लिखने में असफल रहा और उसने 74 (वि.सं. 1700–1774) वर्ष तक का ही इतिहास लिखा। इसमें मूलत, औरंगजेब व महाराणा उदयसिंह के बीच चले संघर्ष का विस्तृत विवरण मिलता है। राजनीतिक घटनाओं के अलावा सामाजिक गतिविधियों का इसमें अच्छा चित्रण हुआ है। इसकी प्रतिलिपि डॉ. ब्रजमोहन जावलिया के संग्रह में प्राप्य है।

6- थल्वट बत्तीसी (बांकीदास)

32 दोहों की इस रचना में मारवाड़ के थली भू-भाग अर्थात् शेरगढ़ फलोदी के जनसाधारण के रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार, पशुधन और जीविका के साधनों का वर्णन करते हुए उनकी दयनीय दशा का चित्रण किया है। इससे तत्कालीन जनसाधारण के जीवन का हमें बोध होता है।

7- मान जसौ मंडण (बांकीदास)

132 दोहों-सोरठों की रचना में जोधपुर के महाराजा मानसिंह की उदारता, काव्यप्रेम, गुरु-भक्ति, ईष्टदेव के प्रति आस्था आदि प्रसंगों का जहां उल्लेख हुआ है वहां उनकी विपत्तिकालीन परिस्थितियों का भी वर्णन है। कृति समसामयिक लेखक द्वारा रची होने के कारण ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

8- वैसवारता (बांकीदास)

77 दोहों की इस कृति में तत्कालीन व्यापारिक समुदाय के आचरण का चित्रण किया है। धन संग्रह करने की लालसा में उनके द्वारा कम तोलने, तोल-माप के बाटों में गड़बड़ी करने, उधार की वस्तु का मूल्य ज्यादा दर्ज करने आदि अनेक हीन प्रवृत्तियों का वर्णन है। जोधपुर महाराजा मानसिंह के समय यद्यपि ऐसे लोगों को कठोर दण्ड दिया जाता था, फिर भी उस समय इस प्रकार की बुराइयां विद्यमान थीं। यह तथ्य हमारे सामने आया है।

9- सोढायण[1] (कविया चिमनजी/वि.सं. 1933)

इसमें उमरकोट के सोढ़ा पंवार वंशीय क्षत्रियों की महत्वपूर्ण उपलब्धियों का विवरण है। ग्रन्थ का प्रारम्भ बाहड़ नाम के राजा से होता है। बाहड़ के नाम से बाहड़मेर नगर बसा था। इसी बाहड़ का पुत्र छाहड़ हुआ। छाहड़ के पुत्र सोढ़ा से सोढ़ा शाखा चली। सोढ़ायण में दी गई उमरकोट के सोढ़ों की वंशावली का नैणसी की ख्यात से मिलान नहीं होता है। इसमें कहीं-कहीं अन्तर पाया जाता है। इसमें कई ऐसी घटनाओं का उल्लेख है जो दूसरे ग्रन्थों में नहीं मिलती हैं। चारण कविया चिमनजी ने किसी आधार सामग्री के अनुसार इस ग्रन्थ की रचना की थी, अतः सोढ़ा पंवारों के इतिहास अध्ययन हेतु यह ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध होगा।

1- प्रकाशित, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान। सम्पादक डॉ. शक्तिदान कविया।

सलाहकार समिति
(प्रताप शोध प्रतिष्ठान)

1. श्री स्वरूपसिंह चूण्डावत, अध्यक्ष
2. श्री मनोहरसिंह कृष्णावत, व्यवस्थापक
3. डॉ. ओंकारसिंह राठौड़
4. श्री देवेन्द्रसिंह शक्तावत, रि. आई.ए.एस.
5. डॉ. के. एस. गुप्त
6. श्री धर्मपाल शर्मा
7. श्री देवकर्णसिंह राठौड़
8. डॉ. नारायणसिंह चूण्डावत
9. श्री प्रद्युम्नकुमारसिंह चूण्डावत

प्रताप शोध प्रतिष्ठान : विशिष्ट सम्मतियां

मैं आपके समर्पित भाव से किये जाने वाले कार्य से प्रभावित हूं। यहां आना मेरे लिये सुखद अनुभूति का कारण रहा है। मेरी शुभकामनायें आपके साथ हैं।

डॉ. प्रकाश आतुर

14–9–83 अध्यक्ष, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

इस संस्थान को देखकर प्रसन्नता हुई। राजस्थान के इतिहास की दृष्टि से इस संस्था का पुस्तकालय बहुत धनी है। राजस्थान के इतिहास पर शोध की दिशा में इस संस्था का कार्य सराहनीय है।

डॉ. राजेन्द्र जोशी

16–2–87 इतिहास विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय

प्रताप शोध संस्थान में आकर राजस्थान की सांस्कृतिक गतिविधियों का परिचय प्राप्त किया। संस्थान पुराने राजस्थानी साहित्य की शोध में संलग्न है तथा अत्यन्त उपयोगी सामग्री प्रकाशित कर जन–चेतना के कार्य में संलग्न है। मैं इसके सफल उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूं।

दामोदरदास आचार्य

18–12–87 शिक्षा मन्त्री, राजस्थान राज्य

प्रताप शोध संस्थान, उदयपुर द्वारा आदर्श व उच्चकोटि के शोधकार्य से अत्यन्त प्रभावित हुआ हूं। यह अन्य संस्थाओं के लिए अनुकरणीय है। हार्दिक शुभकामनाएं।

स्क्वाड्रन लिडर लक्ष्मणसिंह

10–2–88 राज्यमन्त्री, राजस्थान सरकार, राजस्थान